ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—९२

मीर

[जीवन : समीक्षा : व्याख्या और काव्य]

श्री रामनाथ 'सुमन'

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

काव्य एवं रसके
समाराधकोंके चरणोंमें
निवेदित

●

'सुमन'

विषय-तालिका

जीवन-भाग

काव्य-समीक्षा-भाग

व्याख्या-भाग

काव्य-भाग

उपसंहार-भाग

मेरी बात

आजसे ३३ वर्ष पूर्व मैंने हिन्दी पाठकोंको उर्दू काव्यका परिचय देनेका निश्चय किया था। तब हिन्दीमें उर्दू काव्यकी आवभगत न थी, जैसी आज है। 'मीर', और 'जिगर' (जो उन दिनों उठ रहे थे) पर दो पुस्तकें लिखीं। वे छपीं। उनका आदर हुआ। फिर राजनीतिके झंझा-वातसे मेरा जीवन अस्थिर हो गया। इस प्रान्तसे उस प्रान्त, उस प्रान्तसे इस प्रान्त, कभी यहाँ कभी वहाँ, कभी जेल कभी बाहर फिरता रहा। वह निश्चय दब गया। वह क्रम टूट गया, यद्यपि अध्ययन—विशेष कवियोंका—चलता रहा।

और आज तक टूटा रहा। इधर उर्दू कवियोंपर, उर्दू शायरीपर कई किताबें देखनेमें आईं। पर कोई ऐसा ग्रन्थ न देखा जिसे पढ़कर एक विशेष कवि या कालका सम्पूर्ण वैभव हमारे सामने आ जाय, जिसे पढ़कर उस विषयपर उर्दूमें पढ़नेको न रह जाय, जिसमें अबतकके शोधकार्यका सम्पूर्ण सार आ गया हो; जिसमें कविकी मर्मभावनामें पैठकर उसके हृदयको, उसकी भावराशिको हमारे हृदयसे जोड़ दिया गया हो, सम्बद्ध कर दिया गया हो। कमसे कम मेरी प्यास नहीं बुझी। मैं प्यासा ही रहा। स्वभावतः मैं समझता हूँ कि और भी लोग, मेरी तरह, प्यासे होंगे।

मेरे एक पुराने मित्र मिल गये। यूँही बातें चल पड़ीं। उन्होंने मेरे उर्दू कवियों-सम्बन्धी उन दो पुरानी पुस्तकोंकी चर्चा की और यह भी बताया कि स्व० ओड़छा नरेश उनपर मुग्ध थे और सदा अपने शयन-कक्षमें तकियेके नीचे रखते। उन्होंने कहा कि महाराजने कई बार उनका

ज़िक्र किया; कहा कि यह है जो कविका कलेजा काग़ज़पर निकालकर रख देता है। उससे मिलाओ, मैं कहूँगा कि ऐसा ही कुछ और लिखे।

इसमें प्रकारान्तरसे मेरी प्रशंसा है पर मैंने अपनी प्रशंसाकी दृष्टिसे इसे नहीं लिखा। प्रसंगवश लिखा है। इसलिए लिखा है कि महाराज जैसे और भी हैं जो कविके अन्तरमें पैठनेवाली क़लमको देखने-पानेके अभिलाषी हैं। इस चर्चासे मेरा निश्चय दृढ़ हो गया। ३३ वर्ष पूर्व 'मीर' पर जो कुछ लिखा था वह इस विशेषताके साथ भी अधूरा है। इस बीच उर्दूमें उनपर काफ़ी काम भी हुआ है। इसलिए मैं सबसे पहले यह 'मीर' हिन्दी जगत्में रख रहा हूँ। मीर उर्दू शायरीके ख़ुदा कहे गये हैं। उर्दू ग़ज़लके प्राचीन कवियोंमें वह बेजोड़ हैं। कोई उनतक नहीं पहुँचा। ग़ालिब, ज़ौक़, सौदा सब स्वीकार करते हैं। इसलिए पहिले उन्हें ही लिया। इसमें उनके सम्बन्धमें अद्यतन शोधका तत्त्व भी है और वह सब भी है जिसपर महाराज मुग्ध थे।

इसके बाद मेरा विचार 'ग़ालिब' पर लिखनेका है जिसका अध्ययन मैं वर्षोंसे करता रहा हूँ, और जिनपर कई पुस्तकें निकलनेके बाद भी मेरे निश्चयके चरण दृढ़ होते गये हैं; मैं अब भी उसकी उतनी ही आवश्यकता अनुभव करता हूँ। दिल एवं दिमाग़की मजबूरियाँ हैं।

पुस्तक लिखनेमें मैंने अनेक ग्रन्थोंसे सहायता ली है। इनका तथा इनके प्रणेताओंका ज़िक्र अन्यत्र किया गया है। मैं उनका कृतज्ञ हूँ। डा० फ़ारूक़ी, मौलवी 'आसी' तथा डा० अब्दुलहक़का विशेष आभार मानता हूँ। उर्दूमें डा० फ़ारूक़ीका शोध ग्रन्थ, अपनी कुछ ख़ामियोंके साथ भी, काफ़ी प्रामाणिक है और मैंने उससे पर्याप्त प्रेरणा एवं सहायता ली है। स्व० डा० रामबाबू सक्सेनाकी कृपासे मीरकी हस्तलिपिका चित्र दे सका हूँ।

और अगली मुलाक़ात तक बस।

लखनऊ
३।९।५९

—श्री रामनाथ 'सुमन'

कृतज्ञता-ज्ञापन

पुस्तक लिखनेमें निम्नलिखित ग्रन्थों एवं रचनाओंसे विशेष सहायता ली गयी है :—

१. कुल्लियाते 'मीर' : संपादक मौलवी अब्दुल बारी 'आसी' (नवलकिशोर प्रेस)

२. इन्तिखाबे कलामे 'मीर' : संपादक मौलवी अब्दुलहक़ (अंजुमन तरक्क़िए उर्दू)

३. 'आबेहयात' : लेखक मौ० मुहम्मद हुसेन आज़ाद (लाहौर-की अष्टम आवृत्ति)

४. मीर तक़ी 'मीर' : लेखक डा० ख्वाजा अहमद फ़ारूकी (अंजुमन त० उर्दू)

५. कविरत्न 'मीर' : लेखक श्री रामनाथ 'सुमन' (पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय)

६. तज़किरा शुअराय उर्दू : लेखक मीरहसन देहलवी (अंजुमन त० उर्दू)

७. तज़किरा रेख्तागोयान : लेखक फतेह अली (अंजुमन त० उर्दू)

८. नकातुश्शुअरा : संपादक मौलवी अब्दुलहक़ (अंजुमन त० उर्दू)

९. जिक्रे मीर : संपादक मौलवी अब्दुल हक़ (अंजुमन त० उर्दू)

१०. उर्दू ग़ज़ल : लेखक डाक्टर यूसुफ़ हुसेन (मकतबा जामिया)

निम्नलिखित पुस्तकों एवं रचनाओंसे भी सहायता ली गयी है :—

११. उर्दूकी इश्क़िया शायरी : लेखक 'फिराक़' गोरखपुरी (इलाहाबाद)

१२. तज़किरा गुलशने बेख़ार : लेखक नवाब मुस्तफा ख़ाँ 'शेफ़्ता' (नवलकिशोर प्रेस)
१३. तज़किरा शाअरात उर्दू (क़ौमी क़ुतुबखाना, बरेली)
१४. तारीख़ फ़रिश्ता (न० किशोर प्रेस)
१५. तारीख़ इबरत अफ़ज़ा (मुरादाबाद)
१६. तारीख़ अवध (न० किशोर प्रेस)
१७. इनफ्लुएंस आफ़ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर : लेखक डा० ताराचन्द ।
१८. दरियाए लताफ़त : लेखक इंशा (अंजु० त० उर्दू)
१९. फ़ैज़े 'मीर' : सम्पा० सै० मसऊद हसन रिज़वी
२०. मज़ा 'मीर' : लेखक नवाब जाफ़रअली (किताबी दुनिया, देहली)
२१. मरासी मीर : संपा० सैयद मसीहुज्ज़माँ (सरफ़राज़ क़ौमी प्रेस, लखनऊ)
२२. मस्नवियाने मीर : संपा० सर शाह सुलेमान (निज़ामी प्रेस, बदायूँ)

इसके अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा उर्दू, हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी कवियोंकी रचनाओंसे भी सहायता ली गयी है। डा० फ़ारूक़ीकी पुस्तक काफ़ी अच्छी है; उससे मैंने पर्याप्त सहायता ली है। उनका कृतज्ञ हूँ, यद्यपि पुस्तकमें सन् संवत्की अनेक भूलें रह गयी हैं। लेखकों एवं सम्पादकों सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता-ज्ञापन।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

मीर

●
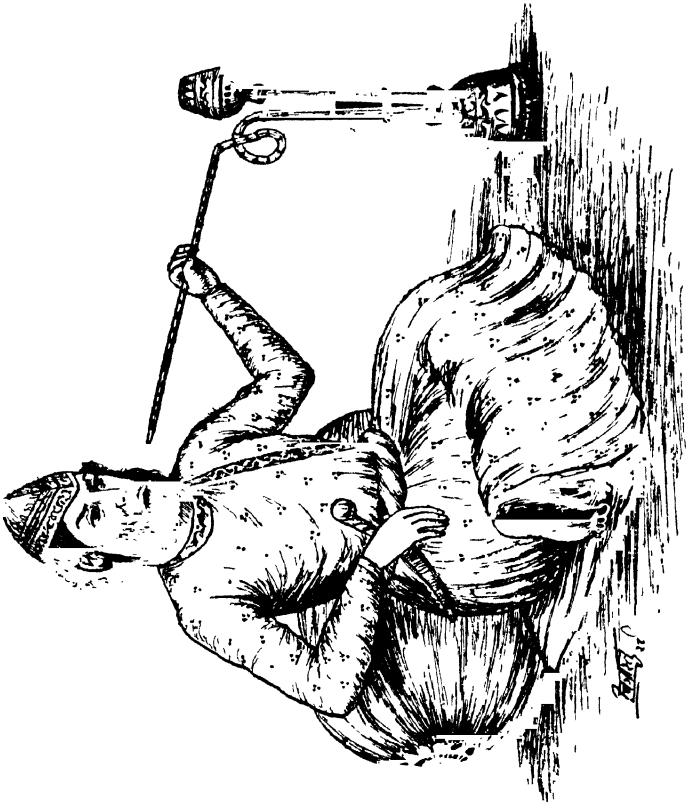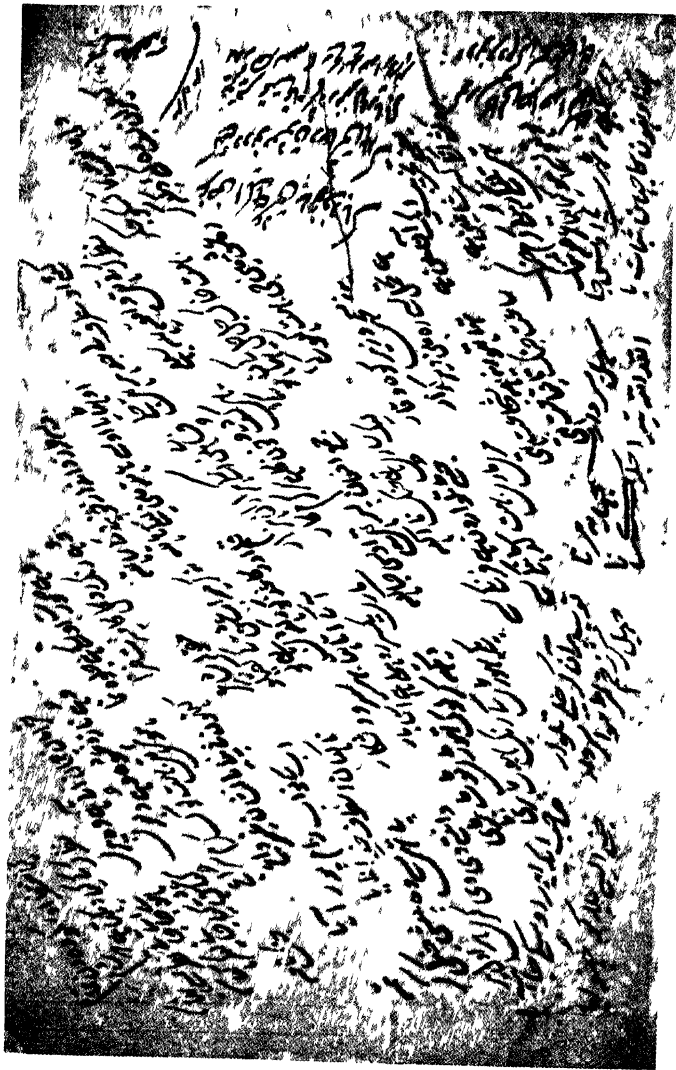
मीर की हस्तलिपि

जीवन-भाग

'मीर' : जीवन-प्रवाह

●

इनका पूरा नाम था 'मीर तक़ी'; 'मीर' इनका तख़ल्लुस (उपनाम) था। इनके पूर्वजों एवं पिताके विषयमें जो बातें इधर-उधर मिलती हैं, उनमें परस्पर अन्तर हैं। परन्तु हमारे सौभाग्यसे मीर-द्वारा फ़ारसी गद्यमें लिखित आत्मचरित 'ज़िक्र मीर'[1] प्राप्त है। उनकी एक दूसरी फारसी पुस्तक 'नकातुश्शुअरा' भी है जिसमें बहुत-सी बातें मिल जाती हैं।

मीरकी वंश-परम्परा

'ज़िक्र मीर' के अनुसार इनके पूर्वज हेजाज़के रहनेवाले थे। ज़मानेकी कठिनाइयोंसे तंग आकर वे लोग, अपने क़बीलेके साथ, भारतके दक्षिण प्रदेशमें आये। वहाँसे वे अहमदाबाद (गुजरात) पहुँचे। कुछ वहीं रह गये और कुछ जीविकाकी खोजमें आगे बढ़े और अकबराबाद (आगरा) आये तथा वहीं बस गये। इनके परदादा भी इसी प्रकार आगरा आये। पर वहाँ की जलवायु उनके अनुकूल न हुई; बीमार पड़ गये और बीमारीमें ही इस संसारसे बिदा हो गये। वह एक पुत्र छोड़ गये थे। यही मीरके दादा थे। बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ उठाकर दादाने अकबराबाद (आगरा) की फ़ौजदारी प्राप्त की। अब आरामसे कटने लगी। पर लगभग ५० वर्ष की आयुमें वह भी बीमार पड़े। पूर्णतः नीरोग होनेके पूर्व ही उन्हें ग्वालियर जाना पड़ा और वहीं, कुछ दिनों बाद, उन्होंने देह त्याग दी। दादाका नाम रशीद था।

दादाके दो बेटे थे। बड़े विक्षिप्त थे और भरी जवानीमें मर गये। छोटेने दो शादियाँ कीं जिनसे कई सन्तानें हुईं पर बादमें उन्होंने फ़क़ीरी ले

---

१. 'जिक्र मीर'—अब यह पुस्तक 'अंजुमन तरक्क़िए उर्दू' द्वारा प्रकाशित कर दी गयी है।

ली और संसारमें रहकर भी संसारका त्याग कर दिया। यही 'मीर' के पिता थे।

पिताका नाम क्या था ?

समकालिक एवं परवर्त्ती लेखकोंमें 'मीर' के पिताके नामको लेकर बड़ा मतभेद है। कुछने उनका नाम मीर अब्दुल्ला[१], कुछने मोहम्मद मोतक्क़ी,[२] और कुछने मीर मोहम्मदअली[३] माना है। पर सब बातों पर विचार करनेसे अन्तिम नाम मीर मोहम्मदअली ही ठीक जान पड़ता है। सन्तोषी एवं साधु स्वभाव होनेके कारण ही लोग उन्हें 'मोतक्क़ी' कहने लगे थे।

पिता और उनके द्वारा प्रदत्त संस्कार

मीरके पिता साधु पुरुष थे। उनकी दो शादियाँ हुई थीं। पहली पत्नी फारसी भाषाके लब्धप्रतिष्ठ लेखक और प्रकाण्ड पण्डित सिराजुद्दीन अलीखाँ 'आरज़ू' की बहिन थीं; दूसरीके नाम-धामका पता नहीं चलता पर मीर दूसरी पत्नी की सन्तान थे। इस प्रकार 'आरज़ू' इनके मामा लगते थे। पिता ईश्वरके ध्यानमें सदा लीन रहते थे। वह प्रेमी और भक्त थे। उन्होंने शाह कलीमुल्ला अकबराबादी

१. सआदत ख़ाँ 'नासिर'ने अपने ग्रंथ 'तज़किरा खुशमार्का ज़ेबा' में, हकीम अब्दुल हईने 'साहिबे गुलेराना' में, मुहम्मद हुसेन आज़ादने 'आबे-हयात' में और ब्लूमहार्टने अपनी इण्डिया आफिसकी सूचीमें मीर अब्दुल्ला नाम ही दिया है। १९२६ में जब मेरी पुस्तक कविरत्न 'मीर' प्रकाशित हुई ती मैंने भी यही नाम दिया था। श्री अब्दुलवारी 'आसी' का कहना है कि अली मोतक्क़ी गुरु-प्रदत्त उपनाम था।

२. बीलने अपनी 'ओरियंटल बायाग्राफिकल डिक्शनरी' में तथा डा० अब्दुल हक़ने 'मुक़द्दमा ज़िक्रे मीर' में यही नाम माना है।

३. 'ज़िक्रे मीर' (पृ० ६२) में मीर बासितके पूछने पर कि किसके लड़के हो मीर स्वयं जवाब देते हैं—"अज़ मीर मोहम्मद अली अस्त।"

(मृत्यु० १६९७ ई०) से ज्ञान प्राप्त किया था। उन्हींके पथ-दर्शनमें बड़ी-बड़ी साधनाएँ कीं। मीरने लिखा है कि वह सदा यादे इलाही[१] में मसरूफ़[२] रहते थे। जब उनकी तबीयत शगुफ़्ता[३] होती तो फरमाते कि "बेटा! इश्क[४] इख्तियार[५] करो कि इश्क ही इस कारखाना[६] पर मुसल्लत[७] है। अगर इश्क न होता तो यह तमाम निज़ाम[८] दरहम-बरहम[९] हो जाता। बेइश्क़के ज़िन्दगानी वबाल है और इश्कमें दिल खोना असले कमाल[१०] है। इश्क ही बनाता है और इश्क ही बिगाड़ता है।"

पिता जब कभी प्रेम-विह्वल या भावाविष्ट होते तो कहते कि "आलम[११] में जो कुछ है इश्कका ज़हूर है। आग सोजे इश्क[१२] है, पानी रफ्तारे-इश्क[१३] है, खाक क़रारे-इश्क[१४] है, हवा इज़तरारे-इश्क है[१५] है! मौत इश्ककी मस्ती है, हयात इश्ककी होशयारी है, रात इश्कका ख्वाब[१६] है, दिन इश्ककी बेदारी[१७] है। तवक्क़ा[१८] क़ुर्बे इश्क[१९] है, गुनाह बआदे इश्क[२०] है; बिहिश्त[२१] इश्कका शौक़[२२] है,...और मुकामे इश्क तो अबूदियत, असरफियत, ज़ाहिदियत, सदीक़ियत, खुलूसियत, मुश्ताक़ियत और हबीबियत[२३] से बुलन्द[२४] और बरतर[२५] है।"

बादके दिनोंमें तो इनकी हालत सन्त या सूफ़ीकी-सी हो गयी थी। ज़मीनपर पड़े-पड़े न जाने क्या सोचते। "दिनमें खोये-खोयेसे रहते और रातको उपासनामें तल्लीन हो जाते।"[२६] उपासनाकी निद्रा जब टूटती, कुछ

---

१. भगवत्-स्मरण, २. तल्लीन, ३. प्रफुल्ल, ४. प्रेम, ५. ग्रहण, ६. जगत्से अभिप्राय है, ७. आच्छादित, ८. व्यवस्था, ९. छिन्न-भिन्न, १०. साधनातत्व, ११. संसार, १२. प्रेमकी जलन, १३. प्रेमकी गति, १४. प्रेमकी स्थिरता, १५. प्रेमकी बेचैनी, १६. स्वप्न, १७. जागरण, १८. निस्पृहता, सन्तोष, १९. प्रेमका सानिध्य, २०. प्रेमका उल्लंघन, २१. स्वर्ग, २२. प्रेमकी आकांक्षा, २२. ईश्वर-साधनाकी विभिन्न अवस्थाएँ, २४. उच्च, २५. श्रेष्ठ, २६. "रोज़ हैरांकार, शब ज़िन्दादार, अक्सर रूये नियाज़ बर खाक।"

होशमें आते तो फर्माते—"बेटा ! आलम[१] की हक़ीकत[२] एक हंगामासे ज़्यादा नहीं है। इससे दिल न लगाना। इश्के-इलाही[३] इख़्तियार करो और खुदासे लौ लगाओ। आख़िरत[४] की फ़िक्र लाज़िम[५] है। यह दुनिया गुज़रनेवाली है और ज़िन्दगी वहम[६] है। वहमके पीछे दौड़ना अबस[७] है। चलचलाव लगा है। इसलिए ज़ादेराह[८] की फिक्र करो वर्ना इस मंज़िल तक पहुँचना मुमकिन नहीं। उससे रुजूअ[९] करो आलम जिसका आइना है और इख़्तियार[१०] उसको सौंपो जिसको हम अपनेमें ढूँढ़ते हैं....।"

'मीर' ने लिखा है कि मेरे पिता कामिल फ़क़ीर थे और बड़ी दर्दनाक तबीयत रखते थे। जब मुझे गले लगाते तो शफ़क्क़त[११] से कहते कि "ऐ सरमायए-जान[१२] ! यह कैसी आग है जो तेरे दिलमें छुपी है, और यह कैसा सोज़[१३] है जो तेरी जानके साथ लगा है।" इस पर मैं हँस देता और वह रोने लगते।....एक रोज़ नमाज़के बाद मेरी तरफ़ तवज्जुह फरमाई[१४] और मुझे खेलता देख कर कहने लगे—"बेटा ! ज़माना सय्याल[१५] है यानी बहुत कम फुर्सत। अपनी तर्बियत[१६] से ग़ाफ़िल[१७] न रहो। रस्तेमें बहुत नशेबोफराज़[१८] हैं, देख कर चलो।........ऐसे फूलका बुलबुल बनो जो सदाबहार है........ फुर्सतको ग़नीमत समझो और अपने तईं पहचाननेकी कोशिश करो।"

पिताके चेहरे पर नूर बरसता था। मुख पर पवित्रताकी छाया थी। भीड़भाड़से दूर रहते थे। प्रियतमके ध्यानमें प्रायः डूबे रहते; प्रायः आँखें भीगीं, हाल बेहाल[१९]। कभी-कभी तो फूट कर माशूक़के लिए इस तरह रोते कि हिचकी बँध जाती।

---

१. दुनिया, २. तत्व, सत्य, ३. प्रभु-प्रेम, ४. अन्तकाल, ५. आवश्यक, ६. भ्रम, माया, ७. निस्सार, निरर्थक, ८. मार्गका संबल, पाथेय, ९. प्रेम, आसक्ति, १०. प्रभुत्व, अधिकार, ११. कृपा, १२. प्राण-धन, १३. जलन, १४. ध्यान दिया, १५. प्रवहमान, परिवर्तनशील, १६. प्रशिक्षण, १७. असावधान, १८. नीच-ऊँच, १९. "मिज़गाँ नम, हाल दरहम"—ज़िक्रे मीर पृष्ठ ९।

जो लोग भी उनके सम्पर्कमें आते, प्रभावित हुए बिना रह न सकते थे। उनके सम्बन्धमें अनेक घटनाएँ बताई जाती हैं। आगरा (अकबराबाद) में वह शहरसे बाहर ईदगाहके पास रहते थे। एक बारकी बात है कि घर में आये और खाना पकानेवाली बुढ़ियासे कहा कि कुछ खानेकी चीज़ घरमें हो तो लाओ। वह बोली कि घरमें तो कोई सामान नहीं है, बाज़ार जाती हूँ, वहाँसे सौदा-सुलुफ़ लाऊँ तो कुछ पकाऊँ। बुढ़िया कुछ आटा-दाल वग़ैरह लेकर पलटी तो उन्होंने खाना तैयार करनेके लिए जल्दी मचायी। बुढ़िया बिगड़ कर बोली कि साहब! फ़क़ीर हो तो फ़क़ीरीके अन्दाज़ सीखो, सब्र करो; दरवेशी कोई बच्चोंका खेल नहीं है। बुढ़ियाका कहना तीरका काम कर गया। उससे तो कुछ न कहा लेकिन उठे, आँसुओंसे भींगा हुआ रूमाल उठाया और चलने लगे। बुढ़िया डर गयी, दौड़ कर उनसे लिपट गयी और पूछा—कहाँ चले, बैठो। उन्होंने जवाब दिया—कुछ हर्ज नहीं, तुम मेरे लिए खाना पकाओ, मैं ज़रा लाहौरमें एक दरवेशसे मिल आऊँ। अभी वापिस आता हूँ। बुढ़ियाने बहुत समझाया-बुझाया किन्तु वक्त हाथसे निकल चुका था; अब क्या हो सकता था? विवश चुप बैठ रही। और यह हैं कि उसी धुनमें, चल खड़े हुए। एक बेचैनीकी हालत थी, एक नशा उन पर सवार था। न पासमें कोई सामान, न मार्गके लिए कोई खाद्य-सामग्री, न रुपया-पैसा। आख़िर लाहौर पहुँचे। जिस दरवेशसे मिलनेकी उत्कण्ठा थी, उससे रावीके तट पर भेंट हुई। वहाँसे देहली लौटे और मीर क़मरुद्दीनके पास ठहरे, पर उनके यहाँ चेला-चाटियोंकी भीड़ लगी रहती थी जो इनके स्वभावके प्रतिकूल थी। एक दिन आधी रातको चुपकेसे चल पड़े; लोग ढूँढ़ते ही रह गये। दो-तीन दिनकी यात्राके बाद बयाना पहुँचे। यहाँ एक नवयुवक सय्यदज़ादे पर उनकी जादूभरी निगाहोंने ऐसा असर डाला कि वह भूताविष्टकी भाँति बेहोश होकर गिर पड़ा। लोगोंने यह हालत देखी तो इनसे अनुनय-विनय की कि इसपर कृपा कीजिए। इन्हें भी कुछ रहम आ गया।

थोड़ा-सा पानी लिया, उसे अभिमन्त्रित किया। उसका कुछ अंश पिला दिया, कुछ मुँह पर छिड़का। युवक होशमें आकर उठ बैठा और घुटने टेक कर सामने बैठ गया और प्रार्थना की कि कुछ दिन ग़रीबख़ाने पर क़याम फर्माइए। उन्होंने यह कह कर मंजूर कर लिया कि, ख़ैर पर मैं यात्रामें हूँ। लोगोंने कहा जिस समय आपकी जो आज्ञा होगी उस पर अमल किया जायगा। फिर कहा कि हमारा क्या, कभी किसीसे खुश हैं, कभी नाखुश। पर लोगोंके बहुत प्रार्थना करने पर उसके यहाँ गये।

संयोग उसी दिन उस युवककी शादी थी। लोगोंने इनसे भी शादीमें शामिल होनेकी प्रार्थना की। इन्होंने कहा—फ़क़ीरको इन झगड़ोंसे क्या मतलब ? उस नवजवानसे कुछ बातें कीं। उधर बारात गयी, इधर यह वहाँसे चल पड़े और अकबराबाद (आगरा) आ पहुँचे। उधर बारात जब वापस आयी, दूल्हाको इनके चले जानेका हाल मालूम हुआ। न जाने क्या बात हुई कि दिल उचट गया, सुप्त ईश्वर-प्रेम जग पड़ा। परिणाम यह हुआ कि बेचारेने घर पर पानी भी न पिया; नई-नवेली दूल्हनको छोड़-छाड़ उनकी तलाशमें निकल खड़ा हुआ; कई दिनों तक जंगलोंमें ख़ाक छानता फिरा; जो मिलता उसीसे फ़क़ीरका पता पूछता पर किसीको क्या मालूम कि किस फ़क़ीरको पूछ रहा है। कुछ पता न चला। एक दिन एक साधु पुरुष मिल गये। उन्होंने इसे त्रस्त देख दयार्द्र हो पूछा—किसे ढूँढ़ता है ? उसने रङ्ग-रूप बता कर अस्त-व्यस्त भाषामें अपना प्रयोजन कह सुनाया। उन्होंने कहा—जा, सीधा अकबराबाद चला जा; अली मोतक़्क़ी वहीं हैं, ढूँढ़ ले। यह सुन कर गरीब पूछता-पाछता अकबराबाद आया और किसी तरह अपने गन्तव्य-स्थल पर पहुँच गया।★ मीर मोहम्मद अली उर्फ़ मीर मोतक़्क़ीने तसल्ली देकर वहीं ठहरा लिया। धीरे-धीरे वह उनका

★ अब्दुल बारी 'आसी'; कुल्लियातमें मुक़द्दमा। पृ० १० (न० कि० प्रेस)

ऐसा भक्त और प्रिय बन गया कि मीर मोहम्मद अली उसे अपना छोटा भाई मानने लगे। इस युवकका नाम सय्यद अमानुल्ला था। मोहम्मद अलीने उसे साधनाका मर्म बताया और धीरे-धीरे वह बहुत उच्च साधक बन गया।

उस समय मीर साहब बच्चे ही थे; सिर्फ़ ७ सालकी उम्र थी। पर पिताके संस्कारोंका तथा जो बुज़ुर्ग उनके पास आया करते थे उनकी बातोंका प्रभाव उन पर अन्दर ही अन्दर पड़ने लगा था। सय्यद अमानुल्लाके आने पर मीर साहब उनकी देख-रेखमें पढ़ने लगे। मीर, बापके बाद, उनकी सबसे ज़्यादा इज़्ज़त करते थे। दोनोंके बीच दिली मोहब्बत थी। वह अमानुल्लाके साथ और भी बड़े लोगोंके पास जाते और उनकी बातें ध्यानसे सुना करते थे। तीन साल तक बराबर उनके पास पढ़ते रहे। जब १० सालके हुए अमानुल्लाकी अचानक मृत्यु हो गयी। उस छोटी अवस्थामें भी, यद्यपि इनकी शिक्षा पूर्ण नहीं हुई थी, बहुत कुछ समझने लगे थे। मीरके जीवन पर पिता एवं अमानुल्लाका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अमानुल्लाकी मृत्युकी चोट तो इनको ऐसी लगी कि अक्सर रोया करते। मीरने स्वयं ही लिखा है कि मैं उनकी मृत्युसे बहुत दुखी रहता था। मुझे दुखी देख कर मेरे पिता मुझे समझाया करते कि तुम बच्चे नहीं हो, दस सालके हो, दरवेशके लड़के हो। तुम्हें दिल मज़बूत रखना चाहिए।[1]

अमानुल्लाकी मृत्यु पर 'मीर' का दुखी होना स्वाभाविक था। पिता तो सदा ईश्वरोपासना एवं ध्यानमें मग्न रहते थे; मीर ज्यादातर अमानुल्ला के पास ही रहते थे। वह उन्हें चचा कहते थे। अमानुल्ला भी 'मीर' को

१. "कि ऐ पेसर मन तुरा बिसियार मी ख्वाहम। अम्मा अज़ीं ग़म मी काहम कि मन नीज़ बर सरे राहम। गाह मी गुफ्त कि माह मन न तिल्फ़हाल :। अलहमदुल्ला कि दह साल :। च ब काहिश उफ़्तदये आख़िर दरवेशज़ादह, दिलक़वीदार।"

बेटेकी तरह मानते थे, एक क्षणको अपनी आँखोंसे दूर नहीं करते थे और क़ुरान शरीफ़ पढ़ाते थे[1]।

अमानुल्ला अपने गुरुकी प्रेमोपासनामें रँग गये। मानवरूपमें भी इन्हें ईश्वरका चमत्कार दिखायी देता था। 'मीर' ने इसकी प्रेमलता और विदग्धताके सम्बन्धमें एक विचित्र घटना लिखी है। एक बारकी बात है कि अमानुल्ला जुमाके बाज़ारकी सैरको गये। वहाँ उनकी दृष्टि एक तैल-विक्रेता लड़के पर पड़ी। देखते ही दिल क़ाबूसे बाहर हो गया। उस मुहब्बतके ग़ममें ऐसी दुर्बलता हो गयी कि ज़मीन पर पाँव नहीं उतार सकते थे। एक नौकरके कन्धे पर हाथ रखकर तब खड़े होते थे। जब हालत खराब हो गयी तो गुरुकी सेवामें उपस्थित हुए कि कोई विधि निकालें। जब वहाँ पहुँचे तो हाल यह था कि आँखोंमें आँसू थे और लबों पर ठण्डी आहें। सच्चे वियोगी की अवस्था थी। उपस्थित लोगोंने इनको देखते ही जगह कर दी किन्तु गुरुने इन्हें अपने पास बैठाया और पूछा—"अरे भाई, कहाँ थे?" अमानुल्ला बोले—"जुमेकी बाज़ारकी सैरको गया था।" फ़रमाया—"क्या तुमने नहीं सुना—

प्रेमके पागल अमानुल्ला

'दीदने तिफ्लां तहे बाज़ार रुसवा मी कुनद।'

फिर फ़रमाया—"जाओ! आठ दिन तक अपने वियोग-कक्षसे बाहर न निकलो और खबरदार, किसीके सामने यह दास्तान मत बयान करना। ईश्वर दयालु है, क्या आश्चर्य उसकी कृपा तुम्हारी दशा पर हो जाय।"

---

१. मीर स्वयं लिखते हैं:—"मन दरां अय्याम हफ्तसाला बूदम। बाखुदम मानूस साख़्त व दर गरेबानम अन्दाख़्त यानी मा मादर व पेदरम न गुज़ाश्त व बफ़रजन्दी खवीशम बर्दाश्त। लमहये अज़ खुद जुदायम नमी कर्द व बनाज़ व नअम मी परवर्द। चुनांचे रोज़ो शब बा ओ मी मांदम व क़ुरान शरीफ़ बखिदमत ओ मी ख़ांदम।"

"अभी एक सप्ताह भी न बीता था कि वह चाँद स्वयं बेक़रार हो गया और भागा हुआ आकर उस पवित्र स्थानपर उपस्थित हुआ जो शहर पनाह के बाहर ईदगाहके निकट स्थित था। मीर मोहम्मद अलीने एक सेवकको इशारा किया और कहा—"जाओ, बिरादर अज़ीज़[1]को बुला लाओ। उससे कहो कि तुम्हारा अभीष्ट तुम्हें ढूँढ़ता है।" अमानुल्ला नंगे पाँव भागे हुए आये और गुरुके चरणोंसे लिपट गये। उसके बाद उस किशोरको गले लगाया। उस लड़केने कहा—"मैंने बहुत तकलीफ़ उठाई, लेकिन खैर, ख़ज़ाना पा लिया। अब इस आस्ताना[2] की जारूबकशो[3]को अपनी सआदत[4] समझता हूँ।" धीरे-धीरे अपनी साधनाके कारण उसने मोहम्मदअलीके शिष्योंमें काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

अपने 'चचा' सय्यद अमानुल्लाके बारेमें 'मीर'ने अनेक घटनाएँ लिखी हैं। "उन्हें दरवेशों, फ़कीरों, सन्तोंसे मिलनेकी सदा उत्कण्ठा रहती थी। एक दिनकी बात है कि वह एहसानउल्ला नामके एक दरवेशके पास गये। मैं भी उनके साथ था। इस फ़क़ीरका यह क़ायदा था कि जब कोई दरवाज़े पर आवाज़ देता तो वह कह देता कि अहसानउल्ला घरमें नहीं हैं। उस दिन भी उसने ऐसा ही किया। मेरे 'चचा'ने कहा—'अगर एहसान-उल्ला नहीं है तो अमानउल्ला है।' वह हँसा और उसने फौरन दरवाज़े के किवाड़ खोल दिये। एक जवान शख़्स[5] नज़र आया।....उसके चेहरे पर अन्तःज्योति फूट रही थी। थोड़ी देर बाद वह बुज़ुर्ग मेरी तरफ़ आकृष्ट हुए और पूछा यह लड़का किसका है। चचाने फरमाया—'अली मोतक़्क़ीका फ़र्ज़न्द[6] और मुझ गुनहगार[7] का परवर्दा है[8]। दरवेशने फरमाया कि यह अभी बच्चा है। अगर इसकी बखूबी तर्बियत[9] हुई तो

१. प्रिय भ्राता, लघु भ्राता, २. (पवित्र) स्थान, ३. झाड़ू देना, सफ़ाई, ४. कल्याण, सौभाग्य, ५. व्यक्ति, ६. पुत्र, ७. पापी, ८. पालित, ९. प्रशिक्षण।

एक ही परवाज़[1]में आसमानके उस पार पहुँच जायगा। उसके बाद दरवेशने रोटीका एक सूखा टुकड़ा पानीमें तर करके खानेको दिया।.... उसमें मुझे वह लज़्ज़त[2] मिली जो आज तक किसी खानेमें नहीं मिली और उसका ज़ायक़ा अब तक याद है।''

इसी प्रकार एक दिन मालूम हुआ कि एक दरवेश बायज़ीद नामके, सराय गीलानीके पास, जो बाढ़से तबाह और बर्वाद हो गयी थी, ठहरे हुए हैं। चचा तुरन्त मिलनेके लिए गये। देखा, एक जवान विदग्धहृदय, प्रशस्तात्मा, प्रेमविह्वल बड़ी बेक़रारीकी हालतमें पड़ा है और प्रभुके चिन्तन एवं स्मरणमें लीन है। न खाने-पीनेकी सुध है, न पहनने-ओढ़नेकी। यह दरवेश मेरे चचासे मिलकर बहुत खुश हुए और ज़बाने मुबारकसे वहुत नसीहतें[3] कीं। इन नसीहतोंमेंसे एक नसीहत यह भी थी कि मन्दिर-मस्जिदकी क़ैदसे आज़ाद हो जाओ और अगर मक़सूद[4] तक पहुँचना चाहते हो तो किसी दिलमें राह पैदा करो।★

दूसरी भेंटके समय बायज़ीदका ध्यान 'मीर'की ओर गया। उन्होंने अमानुल्लासे पूछा—यह कौन हैं? उन्होंने कहा—''अली मोतक़्क़ीके बेटे हैं।'' दरवेशने कहा—''हाँ, वह तो बड़े बुज़ुर्ग हैं—दानाय इसरार[5], ख़ुरशीदे आस्माँ[6]। यह इसी दरियाका[7] मोती है? हम फ़क़ीर तो उनके मुक़ाबिलेपर[8] बिल्कुल तिहीदस्त[9] हैं।''

एक दिन मीर अमानुल्ला 'मीर'को लेकर फिर बायज़ीदके पास पहुँचे।

★ ''ज़िनहार कि दिलशिकनी कसे न कुनी व संग सितम बर शीशए न ज़नी।
दिल रा कि अर्श मी गोयन्द अमी राह अस्त कि मंजिलखासआँ माह अस्त—
नियाज़ारम ज़खुद हर्गिज़ दिले रा
कि मी तर्सम दरो जाये तू बाशद।

१. उड़ान, २. स्वाद, ३. उपदेश, ४. लक्ष्य; इष्ट, ५. रहस्यज्ञाता, ६. आकाशके सूर्य, ७. समुद्र, ८. तुलनामें, ९. नगण्य, दरिद्र,।

यह तीसरी और आखिरी मुलाक़ात थी। उन्होंने देखा कि बायज़ीद बीमार और मलिन हैं और एक पहलूसे लेटे हुए आह-आह कर रहे हैं। सय्यद अमानुल्लाको देखकर एक ठण्डी साँस ली और 'शफ़ाई'का यह शेर पढ़ा—

परिस्तारे नदारम बरसरे बालीन बीमारे
मगर आहम् अज़ी पहलू बआँ पहलू ब गरदानद।

चचाके पूछनेपर कि क्या हाल है, फर्माया—"ऐ अज़ीज़! मेरा सीना ऐसे जल रहा है गोया अन्दर आग सुलग रही है। हर नाला[1] आतिश[2] है और हर आह एक शोलए-सरकश[3]। अगर मौत मेरी फरियादको पहुँच जाय तो मैं अपनेको खुशक़िस्मत समझूँगा। न दिनको चैन है, न रातको क़रार। हवा जो चलती है इस आगको भड़का देती है। पानी जो पीता हूँ इस आगपर तेलका काम करता है। काश, कोई मेरे सीनेको चीर डाले और दिल व जिगरको बाहर निकाल फेंके।"

"सूर्यास्त तक यही हाल रहा। शामकी नमाज़ पढ़ी और प्राण निकल गये। रातको चचाने उन्हें सपनेमें देखा। बहुत खुश थे और कह रहे थे—"देखा तुमने। "एक इश्कने मेरे अन्दर कैसी आग लगा दी थी। इसका इलाज सिवाय मरणके और कुछ न था।‡ जब मेरे प्रियतमने मेरी बेताबी देखी तो मुझे रहमत[4]के समुन्दरमें डाल दिया और मुझे गौहरे मक़सूद[5] से हमकिनार[6] किया।"

'मीर' के निर्माणमें इन बुज़ुर्गोंका बहुत बड़ा हिस्सा है। उनके जीवन और काव्य दोनोंपर इन दिशाओं एवं संस्कारोंके चिह्न दिखायी पड़ते हैं। काव्यकी समीक्षा करते समय हम विस्तारसे इसकी चर्चा करेंगे। यहाँ

‡ "दीदी कि इश्क़ च आतिशे दरमनज़द व चुनानम सोख़्त चारये कार ज़ुज़ मर्ग न बूद।"

१. आर्तनाद, चीत्कार, २. आग, ३. प्रचण्ड लपट, ४. कृपा, ५. वाञ्छित मुक्ता, ६. सम्बन्ध कराना, मिलन कराना।

इतना लिख देना चाहते हैं कि पिता (मीर मोहम्मदअली), चचा (मीर अमानुल्ला) तथा इन दरवेशोंकी जीवन-प्रणाली और व्यक्तित्वका 'मीर' के हृदयपर सदैव गहरा असर रहा। बचपनमें जो कुछ उन्होंने देखा, सुना उसे ही कैशोर एवं यौवनमें ग्रहण किया। उन्होंने निस्पृहता, स्वाभिमान और एकान्तप्रियता अपने पितासे सीखी; प्रेमकी विह्वलता, दर्द, जलन और आवेश 'चचा' अमानुल्लासे ग्रहण किया, तथा पूजाके मिथ्याचारोंके प्रति उपेक्षा एवं धार्मिक उदारताका भाव दरवेशोंसे प्राप्त किया।

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि जब यह दस सालके थे, सय्यद अमानुल्ला का देहावसान हुआ। 'मीर' के दिलपर गहरी चोट लगी। पर उसके

चचा एवं पिता का निधन

कुछ ही दिनों बाद पिता भी चल बसे। और 'मीर' इस संसारमें अकेले रह गये। उन्होंने अपने पिताकी मृत्युके सम्बन्धमें एक घटनाका जिक्र किया है जिससे पता चलता है कि सबको पहलेसे ही मालूम हो गया था कि अब अन्त आ गया है। 'मीर' लिखते हैं कि "मेरे वालिद[१] ने सय्यद अमानुल्लासे फर्माया—"ऐ बिरादर अज़ीज़! ज़ोफ़[२] बढ़ता जाता है। अगर कुर्आं हिफ़्ज़[३] कर लो तो क्या अच्छा हो।" अर्ज़[४] किया कि बहुत ख़ूब। एक दिन दोनों बैठे पाठ कर रहे थे कि एक दरवेश असदउल्ला नाम, नीले कपड़े पहिने और नमदी कुलाह[५] ओढ़े विशेष परिच्छद् पहिने आया। ज्यों ही मेरे वालिदके सामने आया, उन्होंने फ़र्माया—'भाई, इतने दूर-दराज़का सफर तूने क्यों अख़्तियार किया और इतनी ज़हमत[६] और मशक्कत[७] क्यों उठायी ?" दरवेश दौड़के क़दमों पर गिर पड़ा। वालिद उससे बग़लगीर हुए[८]। और उसे अपने पास जगह दी। चचाजान यह घनिष्ठता देख हैरान हुए और पूछा, यह कौन बुज़ुर्ग हैं ? कहा—मेरे पुराने

१. पिता, २. दुर्बलता, ३. ज़बानी याद करना, ४. निवेदन, ५. टोप, ६. विपत्ति, ७. श्रम, ८. भेंटे।

परिचित हैं। वह और अधिक चकित हुए, इसलिए कि उनको इसके पहिले न कभी देखा था, न उनकी चर्चा ही कभी सुनी थी। उनको चकित देख पिताने कहा—हम दोनों एक ही आश्रम—धर्मस्थान—के सेवक हैं। पहिले सालमें एक बार ज़रूर उनकी सेवामें उपस्थित होता था। एक बार मैंने गुरुदेवसे निवेदन किया कि कितना अच्छा हो अगर मरनेसे पहिले मुझे इसकी सूचना मिल जाय ताकि मैं अपना ध्यान अन्य वस्तुओंसे हटा लूँ। आदेश हुआ कि जब तुम इस विशेष परिच्छदको दोबारा देखो तब समझ लेना कि दूसरे साल तक जीवित न रहोगे, उम्र बहुत थोड़ी बाक़ी है। चचा यह सुन कर बड़े दुखी हुए और कहा—भगवत्कृपासे मैं इस घटनाको अपनी आँखोंसे न देखूँगा और इसके पूर्व ही इस संसारसे विदा हो जाऊँगा।

"जब उस दरवेशसे बातें हुई तो उसने कहा कि कुछ दिनोंसे मेरी दुकान बिल्कुल नहीं चलती थी और इसके कारण बहुत ही परीशान था। एक दिन मैंने गुरुदेवको स्वप्नमें देखा कि वह सिरहाने खड़े हैं और फर्मा रहे हैं कि 'ऐ असदउल्ला, यद्यपि यात्रामें कठिनाइयाँ बहुत हैं और रास्ता भी दूरका है लेकिन एक बार तुम अली मोतक़्क़ीके पास ज़रूर जाओ। मेरे और उनके बीच एक सङ्केत है जिसको वह तुम्हारे जानेसे समझ जायँगे। इसलिए जल्दी जाओ और कठिनाइयोंसे परीशान न हो। वहाँसे लौटने पर तुम्हारी दुकान खूब चलेगी। बस, मैंने दुकान एक शिष्यके सुपुर्द की और सीधा अकबराबादके लिए चल खड़ा हुआ।

"ईदका दिन था। चचाजानने कपड़े बदले और नमाज़ पढ़ी। इसके बाद उनके सीनेमें ऐसा दर्द शुरू हुआ कि किसी करवट चैन नहीं आया। चेहरेका रंग बदल गया और सब्रकी ताक़त जाती रही। वालिदसे बुला कर कहा—मालूम होता है कि यह दर्द जानके साथ जायगा। दम घुटा जाता है और सब्र है कि किसी तरह नहीं होता। शाम तक यह दर्द सारे जिस्ममें फैल गया और उनकी तकलीफ़से देखनेवालोंके दिल हिलने लगे।

प्रातःकालीन नमाज़के समय वह चले गये ।" इस प्रकार अपने गुरुकी मृत्यु अपनी आँखों न देखनेके अपने वचनका निर्वाह किया । मीरने उस दुःखका वर्णन किया है जो इस घटनासे उनके पिताको और उन्हें हुआ । वह कहते हैं कि चचाकी मृत्युसे मेरे पिताको बड़ी चोट लगी और वह अपने आपको 'अजीज़ मुर्दा' कहने लगे । मेरे ऊपर तो क़यामत[१] ही गुज़र गयी। हर वक्त उनके साथ रहता था और अपनी ज़रूरतोंको उन्हींसे कहता था । अब दिन और रात सिवा उनकी यादके और कुछ शग़ल[२] नहीं था । वालिद बहुतेरी दिलजोई[३] करते लेकिन गमग़लत[४] न होता । कभी फ़र्माते कि मुझे तेरा बड़ा ख़्याल है लेकिन मैं खुद बरसरे राह[५] हूँ । कभी कहते, ख़ुदाका शुक्र है कि दस बरसके हो । उस पर नज़र रखो और अपने दिलको मज़बूत करो ।

चचाके बाद पिता भी

"एक रोज़ अपने भांजे मोहम्मदके पास आलमगंज तक पैदल धूपमें जाना पड़ा । दिन भर वहाँ रहे; शामको लौटे । अपनी मस्जिदमें नमाज़ पढ़ी । फिर मुझसे फर्माने लगे कि मुझे लूका असर हुआ मालूम पड़ता है । सिरमें दर्द है और मालूम पड़ता है कि बुख़ार हो जायगा । इस वक्त कुछ नहीं खाऊँगा । सो गये । सुबह बुख़ार और तेज़ हो गया । उनके पुराने चिकित्सक हकीम अब्दुलफतहने बहुतेरा इलाज किया मगर कुछ फ़ायदा न हुआ । बुख़ार ठहर गया और रोज़ शामको तेज़ होने लगा । एक महीने चिकित्साके बाद भी जब कुछ लाभ न हुआ तो लोग समझ गये कि बुख़ार हड्डियोंमें असर कर गया । धीरे-धीरे क्षय हो गया । भोजन बिल्कुल छूट गया । सिर्फ़ नर्गिसके फूल सूंघ लेते थे । बादमें दवा भी छोड़ दी । एक दिन मुझे और बड़े भाई हाफ़िज़ मोहम्मद हसनको बुलाया और फर्माया कि मैं एक फ़क़ीर हूँ । मेरे पास न रुपया, न पैसा,

१. प्रलय, २. काम, ३. दिल बहलाव, ४. दुःख-निवृत्ति, ५. पथके बीच, मतलब है कि चलने ही वाला हूँ ।

न सामान, न जायदाद। अलबत्ता तीन सौ जिल्दें किताबोंकी हैं, लाओ उन्हींको तुम दोनोंमें बाँट दूँ। बड़े भाईने कहा कि 'आपको मालूम है, मैं विद्यार्थी हूँ और किताबें सिर्फ़ मेरे काम आ सकती हैं। मोहम्मद तक़ीको इससे क्या वास्ता, सिवा इसके कि इनकी पतंग बनाकर उड़ायें या फाड़ डालें।' वालिदको बात बुरी लगी। वह समझ गये और फर्माया—"अगर्चे तूने फ़क़ीरी इख़्तियार की है लेकिन तेरे मनसे बुराई नहीं गयी। इन किताबोंको तूही ले ले लेकिन याद रख कि अल्ला ग़यूर[१] है और ग़यूरको दोस्त रखता है। मोहम्मद तक़ी तुम्हारा दस्तेनिगर कभी न होगा। ज्यादा सताओगे तो उसकी सजा पाओगे। समझ लो कि उसके सामने तुम्हारा चिराग़ हर्गिज हर्गिज़ जल नहीं सकता।" उसके बाद मुझे फर्माया—"मुझपर तीन सौ रुपये बाज़ारके क़र्ज़ हैं, जबतक उन्हें चुका न देना, मेरा मृतक कर्म न करना।" मैंने निवेदन किया—"घरकी सम्पत्ति तो यही किताबें थीं जो भाईजानके अधिकारमें आ गयीं; अब मैं क़र्ज़ चुकानेका क्या उपाय करूँगा।" उन्होंने कहा—"घबराओ मत। ख़ुदा कारसाज़ है। हुण्डी रास्तेमें है। पहुँचना ही चाहती है। जी चाहता है कि मेरे सामने ही आजाय किन्तु मौत क़रीबतर[२] है और फुर्सत कम, लिहाज़ा[३] ख़ुदा हाफ़िज़[४]।" इसके बाद प्राण त्याग दिये।

पिताके निधनके बाद

बापके मरनेके बाद इस बालकपर क्या बीती होगी, इसकी कल्पना-मात्रसे मन करुणार्द्र हो जाता है। लावारिस ग़रीब बच्चा, ऋणदाताओंका तक़ाज़ा, घोर ऐकान्तिकता, भाईकी निष्ठुरता, मतलब विपत्तियोंका पहाड़ ही टूट पड़ा। पर उसने पिताकी आज्ञाका पालन किया, प्रभुमें विश्वास रखा और किसीके आगे हाथ नहीं फैलाये।[५] बड़े भाईने बाह्य

१. स्वाभिमानी, २. निकटतर, ३. अतः, ४. ईश्वर रक्षक है, ५. "ख़ुदाये करीम मरा शर्मिन्दए एहसान कसे न कर्द। दोस्त निगर बिरादर कि सर बसर मन दाश्त न साख़्त। नक़ल मातम दरवेश क़िस्मत साख़्तम। कारे रा बलुत्फ़े-ख़ुदावन्द अन्दाख़्तम।"

शिष्टाचारसे भी मुँह मोड़ा और यह सोचकर कि बाप निर्धन मरा है, ऋणदाता तंग करेंगे, अलग बैठ रहे और कहने लगे कि जिनको उन्होंने दुलारसे पाला है वह जानें, उनका काम जाने। मैं तो किसी काममें न पहिले था, न अब हूँ। ऐसे समय केवल ईश्वरका ही सहारा था। बाज़ार के बनिये दो सौ रुपये लेकर आये पर 'मीर' ने स्वीकार न किये। इतनेमें इनके पिताके शिष्य मुकम्मलखाँ पाँच सौ रुपयेकी हुण्डी लेकर आये। 'मीर' ने पहिले तीन सौ रुपये ऋणदाताओंको चुकाये और सौ रुपये पिताके अन्तिम कृत्यमें व्यय किये। गुरुकी कब्रके पास दफ़न किया।

जिक्रे मीरसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पिताकी मृत्युके समय इनकी उम्र ग्यारह वर्षके लगभग थी। पर इस सम्बन्धमें उर्दू विद्वानोंमें मतभेद

उनकी उम्रके सम्बन्धमें मतभेद

है। सर शाह सुलेमानका कथन है कि 'मीर' ने अपनी उम्रका ठीक अन्दाज़ नहीं किया। श्री अब्दुलबारी 'आसी' ने भी अपने 'कुल्लियाते मीर' की भूमिकामें लिखा है कि मीर साहबसे उनके स्वर्गीय पिताकी बातें और उपदेश, ऋणदाताओंके प्रति कर्तव्य-पालन, पिताके प्रति अन्तिम कृत्य-सम्पादन, सब बातोंका निबटारा और अपने छोटे भाईको घर सौंपकर जीविकाकी तलाशमें उनका बाहर निकलना[1], किसीसे कुछ मदद माँगे बिना जीविकोपार्जनके लिए दूरका सफर, और पिता तथा अमानुल्लाके जीते जी भी दरवेशोंका सत्संग वग़ैरा ऐसी बातें नहीं हैं कि दस-बारह सालके बच्चेके करने योग्य मानी जायँ। फिर आगराके आस-पास कुछ दिन भटकनेके बाद 'मीर' दिल्लीका रुख करते हैं। दिल्ली पहुँचते हैं।

१. मीर लिखते हैं :—"दमे खुदरा ब बिरादर खुर्द सुपुर्द: बतलाशे रोज़गार दर इतराफ़ शह्र उस्तख्वाँ शिकस्तम लेकिन तर्फ़ न बुस्तम यानी चारयेकार दर वतन नयाफ़्तम। नाचार बगुर्वत शताफ़्तम। रंजे राह बरखुद हमवार कर्दम। शदायदे सफर इख्तियार कर्दम व शाहजहानाबाद देहली रशीदम।."

इस पर 'आसी' लिखते हैं—" दिरायत[1] व क़यास[2] कभी इस अमर मुहाल[3] के तस्लीम[4] करनेको तैयार नहीं है कि एक दस-ग्यारह बरसका बच्चा अकबराबादसे देहली तकका उस ज़मानेमें सफर करे कि क़ाफ़िले लुटते थे, रास्ते महफ़ूज़[5] न थे, क़दम-क़दम पर खून बहाये जाते थे। फिर यह सब कुछ भी हो तो उस वक्त उनके ऐज़ाए-क़रीब[6] ने क्योंकर उनको इस दूर दराज़ मुसाफ़त[7] तय करनेकी इजाज़त दी।"

दो-एक और साहबोंने भी इसी प्रकारके सन्देह प्रकट किये हैं। पर ये सब कोरी कल्पनाकी बातें हैं। जब बातचीतमें कई बार उनके पिता भी उनकी दस सालकी उम्रका जिक्र करते हैं तब उसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं। कभी झूठी बात बोलनेकी कल्पना भी वैसे पवित्र व्यक्तिके सम्बन्धमें नहीं की जा सकती। फिर पिताके आखिरी वक़्तमें मीरके बड़े भाईका यह व्यंग कि 'यह तो किताबोंको फाड़ डालेगा या पतङ्ग बनाकर उड़ायेगा' भी यही सिद्ध करता है कि मीर बच्चे थे। और जो कुछ मीरने छोटी उम्रमें किया वह कोई असम्भव बात नहीं। १२ सालकी उम्रमें ही बाबर अपने कबीलेका सरदार चुना गया था। तेरह सालकी उम्रमें अकबरने गद्दी सँभाली थी। बात यह थी कि बचपनसे ही मीर अपने पिताके असाधारण तपोमय जीवनकी छायामें पले; उनके यहाँ एकसे एक ऊँचे आदमी आते थे। वह स्वयं भी चचाके साथ अनेक फकीरोंके पास जाते थे। उनके प्रशिक्षणका भी पिता और चचा बड़ा ध्यान रखते थे। इसलिए स्वभावतः बचपनमें ही उन्हें उच्च संस्कार पड़ गये और सामान्यतः १५–१६ सालके लड़केसे जिस बातकी अपेक्षा की जा सकती है वह ११

क्या यह असम्भव है ?

---

१. प्रज्ञा। २. अनुमान, कल्पना। ३. असम्भव कार्य। ४. मान्य। ५. सुरक्षित। ६. निकटके, प्रिय, स्वजन। ७. फासला, अन्तर। देखिए कुल्लियाते मीरमें श्री अब्दुल बारी 'आसी' का मुक़द्दमावाला अंश पृष्ठ १३ कुल्लियाते मीर (न० कि० प्रे०)

वर्षकी अवस्थामें 'मीर' करने लगे थे। आज भी ऐसी बातें हमारे आपके ही कुटुम्बोंमें मिल सकती हैं और अब तो वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानोंने भी सिद्ध कर दिया है कि मनुष्यकी बौद्धिक आयु एवं शारीरिक आयुमें कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ८ वर्षका बच्चा १२ वर्षके बच्चेकी बुद्धि रख सकता है। इसलिए मुझे ज़रा भी शुबहा नहीं कि मीरने अपना जो हाल लिखा है वह ठीक है।

दिल्लीको प्रयाण

पिताकी मृत्युके बाद 'मीर' बिल्कुल अकेले पड़ गये। इनके वंशवृक्षको, जो नीचे दिया जा रहा है, देखनेसे जान पड़ता है कि बड़ी माँसे उत्पन्न बड़े भाईके अलावा इनकी माँसे उत्पन्न एक छोटा भाई था, और एक बहिन भी थी—
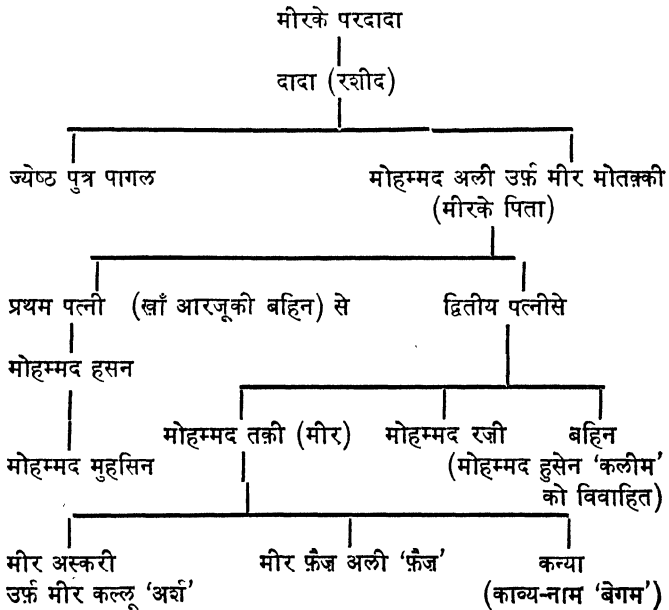
इन्होंने छोटे भाई मोहम्मद रज़ीको अपने स्थान पर रखा और स्वयं जीविकाकी खोजमें बाहर निकले। कुछ समय आगराके आस-पास फिरते रहे पर कोई साधन जीविकोपार्जनका न मिला तो जन्मभूमिको प्रणाम किया और दिल्लीकी ओर चल पड़े। बड़ी दिक्क़तोंसे वहाँ पहुँचे। वहाँ जाकर कहाँ ठहरे, इसका कोई पता नहीं लगता। पर एक दिन घूमते-फिरते अमीरुलउमरा समसाम-उद्दौलाके भतीजे मोहम्मद बासितसे भेंट हो गयी। अमीरुलउमरा इनके पिताके भक्तोंमें थे। मोहम्मद बासित इन्हें अपने चचा के पास ले गये। उन्होंने पूछा—'यह किसका लड़का है?' बासितने जबाब दिया—'मीर मोहम्मदअली का।' फर्माने लगे—'इसके यहाँ आनेसे तो ज़ाहिर[१] होता है कि वह राहिए अदम[२] हुए।' बड़ा दुःख प्रकट किया। उसके बाद कहने लगे—'उस शख्स[३] के मुझपर बहुतसे हुकूक[४] हैं। इस लड़केको एक रुपया रोज़ हमारी सरकारसे दिया जाय।' इस पर 'मीर' ने निवेदन किया कि जब नवाब साहबने इतनी कृपा की है तो मेरे प्रार्थना-पत्र पर लिखित आदेश देनेकी भी कृपा करें। यह कहकर जेबसे प्रार्थना-पत्र निकाला और पेश कर दिया। धनिक एवं विलासी राज्याधिकारी टालमटोल वाले हुआ ही करते हैं। नवाबने कह दिया :—"वक्ते क़लमदान नेस्त" अर्थात् "क़लमदानका वक्त नहीं है।" मीर साहब लिखते हैं कि यह सुन कर मुझे ज़ोरोंकी हँसी आ गयी। नवावने चकित होकर देखा और पूछा—"क्यों भई! क्या है? हँसे क्यों?" मैंने झट कह दिया कि मैंने हुज़ूरके इस फ़िक़रेका मतलब नहीं समझा। अगर आप यह फर्माते कि हस्ताक्षरका समय नहीं या क़लमदान उठानेवाला नहीं तो ख़ैर एक बात भी थी किन्तु यह कहना कि वक्तेक़लमदान नहीं है, एक अजीब और नया मुहाविरा है। क़लमदान कोई जानदार तो है नहीं; वह तो लकड़ीका है, उसके लिए कोई समय या असमय नहीं होता; जिससे कहिएगा उठा

१. प्रकट। २. मृत्युके पथिक। ३. व्यक्ति। ४. अधिकार।

लायेगा ।' इस पर नवाब हँसने लगे और बोले–'ठीक कहते हो।' उसी वक़्त क़लमदान मँगवाकर अर्जी पर हस्ताक्षर कर दिये और मुझे बड़े स्नेह एवं कृपापूर्वक विदा किया ।''

इससे सिद्ध होता है कि बचपनमें ही उनको भाषा पर कैसा अधिकार मिल गया था और उनकी मेधा कितनी तीव्र थी ।

इस प्रकार उनकी तुरन्तकी कठिनाई दूर हो गयी । 'मीर' को यह वृत्ति नादिरशाहके हमले—१७३९ ई०—तक मिलती रही । उस हमलेमें अमीरुलउमरा समसाम उद्दौला मारे गये और वृत्ति बन्द हो गयी । इस प्रकार एक डेढ़ साल बाद जीविकाका प्रश्न फिर उठ खड़ा हुआ । अब यह फिर बेकार और परीशान हो गये ।

ऐसा जान पड़ता है कि बापकी मृत्युके बाद जीविकाकी तलाशमें दो-एक बरस यह आगराके आस-पास ही चक्कर काटते रहे । लगभग १३ सालकी अवस्थामें दिल्लीकी ओर रवाना हुए । वहाँ भी तुरन्त ही तो इनकी भेंट नवाब साहबसे हुई न होगी । एकाध साल गुज़रनेके बाद यानी १४।।–१५ सालकी उम्रमें यह नवाबसे मिले होंगे । फिर लगभग १६।।–१७ सालकी उम्र तक उन्हें यह वृत्ति मिलती रही होगी ।

नादिरशाहके हंगामेके बाद यह वतनको लौट गये । पर वहाँ लोगोंकी दुनियादारीसे इनके भावुक हृदयको गहरी ठेस लगी । किशोरावस्थाकी

देहलीकी दूसरी यात्रा

उभरती उमंगें लोगोंकी आँखोंमें स्नेहकी दीप्ति ढूँढ़ती हैं, जिन्दगी सौ-सौ बल खाती है; रोती, नाचती और खिलखिलाती है; मन किसीसे बँधना चाहता है—किसीका होना चाहता है, किसीको अपना बनाना चाहता है । वहाँ कहीं इसकी गुंजाइश न थी । लोगोंके दिल समयके लौह दण्डसे कुट-पिट कर चौरस हो रहे थे । इनकी स्नेहकी प्यास वहाँ न बुझी; किसीने इनसे वह प्रेमल व्यवहार न किया जिसकी इनको आशा थी । वह लिखते हैं :—

"जो लोग दरवेश (पिता) की ज़िन्दगीमें मेरी खाके पा[1] को सुर्मा समझ कर आँखोंमें लगाते थे अब उन्होंने एकबारगी मुझसे आँखें चुरा लीं।"★

निराश हो कर यह पुनः दिल्ली लौटे और इस बार अपने सौतेले बड़े भाईके मामा सिराजुद्दीन अली ख़ाँ 'आरज़ू'के यहाँ ठहरे। ख़ाँ आरज़ू उस समय दिल्लीके बौद्धिक एवं साहित्यिक जगत्में बड़ी प्रतिष्ठा रखते थे और 'इमामुल मुताख़रीन' कहे जाते थे। यह उनके पास रहते थे और कुछ लोगोंकी सहायतासे बराबर अपना अध्ययन भी जारी रखे हुए थे। 'आरज़ू' भी इनकी शिक्षा-दीक्षामें बड़ी दिलचस्पी लेते थे। पर वह पुराने ख्यालके वुजुर्ग थे। उधर दिल्लीसे आगरा लौटने पर, ऐसा जान पड़ता है कि 'मीर' किसी विधुवदनी पर मोहित हो गये थे। इस बातसे इनके सौतेले बड़े भाई और चिढ़ गये और उन्होंने अपने मामासे उनकी शिकायत लिखी कि वह धूर्त्त और उपद्रवी है। उसकी शिक्षा-दीक्षा पर परिश्रम न करें। § इससे मामा और चिढ़ गये और इनके साथ कठोरताका व्यवहार करने लगे। ‡

इससे मीरका मानसिक सन्तुलन दिन-दिन बिगड़ता गया। उस समय

१. पैरकी धूल।

★ "कसाने कि पेश दरवेश खाके पाए मरा कहलबसरी साख्तन्द, एक बार अज़ नज़रम अन्दाख्तन्द।" पृष्ठ ६३।

§ "मीर मोहम्मद तक़ी फितनए-रोज़गार अस्त। ज़ीनहार व तर्बियत ओ न : बायद परदाख्त।"

‡ "वह अजीज़ वाक़ई दुनियादार शख्स था। भाँजेके लिखनेसे मेरे दर पे हो गया। जब कभी मुलाकात होती तो बिला वजह बुरा-भला कहना शुरू कर देते और तरह-तरहसे तकलीफ़ पहुँचानेकी कोशिश करते। मेरे साथ उनका सलूक ऐसा था जैसे किसी दुश्मनसे होता है। अगर उनकी दुश्मनीकी तफ़सील करूँ तो एक दफ्तर हो जाय।"

की उनकी मनोव्यथाकी कल्पना कीजिए। एक ऐसे पिताका लड़का जिसकी चरण-धूलि लेनेको न जाने कितने लोग उत्सुक रहा करते थे, संसारमें अनाथ, सब साधनोंसे हीन, बेकार, परीशान, प्रेमकी असफलतासे निराश और दिल्ली जैसी महानगरीमें जिसके एक मात्र आश्रय में था उससे भी प्रताड़ित। क्या स्थिति रही होगी, इनके मनकी। असीम मनोव्यथा के कारण यह लगभग पागल हो गये। किवाड़ बन्द कर लेते और दिन-दिन भर पड़े रहते। चाँदकी ओर देखते रहते। उसमें एक सूरत नज़र आती। 'ज़िक्रे मीर' तथा अपनी मस्नवी 'ख़्वाबो ख़याल'में भी अपनी अवस्थाका वर्णन इन्होंने किया है :—

चला अकबराबादसे जिस घड़ी।
दरो बाम[1] पर चश्मे हसरत[2] पड़ी॥
पस[3] अज़ क़तअ रह[4] लाये दिल्लीमें बख़्त[5]।
बहुत खींचे याँ मैंने आजार[6] सख़्त॥
जिगर[7] जौरे गर्दूं[8] से ख़ूँ हो गया।
मुझे रुकते-रुकते जुनूँ[9] हो गया॥
हुआ ख़ब्तसे मुझको रब्ते तमाम[10]।
लगी रहने वहशत[11] मुझे सुबहो शाम॥
य वहमे ग़लतकार[12] याँ तक खिंचा।
कि कारे जुनूँ[13] आस्माँ तक खिंचा॥

१. द्वार एवं छत। २. लालसापूर्ण नयन। ३. अतः। ४. वह रास्ता छोड़कर। ५. भाग्य। ६. यातनाएँ। ७. हृदय (यकृत)। ८. ज़मानेके अत्याचार। ९. उन्माद। १०. आत्मीयताका विच्छेद। ११. पागलपन। १२. मिथ्या भ्रम। १३. उन्मादका प्रभाव।

नज़र रातको चाँद पर गर पड़े।
तो गोया कि बिजली सी दिल पर पड़े ॥
महे चारदह[1] कारे आतिश[2] करे।
डरूँ याँ तलक मैं कि जी ग़श[3] करे ॥
नज़र आये इक शक्ल महताब[4] में।
कमी आये जिससे खूरो खाबमें ॥

जब हालत ज़्यादा खराब हो गयी तब मित्रों एवं प्रियजनोंने चिकित्सा शुरू की। ऐसे समय फ़ख़रुद्दीन ख़ाँकी पत्नीने, जो इनकी निकट सम्बन्धिनी भी थीं, इनकी बड़ी सेवा की। उन्होंने इलाजके साथ मन्त्रोपचार भी कराया। धीरे-धीरे इनकी तबीयत ठीक हो गयी। पर ख़ाँ आरज़ूसे इनका दिल फट गया; वह अन्तर बढ़ता ही गया और अन्ततोगत्वा एक दिन यह वहाँसे हट गये।

ख़ाँ आरज़ू और 'मीर' के पारस्परिक सम्बन्ध क्यों बिगड़े, इसका कोई स्पष्ट कारण, ज्ञात नहीं होता। भांजेकी शिकायतसे एक गम्भीर विद्वान्का इतना चिढ़ जाना कि दुश्मन-जैसा व्यवहा करने लगना, कुछ समझमें आनेवाली बात नहीं है। उस समयके प्राप्त सभी विवरणोंमें ख़ाँ आरज़ूकी विद्वत्ता, गम्भीरता तथा सहृदयताकी प्रशंसा मिलती है। स्वयं मीरने अपने प्रथम ग्रन्थ 'नकातुश्शुअरा' में उनकी बड़ी प्रशंसा की है और उन्हें अपना उस्ताद माना है। एक जगह तो लिखा है कि ऐसा फ़ाज़िल[5] हिन्दुस्तानमें कोई नहीं बल्कि विदेशोंमें भी सन्देह ही है कि कोई होगा। उधर अपनी बादकी किताब ज़िक्रे मीरमें, जिसका प्रणयन ख़ाँ आरज़ूकी मृत्युके एक साल बाद

परस्पर-विरोधी विवरण

१. चौदहवींका चाँद, पूर्णचन्द्र। २. आगका काम। ३. मूर्च्छा। ४. चन्द्र। ५. विद्वान।

आरम्भ हुआ, वह उनकी कठोरता एवं अन्यायकी बात लिखते हैं।* तब क्या सत्य है ? या तो खाँ आरजूके जीवन-कालमें उन्होंने उनके विरुद्ध कुछ लिख कर और उत्तेजित करना और अपने मार्गकी कठिनाइयाँ बढ़ाना उचित नहीं समझा, या फिर बादमें छोटी-छोटी घटनाओंको लेकर उन्हें बढ़ा-चढ़ा दिया है। 'नकातुश्शुअरा' एक साहित्यिक समीक्षा ग्रन्थ है; उसमें कवि-चर्चा है; काव्यका विवेचन है। सम्भव है, इसीलिए 'मीर' ने उसमें अपनी व्यक्तिगत बातों और निजी झगड़ोंकी चर्चा करना उचित न समझा हो 'किन्तु जिक्रे मीर' में वह अपनी जीवन-घटनाएँ लिख रहे थे। इसका सम्बन्ध उनके निजी जीवन और अनुभवोंसे था, इसलिए संभव है, इसमें अपने मार्गमें आने वाली कठिनाइयोंके निदर्शनके लिए उन्हें लिखा हो।

बहरहाल, इतना तय है कि खाँ आरजूसे मीरका सम्बन्ध बादमें कड़ुवा हो गया। शम्शुलउलमा मौलाना मुहम्मदहुसेन 'आज़ाद' ने अपने ग्रन्थ 'आबे हयात'में इस बिगाड़का कारण यह बताया है कि खाँ आरजू हुनफ़ी थे और यह शिया इसीलिए किसी मस्ले पर बिगड़कर अलग हो गये। पहली बात तो यह कि इसका भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि मीर शिया-थे। उनके पूर्वज तो निश्चित रूपसे सुन्नी थे। हाँ, यह जरूर है कि उस समय न केवल राजनीतिक क्षेत्रमें वरं विद्या एवं साहित्यके क्षेत्रमें भी शिया प्रभाव फैलता जा रहा था। वस्तुतः मीर धर्मके बारेमें बड़े उदार थे; वह प्रेम-धर्मी थे। प्रेमधर्मी पितामें उच्च आध्यात्मिकताके कारण जो आत्म-नियन्त्रण था वह मीरमें न था। उन्हें इसका समय एवं अवसर ही नहीं मिला। फिर

*आश्चर्य तो यह है कि डा० अब्दुलहक़ जैसे विद्वान्ने इसी आधार पर नकातुश्शुअराके बादमें लिखे जानेकी कल्पना की है। जब दोनों ग्रन्थोंके प्रणयन कालके सम्बन्धमें निश्चित प्रमाण उपलब्ध हैं तब ऐसी कल्पना भ्रमात्मक है। एक नहीं, अनेक स्थानों पर बार-बार उस कालका उल्लेख है जिसमें ये दोनों ग्रन्थ लिखे गये।

किशोरावस्था; वह प्रेमी, सौन्दर्योपासक बन गये। किसीके प्रेममें बदहवास इधर-उधर फिरते थे। इससे कुछ बदनामी भी होने लगी थी। ख़ाँ आरज़ूको यही बुरा लगा होगा। और एक बार जब आदमी पर एक छाप पड़ जाती है तो जल्द मिटती नहीं। जो भी बात हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि मीरके जीवन और काव्य पर—और काव्य पर तो बहुत ज़्यादा—ख़ाँ आरज़ूकी छाप पड़ी है। ख़ाँ आरज़ूकी फारसी तरकीबों एवं शब्दोंको, जो उनके कोशमें हैं, मीरने ख़ूब अपनाया है और उनका अच्छा निर्वाह किया है।

अन्य गुरुजन

उन्माद शान्त होने पर 'मीर' ने पुनः स्वाध्याय आरम्भ किया। एक दिन बज़ारमें एक किताबका कोई अंश लिये बैठे थे कि एक जवान मीर जाफ़र उधरसे गुज़रा। यह लिखते हैं :—"मुझे देखा और बैठ गया। कहा, मालूम होता है तुम्हें पढ़नेका शौक़ है। अगर मेरा अनुमान सत्य है तो मैं तुम्हें पढ़ा सकता हूँ। मैं भी विद्याभ्यासी हूँ पर कोई समानधर्मा नहीं मिलता।" मीरने कहा—"मैं आपकी कोई ख़िदमत तो कर नहीं सकता, अगर यों ही यह ज़हमत गवारा फ़र्मायें[1] तो इनायत[2] होगी।" उन्होंने कहा—"मगर बग़ैर नाश्ताके मेरे लिए कहीं आना-जाना मुमकिन नहीं है।" मीर बोले—"मेरे पास कुछ नहीं है पर ख़ुदा यह मुश्किल भी आसान करेगा।" तबसे मीर ज़ाफर इन्हें पढ़ाने लगे। मीरने लिखा कि वह बड़ी मेहनतसे मुझे पढ़ाते और मुझसे भी जहाँ तक बन पड़ता उनकी ख़िदमत करता। यह क्रम कुछ दिनों तक चला। बादमें घरसे कोई ज़रूरी पत्र पाकर मीर जाफ़र अपने वतन (पटना) चले गये।

कुछ दिनों बाद 'मीर' की भेंट सय्यद सआदत अलीसे हो गयी। यह अमरोहाके रहनेवाले थे और रेखतामें शेर लिखते थे। अबतक 'मीर'

१. कष्ट स्वीकार करें। २. कृपा।

फारसीमें कविता करने लगे थे पर रेख़ताका रिवाज बढ़ रहा था। सआदत अलीने इन्हें रेखतामें लिखनेको उत्साहित किया। मीरके हृदयमें पिता एवं अमानुल्ला द्वारा दिये हुए गहरे प्रेम-संस्कार थे, हृदयमें वेदना थी, ख़ाँ आरजूका रंग था, यौवनकी अँगड़ाई और खुमारी थी, स्वाध्याय-अर्जित फारसी एवं अरबीका ज्ञान था, बस इन्होंने रेख़तामें काव्यका प्रणयन आरम्भ कर दिया और उसको पकड़ा तो ऐसा पकड़ा और ऐसा गहरा अभ्यास किया कि शीघ्र ही दिल्लीके प्रतिष्ठित शायरों[1] में गिने जाने लगे। पर जो तुनुकमिज़ाजी इनमें आ गयी थी वह इनकी जिन्दगीसे कभी न गयी। एक दिन ख़ाँ आरज़ूने अपने साथ खानेके लिए बुलाया। बातचीतमें ख़ाँ आरज़ूके मुँहसे कोई ऐसी बात निकल गयी जिसे 'मीर' बर्दाश्त[2] न कर सके और बिना खाना खाये घरसे बाहर चले गये। जामा मस्जिदकी ओर चले किन्तु न जाने ध्यान कहाँ था कि रास्ता भूलकर हौज़क़ाज़ी पर जा निकले। प्यास लगी थी, वहाँ रुककर पानी पीने लगे। उधरसे अलीमउल्ला नामका एक आदमी जा रहा था। उसने इन्हें देखा तो आगे बढ़कर इनसे पूछा—"क्या जनाब का नाम मीर मोहम्मदतक़ी 'मीर' है ?" इन्होंने पूछा—"आपने कैसे पहचाना ?" वह कहने लगा कि आपकी मजनूँनाना हरकतोंकी तो शहर भरमें धूम है। ख़ैर, निवेदन यह है कि एतमाद उद्दौला कमरुद्दीन ख़ाँके बहनोई★ रिआयत ख़ाँ आपसे मिलनेको बड़े उत्सुक हैं। अगर मेरे साथ तशरीफ़ ले चलें तो मेहरबानी होगी।" इन्होंने स्वीकार कर लिया। अलीमउल्लाके साथ पहुँचे। रिआयत ख़ाँने बड़े तपाकसे इनका स्वागत किया। बस, उस दिनसे मीर उनके यहाँ नौकर हो

१. कवियों। २. सहन।

★'आसीने इन्हें क़मरुद्दीन खाँका दामाद लिखा है। और डा० अब्दुल-हक़ने दौहित्र। पता नहीं क्या गोरखधंधा है। वस्तुतः यह अज़ामुल्ला खाँके पुत्र थे।

गये। यह सन् १७४८ ई० की बात है। इस समय मीरकी उम्र २५–२६ सालकी रही होगी। उनके शेरोंकी धूम थी और कविके रूपमें वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो चुके थे। इसीके ३ साल बाद १७५१ ई० में उन्होंने 'नकातुश्शुअरा' लिखा जिससे प्रकट होता है कि लोग इनके शेरोंकी बड़ी इज्ज़त करते थे।

परिवर्तनोंकी आँधीके बीच चलते हुए

इस समय देशकी दशा बहुत बुरी थी। कब क्या होगा, कोई नहीं जानता था। मीर साहबने वह ज़माना देखा था, जब पिताके पास लोगों की भीड़ लगी रहती थी। उनकी साधुता तथा चचाकी प्रेमोपासनाका उनपर गहरा असर पड़ा था। फिर वह एकदम अनाथ हो गये। स्नेहकी छाया उनपरसे उठ गयी। जिनसे उम्मीदें थीं, उन्होंने कनाराकशीकी। बे-आस, बेसहारे यह संसारके अनजान मार्ग पर चल पड़े। दुनियामें जो कुछ देख रहे थे, उससे सांसारिक ऐश्वर्य परसे इनकी आस्था उठ गयी थी। जैसे हवाके झोंके आते और चले जाते हैं वैसे ही वह उसे समझते थे। दरवेशों और ईश्वर-भक्तोंकी संगतने इनके दिलमें प्रेमकी गरमी पहिलेसे ही पैदा कर दी थी; जीवनका जो रूप देखा उसने हृदयको और कोमल एवं करुणार्द्र कर दिया। वह देख रहे थे कि अभी जिनके यहाँ महफिल लगी है, मुसाहब घेरे हुए हैं, सुख एवं विलासके सब साधन प्रस्तुत हैं, थोड़ी देर बाद वही सूखी रोटीको मोहताज हैं, न कोई दोस्त है न पुरसाँ हाल। देहली जो किसी समय ऐश्वर्य एवं शान्तिका केन्द्र थी, रोज़की लड़ाइयों, परिवर्तनों और रुधिर-पिपासाके बीच व्याध-बाणके सामने पड़ी मृगी की भाँति भयभीत थी। चारो ओर गुण्डों और उचक्कोंका राज्य था। आज एक उठा, कल दूसरेने उसे क़त्ल किया और इसके पहिलेके अधिकार उसके हाथमें आवे, खुद मार दिया गया :—

चोर उचक्के सिख मरहठे शाहो गदा[1] सब ख़्वाहाँ[2] हैं,
चैनसे हैं जो कुछ नहीं रखते फ़ुक्र[3] भी एक दौलत है यहाँ।

मतलब हालत ऐसी थी कि शान्ति एवं सुखकी बात तो दूर रही, लोगोंको ज़िन्दगी और इज्ज़त बचानी मुश्किल हो गयी।

'मीर' सुबह कुछ शाम कुछकी इस अवस्थासे बहुतोंको गुज़रता हुआ देख रहे थे और खुद भी गुज़र रहे थे। रिआयत ख़ाँके साथ रहते कुछ ही दिन बीते थे कि दुर्रानियोंका हमला हुआ। रिआयत खाँके साथ इन्हें भी जाना पड़ा। मोहम्मद शाहका अन्त हुआ; अहमदशाहको तख़्त पर बिठाया गया। इस समय ख़्वाजासरा जावेद खाँकी तूती बोलती थी। उधर राजस्थानकी ओरसे मरहठे चले आ रहे थे। साँभरके समीप उनसे लड़ाई हुई जिसमें रिआयत खाँके साथ यह भी थे। वहींसे अजमेर ख़ाजा मुईनुद्दीन चिश्तीकी दरगाहकी ज़ियारत[4] को गये। देहली वापिस आये तो फिर बेकार हो गये। नवाब साहबके साथ रहे; कुछ चैन मिला। अरबीका अध्ययन शुरू किया कि फिर हवा बदल गयी। सफ़दर जंगने धोकेसे नवाब बहादुरको मरवा डाला। फिर बेकारी आई पर अबतक वह काफ़ी प्रसिद्ध हो चुके थे इसलिए इस बार ज्यादा कठिनाई न हुई। दीवान महानारायणने इन्हें बुलवा लिया। कुछ दिन चैनसे कटे कि बादशाह और वज़ीरमें युद्ध आरम्भ हो गया। छः महीने तक यह सिलसिला चलता रहा। इसी ज़माने (१७५३ ई०) में अपने उस्ताद और मामा ख़ाँ आरज़ूका स्थान छोड़ कर स्वयं अमीर खाँ 'अंजाम' की हवेलीमें रहने लगे। उधर सफ़दर जंगका देहावसान हो गया; शुजाउद्दौला अवधके सूबेदार बनाये गये।

'मीर' के काव्योत्कर्षका यह मध्यकाल था। अपनी गहराई और दर्दमन्दी, अपनी ज़बान और प्रसाद गुणके कारण यह दिल्ली पर छा गये थे। ग़ज़लोंका यह हाल था कि लोग उन्हें तोहफ़े[5] की तरह दूर-दूर अपने

---

१. राजा-रंक। २. इच्छुक। ३. फकीरी। ४. दर्शन। ५. उपहार।

सम्बन्धियोंको भेजते थे। बड़े-बड़े लोग उनकी अछूती भावनाओं और कविताओं पर जान देते थे। जिसे देखिये, इनसे मिलनेको उत्सुक रहता था। पर इनका ज़रा-ज़रा सी बात पर गर्म हो जानेका स्वभाव मतलब इनकी तुनुक-मिज़ाजी बढ़ती ही जा रही थी। एक दिन राजा जुगलकिशोरने★ इन्हें अपने मकान पर बुलाया। कुछ सुना-सुनाया और अपना कलाम[१] इस्लाह[२] के लिए पेश[३] किया। मीर साहब तिनक गये। मामूली शिष्टाचार और दुनिया-दारीका भी पालन न किया। क्रोधमें सारे कलाम पर छुरी फेर दी। भला ऐसे आदमीसे क्या सत्संग हो सकता था। परिणाम वही हुआ कि कष्ट और विपत्तिमें पड़े रहे; राजासे जो लाभ हो सकता था वह नहीं हुआ। फिर भी इतना ज़रूर हुआ कि राजा जुगलकिशोरने राजा नागरमलसे परिचय करा दिया। नागरमल उस समय ख़ालसाके दीवान थे। उन्होंने भी मीरके काव्यकी बड़ी तारीफ़ की। राजाके लड़केने कुछ मासिक वृत्ति बाँध दी। यह वृत्ति एक साल तक उन्हें मिलती रही। फिर स्वयं राजाने भी एक सालकी तनख़ाह दिलवा दी। बीच-बीचमें भी मीरको उनसे कुछ न कुछ मिलता रहा।

इस बीच राजाकी उन्नति हुई। वह नायब वज़ीर हुए। उम्दतुल मुल्ककी उपाधि प्राप्त की किन्तु उससे मीरको कोई विशेष लाभ पहुँचनेके पूर्व ही अचानक दुर्रानीका दूसरा आक्रमण हो गया। राजा नागरमल अपने कुटुम्बियों और साथियोंको लेकर भरतपुरके राजा सूरजमलके क़िलेमें चले गये। मीर भी उन्हींके साथ थे। उधर वे गये; इधर दिल्लीमें वहशतकी एक आँधी आई। नालियोंमें खून बहने लगा; लाशें सड़कोंपर बिछ गयीं।

★ यह कौमका भाट और पेशेसे मद्यविक्रेता था। मोहम्मद शाहके ज़मानेमें बंगालका वकील हो गया। अपने बेटेकी शादी इस शानसे की कि ऐसी दूसरी न हुई।

१. काव्य-रचना। २. संशोधन। ३. प्रस्तुत।

कुछ शान्ति हुई तो मरहठोंने फिर दिल्लीको दबोच लिया। उधर मीर साहब राजा नागरमलसे आज्ञा लेकर तरह-तरहकी विपत्ति झेलते हुए बरसाना पहुँचे। वहाँसे मुखेर गये। यहाँ सफ़दरजंगके खजांची राधाकृष्ण-के पुत्र बहादुरसिंहने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। जब मरहठों और दुर्रानियोंका युद्ध समाप्त हो गया तो राजा नागरमल मुखेर पहुँचे। राजाके पुत्र राय बिशनसिंहने मीर साहबको ठहरा लिया था और कुछ मासिक वृत्ति भी नियत कर दी थी। पर मीर साहबकी तो किसीसे पटती न थी। उन्होंने राजासे कहा कि अबतक हुज़ूरका इन्तज़ार[1] था वर्ना मैं यहाँ रहनेवाला नहीं था; अब जानेकी आज्ञा दें। राजाने कहा—कुछ खबर है कि आप यह फर्मा क्या रहे हैं ? ऐसे ख़तरेके वक्त मैं आपको जानेकी इज़ाजत नहीं दे सकता। इसके बाद तनख़्वाह नियत कर दी और कुछ और भी उपहार दिया। इसलिए यह वहीं रह गये और काफ़ी अर्से तक वहाँ रहे। जब मराठे हार गये और दुर्रानियोंका पूर्ण अधिकार दिल्लीपर हो गया तब पुराने सरदारोंको फ़र्मान[2] भेजकर बुलाया गया। राजा नागरमलके नाम भी संदेश पहुँचा। वह दिल्ली आये। मीर साहब भी उनके साथ ही आये। पर इस बीच दिल्लोपर जो तबाही गुज़री थी उसका वर्णन सम्भव नहीं है। "नक़्शा ही बदल गया था; न वे गृह न वे गृही, न वे मुहल्ले, न वे बाज़ार, हर तरफ़ वहशत, हर तरफ़ वीरानी, न दोस्त न[3] आशना।"★ मीर साहबका दिल रो पड़ा। उनपर इस परिवर्तन एवं विनाशका गहरा असर पड़ा। उनका हृदय निम्नलिखित शेरोंमें रो रहा है :—

> दिल्लीमें आज भीक भी मिलती नहीं उन्हें,
> था कल तलक दिमाग़ जिन्हें तख़्तो ताजका[4]।

१. प्रतीक्षा। २. राजाज्ञापत्र। ३. प्रेमी। ★ आसी—'कुल्लियाते मीर' में पृ० २६। ४. सिंहासन और मुकुट।

दिल्लीमें अबके आकर उन यारोंको न देखा
कुछ वे गये शिताबी[1] कुछ हम ब-देर[2] आये।

× × ×

मंज़िल न कर जहाँको[3], कि हमने सफ़रसे आ,
जिसका लिया सुराग़[4], सुना वे गुज़र गये।

× × ×

शहाँ कि कह्ले जवाहर[5] थी खाके पा[6] उनकी
उन्हींकी आँखोंमें फिरती सलाइयाँ देखीं।

नागरमल जहाँ भी जाते, मीर साहबको साथ ले जाते थे। जब उन्हें शुजाउद्दौलाके पास सफाईके लिए भेजा गया तब भी मीर साथ थे; जब सूरजमलके बुलानेपर अकबराबाद (आगरा) गये तब भी मीर साथ थे। लगभग तीस सालके बाद वतनमें लौटे थे इसलिए अपने बुज़ुर्गोंकी मज़ारों पर प्रार्थना की, प्रियजनोंसे मिले। अकबरावाद भी बहुत बदल गया था इसलिए जी न लगा। फिर भी चार महीने वहाँ रहे। बादमें राजाके साथ ही सूरजमलके क़िलेमें लौट गये। आगरामें इनके पास शायरोंकी भीड़ लगी रहती थी।★ इससे ज्ञात होता है कि कविके रूपमें वह बड़े

१. शीघ्रतासे। २. देरसे, विलम्बसे। ३. संसार। ४. भेद। ५. रत्नांजन, श्रेष्ठ सुरमा। ६. पद-धूलि।

★ 'मीर' खुद लिखते हैं:—"वहाँके शुअरा मुझे उस्तादे फ़न समझ मुझसे मिलने आते थे। मैं सुबह शाम दरियाके किनारे जा बैठता।....मेरी शेरगोई....की शोहरत आलममें फैल गयी थी चुनाँचे शर्मगीं माशूक, खुश-तरकीब और जामाज़ेब हसीन और बहुतसे पाकीज़ा तीनत और मौज़ूं-तबीयत मेरे गिर्द जमा रहते और मेरी इज्ज़त करते। दो-तीन बार शहर भी गया और वहाँके उल्मा, फुक़्रा और शुअरासे मिला लेकिन कोई ऐसा

लोकप्रिय हो गये थे। उनकी विद्या और ज्ञानकी अपेक्षा लोग उनके काव्यके प्रेमी अधिक थे ।

राजा नागरमलके साथ ही दूसरी बार भी आगरा गये । इस बार केवल १५ दिन रहनेका मौक़ा मिला ।

कुछ समयके बाद यह राजासे अलग होकर फिर देहली आये । कुटुम्बको अरब सरायमें छोड़कर फिर जीविकाकी खोजमें घूमने लगे । यह इनके जीवनका सबसे कठिन समय था । उम्र काफ़ी हो चुकी थी । अब कठिनाइयाँ सहन करनेकी वह ताक़त न थी । फिर भी एक-एकके सामने गये, प्रार्थना की पर किसीने इन पर ध्यान न दिया । बहुत दिनों तक तकलीफ़ें झेलनेके बाद हिशामुद्दौलाके भाई वजीहउद्दीनख़ाँने कुछ वृत्ति दी जिससे किसी प्रकार जीवन बीतने लगा ।

इस कठिन समयमें काव्य ही इनके जीवनका एक मात्र सुख था । वही इन्हें कठिनाइयोंके बीच भी आनन्द प्रदान करता था । यह मुशायरोंमें जाते, दोस्तोंसे मिलते, हँसते, ग़प्पें लगाते । मतलब उनमें खूब स्फूर्ति थी । ख़ाजा मीर दर्द, मीर सज्जाद, मीर अलीनक़ी काफिर तथा मसहफ़ी इत्यादिके यहाँ आना-जाना होता रहता था ।

मुखातिब जिससे दिले बेतावको तसल्ली होती, नहीं मिला । मैंने दिलमें कहा—"सुभानअल्ला ! यह वह शहर है जिसकी हर गली, कूचेमें आरिफ़े कामिल, फाज़िल, शायर, मुंशी, दानिशमंद, मुतकल्लिम, हकीम, सूफी···· दरवेश और खानक़ाह, मेहमांसराएँ, मकान और बाग़ मिलते थे । आज वहाँ कोई ऐसी जगह नहीं मिलती कि कुछ देर खुशीसे बैठूँ और कोई आदमी ऐसा नहीं मिलता कि उससे बातें करके लुत्फ़ उठाऊँ । सारा शहर एक वीराना है जिससे एक वहशत टपकती है । मैं चार माह आगरेमें रहा । चलते वक्त बड़ी हसरत हुई····।"

मैं पहले लिख चुका हूँ कि 'मीर' आरम्भसे ही बड़े तुनुकमिज़ाज थे। जब उनका काव्योत्कर्ष हुआ वह दिल्ली पर छा गये तथा दूर-दूर तक उनकी प्रसिद्धि हो गयी। इससे उनके स्वाभिमानने अहंकारका रूप धारण कर लिया। दूसरे शायरों पर फबतियाँ कसने लगे। इससे काफ़ी नाराज़ी फैली। यहाँ तक कि धीरे-धीरे लोगोंने इनसे मिलना-जुलना छोड़ दिया, बल्कि बहुतसे लोग इनके विरुद्ध हो गये। लोगोंने इनके ख़िलाफ़ कहना और लिखना भी शुरू कर दिया। 'बक़ा' का एक शेर देखिए, जिसमें इस विरोधकी झलक है :—

पगड़ी अपनी सँभालियेगा 'मीर'
और बस्ती नहीं य दिल्ली है।

दिल्लीकी बर्बादी, जीविका की कठिनाई, साथियोंकी कनाराकशी तथा शायरोंमें बढ़ते हुए विरोधके कारण इनका दिल और टूट गया। बाहर निकलना छोड़ दिया। खुद लिखते हैं :—

"फ़क़ीर इन अय्याम[१] में खानानशीन[२] था। बादशाह अक्सर तलब फर्माते[3] थे मगर मैं न गया। अबुलक़ासिम ख़ाँ, सूबेदार कश्मीर मेरे साथ बहुत सलूक करता था। मैं कभी-कभी उसकी मुलाकातको जाता था, और बादशाह भी कभी-कभी कुछ भेज देते थे।"

शेरोंमें भी इस स्थितिकी झलक है :—

मीर साहबको देखिए जो बने,
अब बहुत घरसे कम निकलते हैं।

× × ×

क्या कहें मीर जी हम तुमसे मआश अपनी ग़रज़,
ग़मको खाया करे हैं लोहू पिया करते हैं।

---

१. दिनों। योमका बहुवचन। २. घरमें रहने वाला। ३. बुलाते

मनमें बार-बार दिल्ली छोड़नेकी इच्छा भी होती थी पर साधन-हीन होनेसे विवश थे। फिर जाते तो कहाँ जाते ? अकबराबादकी वही हालत थी। दिल्लीका पतनकाल था। बार-बार उसकी इज्ज़त लुटती थी। कल क्या होगा, कोई जानता न था। दक्षिणकी ओर जानेमें लम्बा सफ़र था। ले देके रह गया था लखनऊ, कभी-कभी उधर ही ध्यान जाता था।

संयोग कहिए या 'मीर' का भाग्य, वजीरुल्मुल्क नवाब आसफ़उद्दौला को एकाएक इनका ख्याल आया। उन्होंने नवाब सालार जंग और उनके छोटे भाई इसहाक खाँ नजीमुद्दौलासे मीरका ज़िक्र किया और फर्माया कि अगर मीर मोहम्मद तक़ी यहाँ आ जायँ तो अच्छा है। उन लोगोंने निवेदन कियाकि अगर नवाब साहब राह खर्चके लिए कुछ हुक्म कर दें तो मीर साहब यहाँ आ सकते हैं। राह खर्च मिल गया। और उन लोगोंने इन्हें लिख दिया कि श्रीमन् नवाब साहब याद करते हैं, जिस तरह हो सके आप यहाँ आ जाइए। दिल्लीकी लड़ाइयों, अशान्ति, अव्यवस्था, आर्थिक कष्टसे यह ऊबे हुए थे ही, ख़त मिलते ही लखनऊ जानेके लिए तैयार हो गये। यद्यपि दिल्ली उनके प्राणोंमें बसी हुई थी और मरते दम तक बसी रही परन्तु चाह कर भी वहाँ रहनेका साधन न होनेसे इन्हें उसे छोड़ना ही पड़ा।

आँसू भरे हुए और यह कहते हुए कि 'रुख़सत ऐ अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं' दिल्लीसे रवाना हुए। पहला वतन अकबराबाद बचपनमें ही छूट गया था, अब बुढ़ापे में दूसरा वतन और प्यारा शहर दिल्ली भी छूट गया। उन्होंने स्वयं लिखा है :—

लखनऊ आगमन

"चूँकि खुदा का यही मंशा था, मैं बे यार व मददगार बग़ैर क़ाफले और रहबर[1] के फर्रूख़ाबादके रास्तेसे गुज़रा। वहाँके रईस मुज़फ्फ़र जंग थे। उन्होंने हरचन्द[2] चाहा कि कुछ रोज़ वहाँ ठहर ज़ाऊँ मगर मेरे दिलने

१. पथदर्शक। २. सब तरहसे।

क़बूल न किया। दो रोज़के बाद रवाना होकर मंज़िले मक़सूद पर पहुँच गया।"

लखनऊमें पहिले सालार जंगके यहाँ गये। उन्होंने बड़ी आव-भगत की और नवाबसे कहला भेजा। उन दिनों लखनऊमें मुर्ग़ोंकी लड़ाईका बड़ा ज़ोर था; जहाँ देखो मुर्ग़ोंकी पालियाँ हो रही हैं। संयोगकी बात कि नवाब एक दिन मुर्ग़ोंकी लड़ाई देखने आये। मीर भी वहाँ मौजूद[1] थे। एकाएक नवाबकी नजर इन पर पड़ी। पूछा कि क्या आप मीर तक़ी मीर हैं। आसिफउद्दौला शिष्टाचार, सभ्यता और प्रेमकी मूर्ति थे। मालूम होते ही गले लगे और अपने बैठनेकी जगह ले गये। अपना कुछ कलाम[2] सुनाया; 'मीर' को अच्छा लगा, उन्होंने खुलकर प्रशंसा की। उन्होंने मीरसे भी कुछ सुनानेकी फर्माइश की। अपनी एक ग़ज़लके चंद शेर इन्होंने सुनाये। जब चलने लगे तो नवाब सालार जंगने कहा कि अब मीर साहब, आपके आदेश के अनुसार, हाज़िर हो गये हैं। उन्हें कोई जगह दे दी जाय। वज़ीरुलमुल्क आसिफुद्दौलाने कहा—मैं कुछ नियत करके आपको इत्तिला[3] कर दूँगा। दो तीन दिन बाद याद फर्माया। हाज़िर हुए और एक क़सीदा पढ़ा। उसी दिनसे वहाँ नौकर हो गये। तीन सौ रुपये मासिककी वृत्ति बाँध दी गयी और यह सम्मान और आरामकी ज़िन्दगी बिताने लगे।

क्या 'आज़ाद' का बयान ग़लत है?

उपर्युक्त विवरणसे मालूम होता है कि 'मीर' बड़े आदरपूर्वक लखनऊ बुलाये गये थे, और जैसा 'मीर' ने खुद लिखा है कि आनेके बाद वह सालारजंगके पास पहुँचे थे। पर मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ने अपने 'आबेहयात' में लिखा है :—

१. उपस्थित। २. कविता। ३. सूचना।

"........इसलिए १७७६ ई०★ में दिल्ली छोड़नी पड़ी। जब लखनऊ चले तो सारी गाड़ीका किराया भी पास न था। नाचार एक शख़्सके साथ शरीक हो गये और दिल्लीको खुदा हाफ़िज़ कहा। थोड़ी दूर आगे चलकर उस शख़्सने कुछ बात की। यह उसकी तरफ़से मुँह फेरकर हो बैठे। कुछ देरके बाद फिर उसने बात की। मीर साहब चींबचीं[1] होकर बोले कि साहब क़िबला[2] आपने केराया दिया है, बेशक गाड़ीमें बैठिये मगर बातोंसे क्या तअल्लुक़[3]?" उसने कहा—"हज़रत! क्या मुज़ायका[४] है, राहका शग़ल है, बातोंमें ज़रा जी बहलता है।" मीर साहब बिगड़कर बोले—"आपका शग़ल है, मेरी ज़बान खराब होती है।" §

★'गुलशने हिन्द' और 'गुलज़ारे इब्राहीमी' दोनोंमें इनके लखनऊ जानेका समय सन् १७८२ ई० दिया हुआ है। स्पष्ट लिखा है कि उस समय सौदाकी मृत्यु हो चुकी थी। सौदा १७८० ई०में मरे थे। मीर हसनने भी अपने तज़किरेमें १७८० में मीरके दिल्लीमें होनेकी बात लिखी है। इससे १७-८२का समय ही ठीक जान पड़ता है।

§ सआदत अलीखाँ नासिरने अपने ग्रन्थ 'तज़किरा खुश मार्कए जेबा' में भी, ज़रा परिवर्तित रूपमें इस घटनाका ज़िक्र किया है :—

"जब मीर साहब अकबराबादसे पूरबको चले, हस्ब इत्तफाक एक बनियेके साथ गाड़ीमें सवार हुए मगर वक्त सवार होनेके कुछ रात बाक़ी थी। जब रोज़ रोशन हुआ और सूरत उसकी देखी, मुँह अपना उधरसे फेर लिया और लखनऊ तक उसकी तरफ मुँह करके न बैठे। सुभान-अल्ला! क्या आली दिमाग़ लोग थे कि ज़रूरतमें भी नागवारको गवारा न करते थे।"

१. चिढ़ना। २. बड़ोंके प्रति सम्बोधनका ढंग। ३. सम्बन्ध। ४. हर्ज।

"लखनऊ पहुँचकर, जैसा मुसाफ़िरोंका दस्तूर[१] है, एक सरायमें उतरे। मालूम हुआ, आज एक जगह मुशायरा है। रह न सके। उसी वक्त ग़ज़ल लिखी और मुशायरेमें जाकर शामिल हुए। इनकी वज़अ[२] क़दीमाना[३] खिड़की दार पगड़ी, पचास गज़के घेरका पाजामा, एक पूरा थान पिस्तौलिए का कमरसे बँधा, एक रूमाल पटरीदार तह किया हुआ......नागफनीकी अनीदार जूती जिसकी डेढ़ बालिश्त[४] ऊँची नोक, कमरमें एक तरफ सैफ़ यानी सीधी तलवार दूसरी तरफ़ कटार—...ग़रज़ जब दाख़िल महफ़िल[५] हुए तो वह शहर लखनऊ नये अन्दाज[६], नयी तराशें[७] बाँके टेढ़े जवान जमा। इन्हें देखकर सब हँसने लगे। मीर साहब बेचारे गरीबुल वतन[८], ज़माने[९] के हाथ पहिले ही दिल शिकस्ता[१०], और भी दिलतंग[११] हुए और एक तरफ़ बैठ गये। शमअ[१२] इनके सामने आई तो फिर सबकी नज़र पड़ी और बाज़ अशख़ासने[१३] पूछा कि हुजूरका वतन कहाँ है?" मीरने तीव्र वेदना भरे स्वरमें पढ़ा—

क्या बूदो बाश[१४] पूछो हो पूरबके साकिनो[१५]।
हमको गरीब जानके हँस-हँस पुकारके॥
दिल्ली जो एक शह्र था आलम[१६] में इन्तखाव[१७]।
रहते थे मुन्तख़ब[१८] ही जहाँ रोज़गार[१९] के॥

१. ढंग, नियम। २. रूपरंग। ३. पुरातन। ४. वित्ता। ५. सभामें प्रविष्ट। ६. ढंग। ७. काट। ८. जिसका वतन छूट गया हो। ९. युग। १०. भग्नहृदय। ११ खिन्न। १२. मोमबत्ती, दीपक। पुराने मशायरोंमें हर शायरके सामने शमअ लाई जाती थी, तब वह ग़ज़ल पढ़ता था। १३. कुछ व्यक्तियों। १४. रहन-सहन। १५. निवासियों। १६. संसार। १७. प्रसिद्ध। १८. चुने हुए। १९. युग।

उसको फ़लकने[1] लूटके वीरान कर दिया।
हम रहनेवाले हैं उसी उजड़े दियार[2] के॥

सबको मालूम हुआ। लोगोंने माफ़ी माँगी। सुबह होते-होते मशहूर हो गया कि मीर साहब तशरीफ़ लाये हैं।"★

इस बयानमें और 'मीर' तथा दूसरोंके बयानमें विरोध मालूम होता है। एकका कहना है कि राह खर्च भेजकर आसफ़उद्दौलाने मीरको बुलवाया और वह सालार जंगके पास पहुँचे, दूसरा बयान ऊपर दिया गया है कि कैसी बुरी हालतमें लखनऊ आये। पर विचार करने पर मुझे दोनों विवरणोंमें कोई विशेष विरोध नहीं जान पड़ता। दिल्लीमें मीर साहबकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। ऐसे वक़्त राह खर्चमेंसे, बहुत मुमकिन है, कुछ हिस्सा दिल्लीमें ही खर्च हो गया हो, लोगोंका हिसाब-किताब करनेमें। दूसरी बात यह कि बिल्कुल संभव है कि पहले वह सरायमें जाकर ठहरे हों और दूसरे दिन सफ़रकी थकान मिटाने और कपड़े वगैरह बदलनेके बाद सालार जंगके यहाँ गये हों। हाँ, यह ज़रूर है कि 'आज़ाद' ने नमक मिर्च मिलाकर घटनाको रंगीन बनानेकी कोशिश की है।

लखनऊमें मीर साहबकी बड़ी इज्ज़त हुई। लोगोंने उनको हाथों हाथ लिया। दरबारमें उनका बड़ा सम्मान था और नवाब वज़ीर उनको इतना मानते थे कि यात्रामें भी साथ रखते थे। कई बार तराईकी ओर शिकारमें ले गये। आर्थिक दृष्टिसे भी लखनऊमें जो सुविधा इन्हें मिली, वह कभी नहीं मिली थी। यह इनका सौभाग्य है कि इन्हें तीन सौ रुपये मासिक मिलते थे, जब 'ग़ालिब' तकको दिल्ली और रामपुरसे इतनी बड़ी रक़म मयस्सर न हुई।

लखनऊ निवास

---

१. आकाश (उर्दू काव्यमें समस्त विपत्तियोंका मूल आकाश है।)
२. शहर, देश।★ आबेहयात पृष्ठ २०५–२०६।

'ज़ौक' को तो आरम्भमें सिर्फ़ चार रुपये महीना वजीफा मिलता था, बादमें पाँच और सात रुपये हुए और अन्तमें सौ रुपये मिलने लगे थे। 'मसहफ़ी' की हालत भी बहुत खराब थी।

लखनऊने हर तरह इनका सम्मान किया। आसफ़ उद्दौलाके बाद नवाब सआदत अलीखाँने भी इनकी तनखाह जारी रखी। चारों तरफ़ इनकी धूम थी; लोग इनकी इज्ज़त करते थे पर अपने अभिमानी स्वभावके कारण इनकी ज़्यादा दिन किसीसे न बनी फिर गरीबीकी मारसे यह लखनऊ आ तो गये थे पर दिल्लीका जादू इनके सिरसे कभी न उतरा। उस उजड़े दयारमें एक विचित्र आकर्षण था जो मीरको बराबर खींचता था इसलिए रुपया-पैसा, सामान सब पाकर भी लखनऊमें यह कभी दिलसे खुश न रहे। लोगोंकी तारीफ़को 'असमझवार सराहिबो' समझते थे।★ उनके काव्यमें इस शिकायतकी झलक बार-बार मिलती है—

दिल्लीका जादू इन परसे कभी न उतरा

रही न गुफ़्ता[1] मेरे दिलमें दास्ताँ मेरी।
न इस दयारमें समझा कोई ज़बाँ मेरी॥

× × ×

बहुत कुछ कहा है करो मीर बस।
कि अल्लाह बस और बाक़ी हवस॥
जवाहर[2] तो क्या-क्या दिखाया गया।
खरीदार लेकिन न पाया गया॥

× × ×

१. व्यक्त, कथन। २. रत्न।

★मसहफ़ीने लखनऊके एक मशायरेके बारेमें लिखा है—"वज़्मे नाम-हरम व मर्दुम हमा बेगाना तमाम।

मुताए[1] हुनर फेर कर ले चलो।
बहुत लखनऊमें रहे घर चलो॥

× × ×

दिल्लीकी प्रशंसा करते नहीं अघाते—

हफ़्त अक़लीममें[2] हर गली है कहीं।
दिल्लीसे भी दयार होते हैं॥

× × ×

दिल्लीके न थे कूचे[3] औराक़े मुसव्विर[4] थे।
जो शक्ल नज़र आई तस्वीर नज़र आई॥

× × ×

दिल्ली थी तिलिस्मात कि हर जागह मीर।
इन आँखोंसे आह हमने क्या-क्या देखा॥

× × ×

दिलो दिल्ली दोनों हैं गर्चे ख़राब,
पै कुछ लुत्फ़ उस उजड़े नगरमें है।

एक जगह अत्यन्त व्यथापूर्ण एवं करुणार्द्र स्वरमें वायुको दूत बना दिल्लीवालोंके पास सन्देश भेजते हैं:—

ऐ सबा[5] गर शहके लोगोंमें हो तेरा गुज़ार।
कहियो हम सहरानवर्दों[6] का तमामे हाले ज़ार[7]।
ख़ाके देहलीसे जुदा[8] हमको किया एकबारगी।
आसमाँको थी कुदूरत[9] सो निकाला यों गुबार।

१. पूँजी। २. सप्तदेश। ३. गलियाँ। ४. चित्रकारके पृष्ठ। ५. प्रभाती वायु। ६. मरुवासियों, वनवासियों। ७. बुरा हाल। ८. अलग। ९. मनोमालिन्य।

इतना ही नहीं, लखनऊसे एक प्रकारकी घृणा-सी थी। देखियेः—

ख़राबा दिल्लीका दहचन्द[1] बेहतर लखनऊसे था।
वहीं मैं काश मर जाता सरासीमा[2] न आता याँ॥

× × ×

बरसोंसे लखनऊमें अक़ामत[3] है मुझको लेक[4]।
याँके चलनसे रखता हूँ अज़्मे सफ़र[5] हनोज़[6]॥

× × ×

आबाद उजड़ा लखनऊ चुग़दों[7] से अब हुआ।
मुश्किल है इस ख़राबेमें आदमकी[8] बूदोबाश[9]॥

यद्यपि वह अन्तिम दिन तक लखनऊमें रहे और वहींकी मिट्टीमें समाधिस्थ हुए पर अन्त तक दिल्लीका आकर्षण इन पर छाया रहा। जैसे वहाँकी उजड़ी ज़मीन इन्हें पुकार रही हो।

सामान्य दृष्टिसे देखें तो उन्हें लखनऊमें कोई तकलीफ़ न थी। दिल्लीकी तरह यहाँ उनका जीवन अनिश्चित न था। आरामसे गुज़रती थी। उनका यश भी फैला हुआ था। लोग उनकी प्रशंसा भी करते थे तब क्या कारण है कि इनका मन दिल्लीकी ओर दौड़ता था और लखनऊ इनके दिलको विजय न कर सका था। मनोवैज्ञानिक अध्ययनसे ये सब गुत्थियाँ भी खुल जाती हैंः—

इस आकर्षणका कारण

१. लखनऊमें उनके काव्यके प्रशंसक तो थे पर उसके पारखी न थे। लोग ऊपरसे प्रशंसा करते थे, समझकर नहीं।

---

१. दसगुना। २. व्यग्रचित्त, परीशान। ३. निवास। ४. लेकिन, किन्तु। ५. प्रवासका संकल्प। ६. अबतक। ७. उल्लुओं। ८. आदमी। ९. रहन-सहन।

२. मीर पुरानी तर्ज़के आदमी थे। जीवनमें गंभीरताके अनुरागी, इसलिए लखनऊकी काट-छाँट और छैलापन उन्हें बिलकुल न भाता था। लखनऊकी सभ्यतामें रंगीनी और रूप था पर दिलकी गर्मी न थी। आँखें उससे ठंडी होती थीं पर दिल नहीं। वह बाहरी चमक-दमक वाली सभ्यता थी।

३. उजड़ी दिल्ली इनके मानसिक जगत्के अधिक अनुकूल थी। इनका टूटा, उजड़ा, लुटा दिल, इनकी सारी व्यथारंजित ज़िन्दगी दिल्ली से मेल खाती थी क्योंकि वह उस ख़िज़ांका प्रतीक थी जो इनकी ज़िन्दगी पर सदाके लिए छा गयी थी।

४. वह लखनऊकी भीड़के बीच भी अपनेको सदा अकेला अनुभव करते थे। वह उस पौधेकी भाँति थे जो एक प्रतिकूल जलवायुमें रोप दिया गया हो।

५. जिस प्रेम और सौन्दर्यका वर्णन सुनकर लखनऊके दिलकी कली खिल उठती थी वह हलका, चूमाचाटी वाला प्रेम था, उसमें गहराई न थी। उसमें वह दर्द न था जो ज़िन्दगीकी घाटियोंको हरा-भरा रखता है; उसमें वह आग न थी जिसमें जलकर आदमी नवयौबन प्राप्त करता है; उसमें वह सूक्ष्म दृष्टि न थी जो जगत् एवं जीवनके प्रश्नोंके भीतर प्रवेश करती है।

६. लाख लोग तारीफ़ करते हों पर 'मीर' को सुनकर नहीं बल्कि जुर्रतको सुनकर लखनऊ वाले खिल उठते थे। मीर जिन मूल्योंके लिए अमर हैं जुर्रत उनका विनाश-साधक था। 'मीर' के दिलकी व्यथाभरी पुकारें जुर्रतके चूमा-चाटीमें बदल जाती थीं।★

★ 'तज़किरा करीमुद्दीन' (पृष्ट २०६–२०७) में लिखा है :—

"मज़लिसे शुअरा मिर्ज़ा मोहम्मद तक़ी ख़ाँ तरक्क़ीके घर मुनअक़द हुई। जुर्रतकी बहुत तारीफ़ हुई। जुर्रत मीर तक़ी 'मीर'से दादख़ाह अपने

७. यौवन कालमें 'मीर' उन्मादके रोगी रह चुके थे। रोग अच्छा हो गया था पर अपना असर छोड़ गया था। उसने इनकी अकड़ और तुनुक मिज़ाजीको और बढ़ा दिया था। अपनी झुंझलाहटमें बार २ उन्हें दिल्ली याद आती थी।

वस्तुतः मीरके जीवनकी सम्पूर्ण प्रेरणाएँ दिल्लीसे प्राप्त हुई थीं। सभ्यताके उनके मानदण्ड, सांस्कृतिक मूल्यांकन, रंग-ढंग, रहन-सहन, शिष्टाचार, सब दिल्लीसे उन्हें प्राप्त हुए थे। इस उजड़े नगरका शताब्दियोंका अतीत आदमीको कुछ शिक्षा देता था। उसने न जाने कितने साम्राज्योंकी समाधि देखी थी; इस विनाश-परम्पराने जीवनकी जड़ोंको अन्तःस्थ कर दिया था, वह ज़्यादा गहराईमें चली गयी थीं इसलिए एक प्रकारकी आध्यात्मिक दृष्टि लोगोंमें थी। यहाँ लखनऊका हाल दूसरा था। यह नगरी उस रमणीके समान थी जो यौवनकी पहली अँगड़ाईमें हो और उसकी आँधी उसे उड़ाये लिये जा रही हो। डा० फारुकीने भी यही बात लिखी है—

"मीरके लिए लखनऊ जाना एक तहज़ीबी सानहा[1] से कम न था। दिल्ली लाख उजड़ चुकी थी लेकिन वह एक अज़ीमुश्शान[2] तहज़ीबकी निशानी थी····सल्तनत मुग़लियाके कमज़ोर हो जाने और दौलतमन्दीके मिट जानेसे लखनऊको तरक़्क़ी करनेका मौका मिला और दिल्लीकी सारी

अशआरका हुआ। मीरने दो-चार बार खातिरदारी की। जब देखा कि मग़ज़ उसका चल निकला है, कहा कि जब तुम बदीं जद्‌दो कद पूछते हो, लाचार कहता हूँ—कैफ़ियत इसकी यह है कि तुम शेर तो कहना नहीं जानते हो अपनी चूमाचाटी कह लिया करो।"

हकीम क़ुदरत उल्ला क़ासिमने जुर्रतको लखनऊके कवियोंका शिरमौर लिखा है और इस घटनाको भी उद्‌धृत किया है।

१. सांस्कृतिक, सभ्यतागत, दुर्घटना, २. ज्वलन्त, श्रेष्ठ।

रौनक़[1] वहीं सिमट आई लेकिन अवधने बादशाहतके एलानके साथ तमद्दुन[2] व मुआशरत[3] में अपने मज़ाकके मुताविक इस्लाहे[4] कीं और इस बातकी पूरी कोशिश की कि देहलीकी तहज़ीबी क़यादत[5] से भी छुटकारा मिल जाय चुनाञ्चे लिबास[6], वज़अ क़तअ[7], तराश-खराश, नशस्त व बर्खास्त[8], आदाबो इख़्लाक[9] और शेरो अदब[10] में····तब्दीलियाँ[11] हुई····। मीर जिस जमानेमें लखनऊ गये हैं, दिल्ली सयासी[12] और इक़तसादी[13] मुश्किलात में घिरी हुई थी और आलम[14] यह था कि—

हर रोज़ नया क़ाफ़ला पूरब को रवाँ है।

लखनऊमें एक नई बिसात बिछाई जा रही थी, नई रवायतें क़ायम हो रही थीं।····मीरकी ज़ेहनी नशवोनुमा[15] देहलीमें हुई थी और उसकी तहज़ीबी क़दरें[16] उनकी रूह[17] में दाख़िल[18] हो चुकी थीं इसीलिए उनके यहाँ लखनवी माहौल[19] के खिलाफ़ रूअमल भी सख़्त है।"

यह हाल कुछ मीरका ही न था। देहलीकी सांस्कृतिक जलवायुमें पले जो भी शायर लखनऊ आये, सब कुछ ऐसा ही अनुभव करते थे। इस नये वातावरणमें उनका दम घुटता था; वे इसके अनुकूल अपनेको ढालनेमें असमर्थ थे। 'मसहफ़ी' का भी अनुभव 'मीर' ही-जैसा था। उन्होंने लिखा है :—

यारब शहर अपना यों छुड़ाया तूने।
वीरानेमें मुझको ला बिठाया तूने॥

१. शोभा, २. संस्कृति, ३. जीवन-प्रणाली, ४. संशोधन, ५. बन्धन, ६. वेशभूषा, ७. रंग-ढंग, ८. उठना-बैठना, ९. शिष्टाचार, १०. काव्य और साहित्य, ११. परिवर्तन, १२. राजनीतिक, १३. आर्थिक, १४. हालत, १५. बौद्धिक निर्माण, १६. सांस्कृतिक मूल्य, १७. आत्मा, १८. प्रविष्ट, १९. वातावरण।

मैं और कहाँ यह लखनऊकी खिलक़त[1] ।
ऐ वाय यह क्या किया खुदाया तूने ॥

दिल्लीवालोंको अपनी ज़बान पर अभिमान था। वे दिल्लीके बाहर-वालोंको इस मामलेमें नीचा समझते थे। 'मसहफ़ी' लिखते हैं :—

दिल्ली नहीं देखी है, ज़बाँदाँ य कहाँ हैं ?

पुनः लिखते हैं :—

सहराइयाने पूरब क्या जानते हैं इसको ।
ऐ मसहफ़ी जुदा है अन्दाज़ इस ज़बाँका ॥

मीरका अपनी भाषा पर अभिमान देखिए—

अव्वल तो मैं सनद[2] हूँ, फिर य' मेरी ज़ुबाँ है ।

× × ×

यह हमारी ज़बान है प्यारे ।

बक़ौल उनके लखनऊमें उनकी ज़बानको समझनेवाले न थे—

किस-किस अदासे रेखते मैंने कहे वले ।
समझा न कोई मेरी ज़ुबाँ इस दयारमें ॥

जन्म-मृत्यु

'मीर' की जन्म-तिथिके सम्बन्धमें काफ़ी मतभेद है। इतना तो निश्चित है कि पैदा अकबराबाद (आगरा) में हुए थे। बादमें कठिनाइयोंके कारण दिल्ली गये।★ १७१४ से १७३२ तकके बीचमें कभी इनका जन्म हुआ होगा। इन्होंने लम्बी उम्र पाई। कोई १००, कोई ९० लिखते हैं। पर मृत्यु-तिथिके प्रमाण निश्चित हैं। १२२५ हिजरी (१८१२ ई०) शोबानकी २० तारीख

१. जनता। २. प्रमाण।★ नकातुश्शुअरामें 'मीर' ने स्वयं लिखा है :—"वतन अकबराबाद अस्त। बसबब गर्दिशे लैलो निहार अज़चन्दे दर शाहजहाँबाद अस्त।" (पृष्ठ १६३)।

शुक्रवारको शामके वक्त इनकी मृत्यु लखनऊमें हुई। नासिख़ने जो तारीख़ कही § है; उससे भी यही प्रमाणित होता है।

बूढ़े हो गये थे। निराशा और अन्तर्वेदना तेज़ीसे उन्हें खा रही थी। आँखें कमज़ोर हो गयीं थीं; और भी छोटे-मोटे एकाध रोग लग गये थे पर

अन्तिम दिन

ऐसे अशक्त न हुए थे कि किसी पर निर्भर करते हों या खाट पर पड़े हों। अपने सब काम अपने हाथों करते थे। काव्य-गोष्ठियोंमें भी बराबर शामिल होते थे। पर भाग्य ने पलटा खाया। एक पर एक चोट उनको लगती गयी। पहिले उनकी लड़कीकी मृत्यु हुई। दूसरे ही साल एक लड़का मरा और तीसरे साल उनकी पत्नी चल बसीं। इन घटनाओंने उनका दम तोड़ दिया; भग्न हृदय हो गये। बुढ़ापेमें कोई अपना न रहा। दुःखसे पागल हो गये। बाहर निकलना छोड़ दिया; मशायरों तथा दूसरी रंगीन मजलिसोंमें जाना छोड़ दिया। दिल्लीकी जीवन-प्रणाली★ यों ही लखनऊमें बदल गयी थी, अब

---

§ तारीख़ कहना—उर्दू और फारसी साहित्यमें यह परम्परा है कि जब कोई प्रसिद्ध कवि, साहित्यकार वा महान् पुरुष परलोकवासी होता है तो उसका कोई विद्वान् या कवि भक्त कुछ ऐसे काव्यात्मक पदकी रचना करता है जिसमें एक ओर तो उसके गुणोंका सूत्रवत् वर्णन रहता है और दूसरी ओर उन अक्षरोंके मूल्य (ध्यान रहे कि इनके यहाँ प्रत्येक अक्षरका सांख्यिक मूल्य नियत है) का योग करने पर वह तिथि निकलती है जब मृत्यु-घटना घटी रहती है। 'नासिख़' ने 'मीर' की जो तारीख़ कही, वह यों है :—'वावेला मर्दे शहे शायराँ।"

★ "नागाह दर मुहल्ला रसीदम कि दर आनजामी मान्दम। सोहबत मी दाश्तम। शेर मीखान्दम। आशकाना मी ज़ीस्तम। इश्क बाखुशक़दाँ मी बाख्तम। ऐशान राबुलन्द मी अन्दाख्तम। बा सिलसिला मूयाँ मी बूदम। परस्तिश न कोयाँ मी नमूदम। अगर दमे बेऐशां मी नशस्तम तमन्ना बर तमन्ना मी शिकस्तम। बज़्म मी आरास्तम। खूबाँरा मी ख्वास्तम। मेहमानी मी करदम। जिन्दगानी मी करदम।"

निराशा और दुःखके कारण वह समाप्त-सी हो गयी। शेरो-शायरीका मज़ा भी जाता रहा; जीवन-प्रवाह शिथिल हो गया। वह स्वयं अनुभव करने और कहने लगे:—

लुत्फ़े सखुन[1] भी पीरी[2] में रहता नहीं है मीर,
अब शेर हम पढ़े हैं तो वह शद्दोमद नहीं।

कुछ परलोककी भी फ़िक्र हुई। ख्याल आया, अब ऊँची बातोंकी ओर, पुण्य कार्योंकी ओर ध्यान देना चाहिए। लिखते हैं:—

किसको दिमाग़े शेरो सख़ुन ज़ोफ़[3] में कि मीर
अपना रहे हैं अब तो हमें बेशतर ख़याल।

× × ×

बस बहुत वक्त किया शेर के फ़न में ज़ायाँ[4]
मीर अब पीर हुए तर्के ख़यालात करो।

एक ओर यह अन्तर्वेदना, दूसरी ओर धीरे-धीरे रोगोंमें वृद्धि। यह बीमार पड़ गये। खाट पकड़ ली और छः मास तक बिस्तरपर पड़े रहे। जितने भी राजचिकित्सक और प्रसिद्ध हकीम थे, इनके दोस्तों और प्रशंसकोंमें थे। अन्त्रशूल हो गया था और वह बढ़ता जाता था। सबकी राय हुई कि ऐसी दवा देनी चाहिए कि क़ब्ज़ न रहे। उन्हें एक रेचक दवा दी गयी। नियतिका खेल देखिए कि जिस दवाको चिकित्सकोंने लाभके लिए दिया था वही उनके लिए घातक हो गयी। एक-एक दिनमें डेढ़-डेढ़ सौ दस्त आने लगे। रोग और मौतने साँठ-गाँठ की और एक सच्चा शायर सदाके लिए सो गया। महल्ला सिठिट्ठीमें यह रहते थे। अब यह महल्ला नहीं है पर उन दिनों काफ़ी आबाद था। इसी मुहल्लेमें

१. काव्यानन्द। २. बृद्धावस्था। ३. दुर्बलता। ४. नष्ट।

उर्दूके प्रसिद्ध कवि और बेजोड़ मर्सिया-लेखक मीर अनीसका भी मकान था। यह मुहल्ला गोमतीके दक्षिणी किनारेपर, आज जहाँ डालीगंज है उसीके समीप, बसा हुआ था। इसमें इसी नामका एक बाज़ार भी था जहाँ सूतका क्रय-विक्रय होता था।

दूसरे रोज़ दोपहरको अखाड़ा भीम नामके एक प्रसिद्ध क़ब्रिस्तानमें दफ़नाये गये। लगभग ४०० आदमियोंने इनके जनाज़ेकी नमाज़ पढ़ी थी। यह क़ब्रिस्तान गोलागंजमें रेलकी पटरीके बराबर दूर तक चला गया है। यहाँ टूटी-फूटी बहुतेरी क़ब्रें हैं; इन्हींमें कोई 'मीर' की भी होगी। शायद उन्हें भविष्यका आभास था, तभी तो उन्होंने ख़ुद कहा है :—

मत तुर्बते[१] मीरको मिटाओ
रहने दो ग़रीबका निशाँ तो।

मृत्युके ठीक पहिले उन्होंने यह शेर पढ़ा—

साज़ पेच आमादा[२] है सब क़ाफ़लेकी तैयारी है।
मजनूँ हमसे पहिले गया है अबके हमारी बारी है॥

मीर साहबके तीन सन्तानें थीं—दो बेटे, एक बेटी। तीनोंमें काव्य-रचनाकी प्रतिभा थी। बड़े बेटे मीर अस्करी उर्फ़ मीर कल्लू बड़ी मस्त तबीयतके आदमी थे और पहले 'राज़', फिर 'अर्श' उपनामसे कविता करते थे इनका एक दीवान भी है जो पहिले छपा था पर अब दुर्लभ है। यह अपने पिताके ही शिष्य थे और बहुत अच्छी कविता करते थे। कहीं-कहीं ज़बानकी सफ़ाईमें अपने पितासे भी आगे हैं। "उम्र भर न किसी रईसकी दरबारदारी की, न किसीकी शानमें क़सीदा लिखा। फ़ुक़्र व फ़ाक़ा[३] में बसर कर दी[४]। बापकी तरह नाज़ुक थे।"★ काफ़ी नाम कमाया।

१. क़ब्र, २. तैयार, ३. साधुता व उपवास, ४. बिता दी।

★लाला श्रीराम (ख़ुमख़ानए-जावेद)

१८६७ ई० में मृत्यु हुई और लखनऊमें ही रकाबगंज मुहल्लेमें दफ़न हुए। इनके शिष्य शेख़ मोहम्मदजानने इनके बारेमें लिखा है :—

"आप मोतवस्तुलक़ामत[१]. दोहरे जिस्मके थे। साँवला रंग, कुर्ते पहिने, कभी सिर पर पगड़ी और कभी टोपी, अफीम पीनेके आदी थे और हुक्क़ा कभी हाथसे न छूटता; मुशायरों और महफिलोंमें भी साथ लाते। मशायरोंमें तरतीबे ख़्वाँदगी के आदी न थे, जब जीमें आता, साहब खाना[३] की इजाजत लेकर अपनी ग़ज़ल सुना देते और हुक्क़ा उठाकर रुख़सत[४] हो जाते।"

इनमें मीरके अनेक गुण थे। मीर इन्हें मानते भी बहुत थे। मीर जब ज़्यादा वृद्ध और दुर्बल हुए तो एक रोज़ इन्हें बुलाकर कहने लगे—

"बेटा, हमारे पास माल व मुताए दुनियासे तो कोई चीज़ नहीं है जो आइन्दा तुम्हारे काम आये लेकिन हमारा सरमायए—नाज़[५] कानूने ज़बाँ ६ है जिसपर हमारी जिन्दगी और इज्ज़तका दारोमदार[७] रहा, जिसने हमको खाके ज़िल्लत[८] से आसमाने शोहरत ९ पर पहुँचा दिया। इस दौलतके आगे हम सल्तनते आलम[१०] को हेच[११] समझते रहे तुमको भी अपने तर्कमें यही दौलत देते हैं।"

बेटेने बापकी इस दौलतको न केवल ग्रहण किया बल्कि उसमें वृद्धि की। ज़बानका बहुत ख़्याल रखा। बस इनकी ज़बान देखिये—

गर हो न ख़फ़ा[१२] तो कह दूँ जी की।
इस दम तुम्हें याद है किसी की।

१. मझोले क़दके, २. पढ़नेके क्रम, ३. अध्यक्ष, मीर मजलिस। ४. विदा, ५. गौरवपूर्ण पूंजी, ६. भाषाके नियम, ७. निर्भरता, ८. तुच्छ-भूमि, ९. प्रसिद्धिके आकाश, १०. संसारका राज्य, ११. तुच्छ, १२. क्रुद्ध।

गुलगीर[1] ने काट कर सिरे शमअ[2]
पर्वाना[3] से शब जली कटी की।
तर्तीबे कुहन[4] को वज़अ ऐ अर्श
हमने दीवानमें नयी की।

इनका एक शेर बहुत प्रसिद्ध है:—

आसिया[5] कहती है हर सुबह बा आवाज़ बुलन्द[6]
रिज़्क़[7] से भरता है रज़्ज़ाक़[8] देहन[9] पत्थरके।

मीर फ़ैज़ अली

'मीर' के दूसरे बेटेका नाम था—मीर फ़ैज़ अली। इनके नामपर मीरने फ़ैज़े मीर पुस्तक लिखी। इनके चन्द शेर नीचे दिये जाते हैं :—

न मानी तूने मेरी अपनी ही ज़िद बेवफ़ा रक्खी,
करें हम किससे अब जाकर हमारी तूने क्या रक्खी।
[10]कुदूरत जब न तब अन्दाज़से निकला ही की तेरे,
हमारी खाक[11] इस कूचे[12] में तूने कब सबा रक्खी।
बनाये सानये कुदरत[13] ने क्या-क्या फूल गुल यूँ तो,
मेरे इस गुलबदनमें कुछ अदा सबसे जुदा[14] रक्खी।

× × ×

१. बत्ती काटनेवाला, २. मोमवत्तीका सिर, ३. पतंग, ४. पुराने क्रम, ५. पनचक्की, ६. ऊँची, तेज़, ७. भोजन, ८. दाता, ईश्वर, ९. मुँह, १०. मनोमालिन्य, रंजिश, ११. मिट्टी, १२. गली, १३. प्रकृति-निर्माता, १४. अलग।

दौरमें साक़ी[1] तेरे आ निकले हैं मैनोश[2] हम,
जाम[3] खाली दे है क्या ? इतने नहीं मदहोश[4] हम।
बे-ज़बानीकी न पूछो वजह हमसे कोफ़्तमें,
चोट कुछ ऐसी लगी दिल पर कि हैं खामोश हम।

× × ×

नहीं मालूम किस रश्के क़मर[5] की राह तकते हैं,
कि सारी रात आँखोंमें कटा करती है तारोंको।

'मीर' के एक लड़की भी थी जिसे वह बहुत प्रेम करते थे। शादीके थोड़े ही दिनों बाद उसका देहावसान हो गया। मीर खूब रोये और लिखाः—

अब आया ध्यान ऐ आरामेजाँ ![6] इस नामुरादीमें,
कफ़न देना तुम्हें भूले थे हम असबाबे शादीमें।

कई ग्रन्थोंमें इनकी लड़कीका ज़िक्र मिलता है जो 'बेगम' के नामसे कविता करती थीं। 'बेगम' की एक ग़ज़लके चन्द शेर देखिए—

बरसों ख़मे गेसू[7] में गिरफ़्तार तो रक्खा,
अब कहते हो क्या तुमने मुझे मार तो रक्खा।
कुछ बेअदबी[8] और शबेवस्ल[9] नहीं की,
हाँ यारके रुख़सार[10] पै रुख़सार तो रक्खा।

१. पिलाने वाला, २. मद्यप, ३. सुरापात्र, ४. मूर्छित, ५. जिसे देख चन्द्रको ईर्ष्या हो, ६. प्राणोंके विश्राम, ७. अलककी वक्रता, ८. अशिष्टता, ९. मिलन-रात्रि, १०. कपोल।

वह ज़िबह करे या न करे गम नहीं इसका,
सर हमने तहे ख़ंजरे खूँख़ार[१] तो रक्खा।
इस इश्ककी हिम्मतके मैं सदके[२] हूँ कि 'बेगम',
हर वक्त़ मुझे मरने पै तैयार तो रक्खा।

कहीं-कहीं मिलता है कि मीरने बुढ़ापेमें शादी भी की थी। पर इसका कोई प्रमाण नहीं है।

१. रक्त-पिपासु तलवारके नीचे। २. निछावर।

'मीर' : चरित्र-पक्ष

किसी व्यक्तिके निर्माणमें अनेक संस्कार काम करते हैं। पहला स्थान तो उन संस्कारोंका है जो माँ-बापसे या आनुवंशिक परम्परा द्वारा सन्ततिको प्राप्त होते हैं। उसके बाद उस वातावरणकी बात आती है जिसमें बच्चा पलता और साँस लेता है। फिर प्रशिक्षण और बौद्धिक प्रगतिके लिए प्राप्त सुविधाओंकी बारी आती है। इसके बाद मित्र-मण्डली तथा कौटुम्बिक वातावरणका स्थान है जिसमें वह चलता-फिरता, खेलता और हृदयका रस प्राप्त करता है।

मीरको बचपनसे ही अपने पूज्य पिता और चचाकी उच्च भावभूमिमें रहने और सैर करनेका अवसर मिला था। ये दोनों ही संत प्रकृतिके थे; दुनियासे ज़्यादा सम्बन्ध न रखते थे; प्रेम-रस में डूबे हुए थे। प्रभुके ध्यानमें मस्त रहनेवाले; कभी-कभी उसी मस्तीमें रोते, बिलखते और सिर धुनते थे। प्रियतमके विरहकी आगमें जलते थे; रात-दिन, खाते-पीते, उठते बैठते, चलते-फिरते उसीका ध्यान था। आदमियोंमें भी उसीकी छाया दिखाई देती थी। उदार, सन्तोषी, त्यागी, साम्प्रदायिक क्षुद्रताओंसे ऊपर उठे हुए उनमें सूफियोंकी सब विशेषताएँ थीं।

बचपनका वातावरण

'मीर'में जो स्थिरता, दृढ़ता, भौतिक सुखोंके प्रति लापरवाही, उच्च मूल्योंके प्रति निष्ठा, आत्म-नियन्त्रण है उसका स्रोत उनके पिता और चचा ही हैं। दोनों इन्हें बहुत मानते थे। बचपनसे ही मीरमें एक अद्भुत आर्द्रता थी जिसे पिताने लक्ष्य किया था। इस प्रेमकी तड़पको देख कर ही पिताने एक दिन कलेजेसे लगाकर कहा था—"ऐ सरमायए जान ! यह कौन-सी आग है जो तेरे दिलमें निहाँ है ?" वह

पिता और चचासे प्राप्त पूँजी

सदा कहते रहते थे कि बेटा, इस संसारमें प्रेम ही एक सत्य है। उसीसे और उसीको लेकर सम्पूर्ण जगत् है। इश्कमें दिल खोना, प्रेममें निमज्जन ही मानवका गौरव है। यद्यपि 'मीर'की उम्र इन गूढ़ शिक्षाओंको समझने की न थी पर वह उनकी ओर खिचते ही गये। इस तरह बचपनसे ही इनमें इश्ककी आग जल उठी थी,—वह आग जो जल कर फिर जन्म भर नहीं बुझी। यह दिन-दिन अन्तःस्थ होते गये; दिल दर्द और करुणासे पूरित होता गया। बाहरी टीम-टामसे ध्यान हटता गया। बचपनमें चचाके साथ अनेक दरवेशोंके पास जाते थे। वहाँ जो देखा, जो सुना वह इनके अन्तःमन पर बैठता गया।

एक ओर इस आन्तरिक संस्कृतिका लाभ उनको मिला, दूसरी ओर बचपनमें ही, उस संस्कृतिको पूर्णतः अपना बना लेनेके पूर्व ही इन पर पहाड़ टूट पड़ा। मुसीबतोंकी ऐसी आँधी आई कि यदि पिता चचाके प्रारम्भिक संस्कार इन्हें दृढ़ न रखते तो यह उसमें उड़ कर लापता हो जाते। पहिले चचा मरे, फिर पिता चल बसे। ऐसी मानसिक व्यथामें भी बड़े भाईने उपेक्षा एवं स्वार्थपरताका व्यवहार किया। जो लोग पिताके समय इन्हें हाथों हाथ रखते थे उन्होंने आँखें फेर लीं। दुनियाकी भीड़के बीच भी एक अजब वीरानापन इनके चारों ओर था। इस इकलेपन, इस वीरानेपनकी छाया इनके समस्त काव्यमें है। यह बिना किसी पथ-दर्शक एवं यारदोस्तके सुनसान दुनियामें भटकनेको विवश हुए।

मुसीबतोंकी आँधीमें

छोटी-सी उम्र, साथी कोई नहीं, हमदर्द कोई नहीं और ज़माना ऐसा था कि बड़े-बड़े कलेजे वाले घरसे बाहर निकलते डरते थे। मुगलशक्तिका अधःपतन तीव्र गतिसे हो रहा था। दिल्ली, शान-शौक़तकी दिल्ली, शक्तियों का केन्द्र दिल्ली, भारतकी शासनसत्ताका प्रतीक दिल्ली, मध्ययुगीन भारतीय सभ्यताका स्रोत दिल्ली भूलुण्ठिता थी। बे-आबरू, बर्बाद, लुटी हुई, अपहृता नारीके समान बाल छिटकाये, विधवा-सी पर वैधव्यके तेज एवं

पवित्रतासे हीन दिल्ली, जहाँ कोई किसीका न था, जहाँ आजका मित्र कलका दुश्मन था, जहाँ आज आलिंगन करने वाला मित्र कल कलेजेमें कटार भोंक देता था, दिल्ली डूब रही थी; रिक्तताके सागरमें डूबते हुए संध्या-कालीन सूर्यकी भाँति। अन्धकार घिरता आ रहा था। लोग अकेले राह न चलते थे। क़ाफिलोंमें चलते थे और फिर भी लुटते थे। ऐसी अस्थिरताके युगमें सब प्रकारकी छायासे हीन, साधनहीन, अनाथ मीर जीविकाकी खोजमें उस दिल्लीकी ओर जा रहे हैं।

उन मानसिक एवं शारीरिक विपत्तियोंकी कल्पना कीजिए जो बाप एवं चचाकी मृत्युके बाद इस बच्चे पर पड़ी होंगी। स्वभावतः उसका कलेजा कुम्हला गया, उसमें ऐकान्तिकता आई। अपने साथ और दुनियामें दूसरोंके साथ जो व्यवहार उसने होते देखा उससे उसका दिल बुझ गया। यौवन कालमें दुनियाकी रंगीनियों, चटक-मटक, उत्फुल्लता और मज़ोंकी ओर आकर्षित होनेकी जगह एक प्रकारका गहरा सूनापन, दुनियासे अलहदगी इनमें आती गयी।

यौवनमें प्रेम किया, उसमें भी असफलता ही हाथ लगी। इसलिए वह दुःख और घना होता गया। गंभीर विरह-दुःखसे इनका जीवन और उस जीवनसे निकलने वाला सम्पूर्ण काव्य भर गया।

बाह्य एवं अन्तर्जगत्के इन अनुभवोंको भावनाकी तीव्रताके कारण काव्यमें व्यक्त करनेमें इन्हें अद्भुत सफलता मिली। इनमें वह शोख़ी, छेड़-छाड़, शरारत कभी न आई जो यौवनमें ज़िन्दगीके इर्दगिर्द बिखर जाती है। जिस वातावरण और जीवनके तीव्र दुःखद अनुभवोंसे यह गुज़रे उसके कारण इनमें एक तुनुकमिज़ाजी आ गयी। संसारके प्रति तीव्र विरक्तिके संस्कारोंके बीच काव्यकी सफलताने इनके स्वाभिमानको इतना तीव्र कर दिया कि उस पर अभिमानका आवरण चढ़ता ही गया। सारी ज़िन्दगी यह दुनियासे खिंचे, साथियों और समकालिक साहित्यकारोंसे खिंचे रहे। करुणा, संसारके प्रति व्यापक सहानुभूति, दिलकी लोच, दूसरोंको कलेजेसे

बाँध लेने, अपना लेनेकी जो शक्ति सामान्य अवस्थामें होती है, वही असाधारण स्थितियोंके कारण इनमें गहरी वेदना, विरक्ति, खीझ, दूसरोंके प्रति असहनशीलता और अहंकार बन गयी।

ये सब वृत्तियाँ इनके जीवन एवं काव्यमें मिलती हैं। इतने पर भी इनकी सफलता यही है कि आँधीमें भी यह अडिग रहे। दूसरा लड़का इन स्थितियोंमें बह जाता; ऐशो इशरतमें, लफंगईमें पड़ जाता पर पिता चचा एवं दरवेशोंसे प्राप्त संस्कारोंने इन्हें गिरने न दिया। प्रेमकी अभिव्यक्तियाँ सदा मामूली सतहसे ऊँची रहीं।

बेख़ुदी पिता, चचा एवं दरवेशोंमें जो बेखुदी, मस्ती, अद्‌भुत बेहोशी थी—वह उस स्तर पर तो नहीं पर कुछ नीचे उतर कर इनमें भी थी। देखिए—

बेख़ुदी ले गई कहाँ हमको,
देरसे इन्तज़ार है अपना।

बेखुदीमें न जाने कहाँ पहुँच गये हैं और अपने ही लौटनेकी, अपने ही प्रत्यावर्त्तनकी प्रतीक्षा है। अपनी मानसिक स्थिति, खोये हुए मीरकी स्थितिको बार-बार बयान किया है:—

बेखुदी पर न मीरके जाओ,
तुमने देखा है और आलममें।

× × ×

करते हो बात किससे वह आपमें कहाँ है?

और भी देखिए, जब दूसरी दुनियामें होते थे, मिलते न थे—

मिलने वालो, फिर मिलिएगा है वह आलमे दीगरमें,
मीर फ़क़ीरको सक्र है यानी मस्तीका आलम है अब।

और यह पिता चचा तथा दरवेशोंकी शिक्षाका ही परिणाम था कि मीर साम्प्रदायिक भेदभावसे सदा ऊँचे उठे रहे। मन्दिर और मस्जिदमें कोई

देरो हरम से ऊपर

भेद उन्हें कभी अनुभव न हुआ। वस्तुतः यह इन दोनोंको सच्ची उपासनामें बाधक और वैमनस्य उत्पन्न करने वाला मानते थे। सूफियोंका मार्ग प्रेमका मार्ग था; वे प्रियतमके गहरे सान्निध्यके रसमें डूबे रहते थे और कर्मकाण्डीन उपासनाके प्रति उदासीन रहते थे। 'मीर' पर भी इसका असर हैः—

हम न कहते थे कहीं ज़ुल्फ़[1], कहीं रुख़[2] न दिखा,
इख़्तिलाफ़[3] आया न हिन्दू-मुसल्माँ के बीच।

× × ×

हम न कहते थे कि मत देरो-हरम[4] की राह चल,
अब य' दावो हश्र[5] तक शेख़ो-बरहमन में रहा।

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि इनपर बचपनमें जो मुसीबतें आईं, उनके कारण दुनियाके प्रति एक बे-दिमाग़ी, एक कड़ुआहट इनमें आती गयी;

अहंकी प्रतिक्रियाएँ

स्वाभिमानने अहंकारका रूप धारण कर लिया। प्रचलित मतों एवं फैशनों के प्रति, संसारकी प्रशंसा एवं मूल्योंके प्रति एक विद्रोहका भाव इनमें आता गया। इसीलिए काव्योत्कर्षके ज़मानेमें किसीको कुछ न समझने की बे-दिमाग़ी इनमें आई। इनके अभिमानी स्वभाव, खीझ और तुनुक-मिज़ाज़ीके सम्बन्धमें अनेक कहानियाँ कही जाती हैं। स्वभावतः यह गम्भीर थे; बातें कम करते थे। तुच्छ विलास-भावनाओंसे सदा दूर रहते थे।

१. अलक, २. मुख, ३. भिन्नता, ४. मन्दिर और काबा, ५. प्रलय।

आत्माभिमान विकृत होकर इतना बढ़ गया था कि अधीनता तो दूर नौकरी का नाम भी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे, किन्तु संसारका मार्ग इतना सरल नहीं है; विवश होकर उसमें चलना ही पड़ता है। इस अकड़का परिणाम भोगते थे फिर भी अकड़े रहते थे। इन शिकायतोंके लोगोंमें जो चरचे थे उससे वह स्वयं भी परिचय रखते थे। एक मुख़म्मस (पंचपदी) में इसकी झलक मिलती है। कहते हैं :—

हालत तो यह कि मुझको ग़मोंसे नहीं फ़राग़[1]।
दिल सोज़िशे दरूनी[2] से जलता है जूँ चिराग़।
सीना तमाम चाक[3] है सारा जिगर है दाग़।
है नाम मजलिसोंमें मेरा मीर बे-दिमाग़।
अज़ बस कि कमदिमाग़ीने पाया है इश्तिहार[4]।

अपनी नाज़ुकमिज़ाजीके बारेमें खुद कहते हैं :—

नाज़ुकमिज़ाज आप क़यामत है मीरजी,
जूँ शीशा मेरे मुँह न लगो मैं नशेमें हूँ।

× × ×

तेरी चाल टेढ़ी, तेरी बात रूखी,
तुझे मीर समझा है याँ कम किसूने।

× × ×

ज़्यादा मिलने-जुलनेमें न थे; एकान्तप्रिय थे :—

सोहबत[5] किसीसे रखनेका उसको न था दिमाग़।
था मीर बे-दिमाग़को भी क्या बला दिमाग़।

१. मुक्ति, २. अन्तर्दाह, ३. विदीर्ण, ४. प्रसिद्धि, विज्ञप्ति, ५. ा ंग।

बातें करे बरश्तगीए दिलकी पर कहाँ,
करता है इस दिमाग़जलेका वफ़ा दिमाग़।
दो हर्फ़[१] जेरे-लब[२] कहे फिर हो गया ख़मोश,
यानी कि बातें करनेका किसको रहा दिमाग़।

निरन्तरकी कठिनाइयों, असफलताओंने इन्हें चिड़चिड़ा बना दिया था। अक्सर कड़ी बातें कह जाते; लोगोंको बुरी लगतीं पर परवा न करते थे। जो मनमें आता कह डालते थे; ज़बान पर काबू न था। स्वयं स्वीकार करते हैं :—

कहना जिससे जो कुछ होगा सामने मीर कहा होगा,
बात न दिलमें फिर गई होगी मुँह पर मेरे आई हुई।

अपने ज्ञान-भण्डार और काव्य-प्रतिभाको अक्षय धन समझ कर ग़रीब-अमीर किसीकी परवा न करते थे। अपने बेटेसे वृद्धावस्थामें कहा ही

अहंकार एवं स्वाभिमान

था—"बेटे मेरे पास माल व मुताए दुनियासे तो कोई चीज़ नहीं है जो आइन्दा तुम्हारे काम आये लेकिन हमारा सरमाए नाज़ क़ानूने ज़बाँ है।" इसी दौलत पर उनको गर्व था। अनेकानेक कठिनाइयाँ सह कर भी अपना सिर सदैव ऊँचा किये रहे। ऐसा कोई काम न करते जिससे अपनी स्वतन्त्रता पर कुछ भी भार पड़ता। चार दिनके भोग-विलासके लोभसे अथवा दीनताके दुःखसे अपना सिर दुनियाके आगे कभी न झुकाया। इनका काव्य इस बातका साक्षी है कि इनके दिलकी कली और त्यौरीकी गिरह कभी खुली नहीं। यदि इनका अभिमान इन्हें केवल अमीरोंकी प्रशंसा करनेसे रोकता तो विशेष हानि न थी परन्तु दुःखकी बात है कि औरोंके कलामकी विशेषताएँ भी इन्हें दिखाई न पड़ती थीं। मुखसे दूसरोंकी प्रशंसा

१. अक्षर, शब्द, २. ओठके नीचे।

बहुत ही कम निकलती थी। यह बात इनके यश रूपी शुभ्र वस्त्र पर एक भद्दे काले धब्बेके समान है। मामूली लोगोंकी तो कौन गिनती, फ़ारसीके सबसे प्रसिद्ध कवि सादी और शीराज़ीकी ग़ज़लोंको भी खुल कर प्रशंसा नहीं करते थे।

दिल्लीमें मीर क़मरुद्दीन ख़ाँ 'मिन्नत' एक कवि हो गये हैं। एक बार संशोधनके लिए उर्दूकी एक अपनी ग़ज़ल मीर साहबके पास ले गये।

फ़ारसी-वारसी कह लिया कीजिए

मीर साहबने वतन पूछा, उन्होंने सोनीपत (पानीपतके पास एक स्थान) बताया। मीरने फर्माया—"जनाब उर्दू खास दिल्लीकी ज़ुबान है; आप उसमें तकलीफ़ न कीजिए; अपनी फारसी-वारसी कह लिया कीजिए।"

एक बार नबाब तहमास्प बेग खाँके पुत्र सआदतयार ख़ाँ 'रंगीं', जिनकी उम्र १४–१५ वर्षकी थी, बड़ी सज-धजसे मीर साहबके पास गये, और

कविता दिल जलानेका काम है

इस्लाह (संशोधन) के लिए ग़ज़ल पेश की। मीर साहबने देख कर कहा—"साहबज़ादे! आप अमीर हैं, कुलीन हैं, तलवार-तीरन्दाज़ी वग़ैरा सीखिए, कविता दिल जलानेका काम है, उधर मत जाइए।" जब उन्होंने बहुत हठ किया तो कहा—"आपकी तबीयत इसके योग्य नहीं है, शायरी आपको नहीं आयेगी, व्यर्थ अपना समय न खोइए।" इसी प्रकार उर्दूके प्रसिद्ध कवि 'नासिख़'को भी इन्होंने बेतरह फटकार बताई थी।

× × ×

दिल्लीमें जब थे तब 'अज़दरनामा' नामकी एक मसनवी लिखी। उसमें अपनेको अजगर लिखा और अन्य कवियोंमेंसे किसीको चूहा, किसीको

अज़दरनामा

कनखजूरा, किसीको बिच्छू और किसीको साँप बनाया। कहानी यों बनाई कि किसी पर्वतकी घाटीमें एक भयंकर अज़दहा (अजगर) रहता था। एक बार उसे हराने

और नष्ट कर देनेके लिए जंगलके सब जानवर मिल कर उससे लड़ने गये। जब सामना हुआ तो अजगरने ऐसी गहरी साँस ली कि सब उसके पेटमें चले आये और नष्ट हो गये। इसका नाम 'अज़दरनामा' रखा और उसे मुशायरेमें लाकर पढ़ा।★ मोहम्मद अमाँ 'निसार' शाह हातिमके शिष्योंमें एक तेज और आशु कवि थे। उन्होंने वहीं एक कोनेमें बैठकर पाँच-सात शेरोंका एक 'क़ता' लिखा और उसी समय मुशायरेमें पढ़ा। चूँकि 'मीर' साहबकी बात किसीको पसन्द न आयी थी अतएव इस क़ते पर खूब क़हक़हे लगे और वाह वाहकी धुन लग गयी। इस क़तेका एक शेर है :—

हैदरे कर्रारने वह ज़ोर बख़्शा है निसार,
एक दममें दो करूँ अज़दरके कल्ले चीरकर।

'मीर' साहबको बड़ा लज्जित होना पड़ा।

× × ×

लखनऊमें जब थे तो एक दिन किसीने पूछा—"क्यों जनाब! आपके विचारसे आज कल शायर कौन-कौन हैं?" मीर साहबने उत्तर दिया—

पौने तीन शायर

एक तो सौदा और दूसरा यह खाकसार है।" कुछ ठहर कर कहा—"ख़ाजा 'मीर दर्द' भी आधे शायर माने जा सकते हैं।" उस व्यक्तिने पूछा—"हजरत! और मीर सोज़ साहब?" झुँझलाकर बोले—"मीर सोज़

★ सआदतउल्लाके बेटे थे। यह और इनके पूर्वज भवन-निर्माण-कला (इंजीनियरिंग) में पारंगत थे। जब दिल्ली आबाद थी तो वहीं रह कर अपनी विद्याके बलसे काल-क्षेप करते थे। दिल्लीके उजड़ जाने पर लखनऊ चले गये और वहाँ सुखपूर्वक रहे। शेर भी खूब कहते थे। शाह हातिमके नामी शागिर्दोंमेंसे थे। रेख़ते खूब लिखे हैं। इनके दीवान दुर्लभ हैं। मीर साहबसे और इनसे प्रायः छेड़-छाड़ रहा करती थी।

साहब भी शायर हैं ?" उसने कहा—"नवाब (आसिफउद्दौला) के उस्ताद हैं।" मीर साहबने कहा—"ख़ैर, यह है तो पौने तीन सही किन्तु सहृदय कवियोंके ऐसे उपनाम मैंने कभी नहीं सुने।"★

× × ×

एक दिन लखनऊके कुछ प्रतिष्ठित लोग भेंट करने तथा शेर सुननेके लिए मीर साहबके घर गये। दरवाज़े पर पहुँच कर आवाज़ दी। लौंडी निकली, समाचार पूछ कर भीतर गयी, और एक टाट लाकर ड्योढ़ीमें बिछा दिया। उसी पर लोगोंको बिठाया और एक हुक्क़ा ताज़ा करके उनके सामने रख गयी। थोड़ी देर बाद मीर साहब तशरीफ़ लाये। साहब सलामतके बाद लोगोंने शेर सुनानेका अनुरोध किया। मीर साहबने पहिले कुछ टाल-मटोल की, फिर साफ़ जवाब दिया कि "जनाब, मेरे शेर आप लोगोंकी समझमें नहीं आनेके।" यद्यपि लोगोंको बात बुरी लगी किन्तु

★ मीरसाहबसे कौन कहता कि बेचारे (मीर सोज़) ने उपनाम तो 'मीर' ही रखा था जिसे हुज़ूरने छीन लिया। इसलिए विवश होकर यह उपनाम रखना पड़ा कि न आपको अच्छा लगे न आप उसपर अधिकार जमायें।

जिस व्यक्तिसे मीरसाहबने ये बातें कहीं थीं उसने जाकर 'मीर सोज़' साहबसे कहा कि 'हज़रत, एक आलिम आदमी आपके उपनामपर आज हँसते थे।' उन्होंने कहनेवालेका नाम पूछा। बहुत हठके बाद सब हाल बताया गया। सोज़ साहबने कहा—"अच्छा, अगले मुशायरेमें सबके सामने यह सवाल करना।" उसने ऐसा ही किया। तब मीरसोज़ने उत्तर दिया—

"जनाब ! फ़क़ीरने पहिले तख़ल्लुस (उपनाम) तो मीर किया था मगर उसे मीर तक़ी साहबने पसन्द किया। मैंने सोचा उनके सामने मेरा नाम न रोशन होगा इसलिए मजबूर होकर 'सोज़' तख़ल्लुस किया।" बड़े क़हक़हे लगे। मीरको लज्जित होना पड़ा।—'आबेहयात'

सभ्यताके विचारसे उन्होंने पुनः अनुरोध किया। प्रस्ताव इस बार भी अस्वीकृत हुआ। निदान उन लोगोंने पूछा—"हज़रत! अनवरी व खाकानीके कलाम समझते हैं, आपका क्यों न समझेंगे?" मीर साहबने फर्माया—"यह दुरुस्त, मगर उनकी शरहें (टीकाएँ) मौजूद हैं, और मेरे क़लामके लिए फ़क़त[1] "मुहाविर-ए-अहले उर्दू"[2] है या जामा-मस्जिदकी सीढ़ियाँ। इन दोनोंसे आप महरूम[3] हैं" इतना कहकर निम्नलिखित शेर पढ़ा—

> इश्क बुरे ही ख्याल पड़ा है, चैन गया आराम गया।
> दिल का जाना ठहर गया है, सुबह गया या शाम गया॥

"अब आप अपने क़ायदेसे कहेंगे 'ख़्याल' के 'इये'[4] को जाहिर[5] करो, लेकिन यहाँ इसके सिवा कोई जवाब नहीं कि मुहाविरा ऐसा ही है।"

× × ×

मैं लिख चुका हूँ कि आसिफ़उद्दौलाके दरबारमें 'मीर' की बड़ी इज्ज़त थी। नवाब इनको बहुत मानते थे पर यह उनसे भी टकरा जाते थे। 'आज़ाद' ने 'आबेहयात' में लिखा है कि एक दिन नवाबने ग़ज़लकी फरमाइश की। दूसरे-तीसरे दिन जो फिर गये तो नवाबने पूछा कि मीर साहब, हमारी ग़ज़ल लाये? मीर साहबने त्योरी बदल कर कहा—"जनाब आली! मज़मून गुलामकी जेबमें तो भरे ही नहीं हैं कि कल आपने फरमाइश की और आज ग़ज़ल

"मज़मून गुलामकी जेबमें नहीं हैं!"

१. केवल। २. उर्दू बोलनेवाले लोगोंके मुहाविरे। ३. वञ्चित। ४. एक उर्दू अक्षर। ५. प्रकट।

हाजिर कर दे।" सज्जनताकी मूर्ति नवाबने सिर्फ़ इतना कहा—"ख़ैर, मीरसाहब ! जब तबीयत हाजिर होगी, कह दीजियेगा।"

× × ×

"मुतवज्जह हों तो पढ़ूँ !"

एक दिन नवाबने बुला भेजा। जब पहुँचे तो देखा कि नवाब हौज़के किनारे खड़े हैं। हाथमें छड़ी है। पानीमें लाल-हरी मछलियाँ तैरती फिरती हैं। आप तमाशा देख रहे हैं। 'मीर' साहबको देखकर बहुत ख़ुश हुए और कहा—"मीर साहब, कुछ फर्माइए।" मीर साहबने गज़ल सुनानी शुरू की। नवाब साहब सुनते जाते थे और छड़ीके साथ मछलियोंसे भी खेलते जाते थे। मीर साहब झुँझलाते और हर शेरपर ठहर जाते थे। नवाब साहब कहे जाते कि हाँ, पढ़िए। आख़िरकार शेर पढ़कर मीर साहब ठहर गये और बोले कि 'पढ़ूँ क्या ? आप तो मछलियोंसे खेलते हैं, मुतवज्जः[१] हों तो पढ़ूँ।' नवाबने कहा कि 'जो शेर होगा, आप मुतवज्जः कर लेगा।' बात ठीक थी पर मीरको बहुत बुरी लगी। गज़ल जेबमें डालकर घरको चले आये और उनके पास जाना ही बन्द कर दिया। कुछ दिनोंके बाद एक दिन बाज़ारमेंसे चले जा रहे थे कि नवाब साहबकी सवारी सामनेसे आ गयी। वह देखते ही बड़े प्रेमसे बोले—"मीर साहब ! आपने हमें बिल्कुल छोड़ ही दिया ? कभी तशरीफ़ भी नहीं लाते।" मीर साहबने कहा—"बाज़ारमें बातें करना आदाबे शुर्फ़ा[२] नहीं। यह क्या गुफ़्तगू[३] का मौक़ा है ?"

× × ×

अहदअली 'यकता' ने अपने ग्रन्थ 'दस्तूरुलफसाहत' (२५–२६) में इसी प्रकारकी एक घटनाका वर्णन किया है। उसके अनुसार घटना निम्नलिखित है :—

१. ध्यान दें, २. सभ्योंके आचरण, ३. वार्तालाप।

"एक रोज़ मीर साहब नया क़सीदा लिखकर नवाब वजीर[1] की खिदमतमें ले गये। इत्तिफ़ाक़न[2] उस रोज़ मुल्ला मोहम्मद मोग़ली भी ईरानसे आया था और चाहता था कि नवाब वज़ीरुल्मुल्ककी मदह[3] में कुछ पढ़े। किन्तु मीरका क़सीदा इतना तूलानी[4] था कि वक्त बाक़ी नहीं रहा। मुल्ला मोहम्मदने जल कर कहा कि मीर साहब! क़सीदा खूब है लेकिन तवील[4] है। अगर नवाब साहबको इतना तहम्मुल[5] न होता तो इसे कौन सुनता? मीर साहबने गुस्सेमें आकर बयाज़[6] फेंक दी और बदमज़ा[7] होकर कहा कि अगर नवाब साहबको इतना तहम्मुल नहीं तो मुझे कब है। नवाब साहब खल्के मुजस्सिम[8] थे। मुल्ला मोहम्मदकी बिल्कुल पर्वा न की और 'मीर' का बक़ीय[9] क़सीदा कमाले मेह्रबानी[10] से सुना और दाद[11] दी।"

मुझे कब तहम्मुल है?

× × ×

सआदत अली खाँ 'नासिर'ने भी 'मीर'की नाज़ुकमिज़ाज़ीका ज़िक्र किया है:—

"जब सरकार आसफ़उद्दौला बहादुरमें मीर साहब सीग़ए शायरी[12] में नौकर हुए, एक दिन वह आसफ़जाह कुतुबख़ाना[13] में जल्वागर[14] थे। और दवावीन जेरो बाला[15] रक्खे थे। एक जिल्द नवाब नामदारके हाथसे दूर और मीर साहबके नज़दीक थी। फर्माया—"मुझे उठा दीजिए।" मीर साहबने एक ख़ादिम[16] से कहा—"सुनो, तुम्हारे आक़ा[17] क्या फर्माते हैं?" नवाबने रास्त[18] हो कर उठा लिया मगर यह मीरज़ाई निहायत

देखो, तुम्हारे आक़ा क्या फ़र्माते हैं?

१. आसफ़उद्दौला, २. संयोगवश, ३. प्रशंसा, ४. लम्बा, ५. धैर्य, ६. कविताकी कापी, ७. खीझकर, ८. शिष्टताके मूर्तिमान रूप, ९. शेष, १०. अत्यन्त कृपा, ११. प्रशंसा, १२. काव्य-विभाग, १३. पुस्तकालय, १४. सुशोभित, १५. ग्रन्थ ऊपर नीचे, १६. सेवक, १७. स्वामी, १८. सीधे।

नागवार गुज़री । बाद एक लमहेके फर्माया—क्यों मीर साहब, मिर्जा सौदा कैसा शायर मुसल्लमस्सबूत[1] था । मीर साहबने कहा—बजा[2]—'हर ऐब कि सुलतान वपसन्दद हुनर अस्त[3]। हुजूर पुरनूरने[4] फर्माया कि "हम ऐबपसन्द[5] हैं? एक न शुद दो शुद[6]।" इतनेमें मीर सोज़ कि उस्ताद हज़रते आलीके थे, वास्ते मुजरे[7] के हाजिर हुए। हुजूरने फ़र्माया—"कुछ पढ़ो।" हस्बुल्हुक्म[8] मीर सोज़ने दो तीन ग़ज़लें पढ़ीं। नवाबने तारीफ़में उनकी मुबालग़ा[9] किया। दिलेरी[10] मीर सोज़ साहबकी और तारीफ़ नवाबकी मीर साहबको बहुत नागवार गुज़री। मीर सोज़से कहा—"तुम्हें इस दिलेरी पर शर्म न आई?" मीर सोज़ने कहा—"साहब! बन्दा क्या है? मैं शाहजहानाबादमें भाड़ झोंकता था।" कहा—"बुजुर्गी और शराफ़त[11] में तुम्हारी क्या ताम्मुल[12] है मगर शेरे मीरसे किसीको क्या हमसरी[13]? मौक़ा और महल[14] तुम्हारी शेरखानी[15] का वह है जहाँ लड़कियां जमा हों और हुंडकलियाँ पकती हों, न कि मीरतक़ीके सामने।" मीर सोज़से तो यह कहा और वह शक्क़ा[16] कि मीरकी तलबको हुजूर पुरनूरने लिखा था, जेबसे निकाल कर हुज़ूरके आगे रख दिया और यह कह कर उठ खड़े हुए—'खाना आबाद। दौलत ज़ियादा।' नवाबने फर्माया—"खुदा हाफ़िज़[17]।"

"दो महीनेके बाद तहसीनअलीखाँ खाजासराने ज़िक्र इनकी उसरत[18] और गरीबुलवतनी[19] का हुजूरमें गुजारिश किया। उस हातिमे ज़माँ[20] ने

१. प्रामाणिक, उच्च, २. ठीक, ३. राजाको पसन्द आनेवाला प्रत्येक दुर्गुण भी गुण है, ४. प्रकाशमान, ५. दुर्गुणप्रिय, ६. एक न रही, दूसरी भी, ७. दर्शन, ८. आज्ञानुसार, ९. अत्युक्ति, १०. साहस, ११. बड़प्पन और शिष्टता; १२. सन्देह, १३. बराबरी, १४. अवसर एवं स्थान, १५. काव्य पढ़नेका, १६. राजपत्र; १७. ईश्वर रक्षा करे। १७. गरीबी, तंगी, १९. अपने वतनका छूट जाना, २०. युगके हातिम (परोपकारी)।

अव्वल शिकायत उसकी बेएतनाई[१] की बहुत- सी की। बादये शफ़ाअत[२]

यह अकड़

ख़ाजासरा क़बूल फ़र्माई। ख़ाजासरा ख़ुश ख़ुश मीर साहबके पास आया और वह ज़िक्र सुनाया। मीरसाहबने दरबारमें ख़ाजासराकी मार्फ़त[३] जाना नंगेमर्दी[४] समझकर इन्कार किया।

"एक दिन वह जौहरशनासे हुनरमन्दाँ[५] अक़ीक़उल्लाके इमामबाड़ेकी तरफ़ आया और तहसीनको इशारेसे कहा कि मीरसाहबको ले आ। ख़ाजा-सराने मीरसाहबसे कहा—"चलो, तुम्हारे लेनेको हुज़ूर आये हैं।" सुभान अल्लाह क्या क़दरशनास[६] थे कि अपने नौकरकी रईसोंकी-सी खातिर[७] थी।"★

× × ×

मौलवी मोहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ने 'आबेहयात'में लिखा है:—

"जब नवाब आसफ़उद्दौला मर गये, सआदतअलीख़ाँका दौर हुआ तो यह दरबार जाना छोड़ चुके थे। वहाँ किसीने तलब न किया। एक

"मैं भी बादशाह हूँ!"

दिन नवाबकी सवारी जाती थी, यह तहसीनकी मस्जिद पर सरेराह बैठे थे। सवारी सामने आई। सब उठ खड़े हुए। मीरसाहब उसी तरह बैठेरहे। सय्यद इंशा ख़वासीमें थे। नवाबने पूछा कि इंशा, यह कौन शख्स है जिसकी तमकनत[८] ने उसे उठने भी न दिया। अर्ज़ की, जनाब-आली! यह वही गदाये मुतकब्बिर[९], है, जिसका ज़िक्र हुज़ूरमेंअक्सर[१०] आया है, गुज़ारेका वह हाल और मिज़ाजका यह आलम[११]। आज भी फ़ाक़ासे

१. लापरवाही, उपेक्षा, २. सिफारिश, ३. ज़रिये, द्वारा, ४. अपमान, ५. गुणियोंके पारखी, ६. गुणोंके पारखी, ७. सम्मान, ★ तज़किरा खुशमार्कए ज़ेवा, ८. अभिमान, ९. स्वाभिमानी फकीर, १०. प्रायः, ११. अवस्था।

ही होगा। सआदतअलीखाँने खिलअत[१] बहाली और एक हज़ार रुपये दावत[२] का भेजवाया। जब चोबदार लेकर गया, मीर साहबने वापिस कर दिया, और कहा कि "मस्जिदमें भेजवाइए। यह गुनहगार[३] इतना मोहताज[४] नहीं।" सआदतअलीखाँ जवाब सुनकर मुतअज्जिब[५] हुए। मुसाहबोंने फिर समझाया। ग़र्ज़ नवाबके हुक्मसे सय्यद इंशा खिलअत लेकर गये और अपनी तर्ज़[६] पर समझाया कि न अपने हालपर बल्कि इयाल[७] पर रहम कीजिए और बादशाहे वक्तका हदिया[८] है, इसे क़बूल[९] फर्माइए। मीर साहबने कहा कि साहब, वह अपने मुल्कके बादशाह हैं, मैं अपने मुल्कका बादशाह हूँ। कोई नावाक़िफ़[१०] इस तरह पेश आता तो मुझे शिकायत न थी। वह मुझसे वाक़िफ़, मेरे हालसे वाक़िफ। इसपर इतने दिनों बाद एक दस रुपयेके खिदमतगारके हाथ खिलअत भेजा। मुझे अपना फ़क्र[११] व फ़ाक़ा[१२] क़बूल है मगर यह ज़िल्लत नहीं उठाई जाती। सय्यद इंशाकी लस्सानी व लफ्फ़ाज़ी[१३] के सामने किसकी पेश जाती। मीर साहबने क़बूल फ़र्माया और दरबारमें भी कभी-कभी जाने लगे।"

× × ×

सआदत अलीखाँ 'नासिर'ने अपने ग्रन्थ 'तज़किरा खुशमार्क़ए ज़ेबा' में लिखा है :—

"मिर्ज़ा मोग़ल 'सबक़त' कहते थे, जब मीर साहब लखनऊमें तशरीफ़ लाये बन्दा उनकी शरफ़े मुलाज़मत[१४] को गया। खबर होनेके बाद देरमें

१. राजकी ओरसे उपहारमें दिया जानेवाला परिधान, २. निमंत्रण, ३. अपराधी, पापी, ४. मुखापेक्षी, अकिंचन, ५. चकित, ६. ढंग, ७. बाल-बच्चों। ८. भेंट, ९. स्वीकार, १०. अज्ञ, ११. फकीरी, १२. उपवास, अनशन, अनाहार, १३. वाचालता व वाग्मिता, १४. सेवाका सौभाग्य।

तशरीफ़ लाये। मैंने दौलते क़दमबोसी[1] हासिल की और बाद कीलोक़ाल[2] के मुल्लतमिस[3] हुआ कि कुछ अपने कलामसे मुस्तफ़ीद[4] फर्माइए। बेताम्मुल[5] फर्माया कि तुम्हारे बशरे शेरफहमी[6] मालूम नहीं होती, सखुन[7] को ज़ाया[8] करनेसे क्या हासिल[9]?"

सख़ुनको ज़ाया करनेसे क्या हासिल ?

× × ×

नासिरने एक और घटना लिखी है :—

"एक दिन शाह कुदरतउल्ला और मीर साहब किश्तीपर सवार थे। कुदरत उल्लाने चन्द ग़ज़लें अपने दीवानकी 'मीर' साहबके आगे पढ़ीं।

दरियामें डाल दो

'मीर' साहबने कुछ न कहा। वह मुलतमस हुआ कि "आपने कुछ न फ़र्माया।" मीरसाहबने कहा—"सवाबदीद[10] यह है कि दीवानको अपने दरियामें डाल दो।"

× × ×

'नासिर' ही 'तज़किरा खुशमार्कए ज़ेबा' में एक और घटना लिखते हैं :—

"इमादुल्मुल्क नवाब ग़ाज़ीउद्दीनखाँ★ लबेदरिया[11] बैठे हुए थे और

१. चरण-स्पर्श-धन, २. शिष्टाचार, ३. प्रार्थी, ४. लाभान्वित, ५. बेधड़क, ६. काव्य समझनेकी योग्यता, ७. काव्य, ८. नष्ट, ९. लाभ, १०. पुण्यकारक, ११. नदीके तट पर।

★ शेफ़्ताके बयानसे डा० फारूकीने अपनी पुस्तक 'मीरतक़ी मीर' (पृष्ट २९१) में निम्नलिखित सूचना उद्धृत की है :—

"निज़ाम तखल्लुस, नवाब इमादुल्मुल्क ग़ाज़ीउद्दीन खाँ बहादुर

मुर्ग़ाबियाँ, आबी बत[१] और सुरखाब[२] वास्ते सैरोतमाशाके दरियामें छूटी हुई थीं। इत्तिफ़ाक़न[३] मीर साहब उधरसे आ निकले।

"देखकर चल राह बेख़बर"—

नवाब चन्द कसीदे अपने उनको पढ़कर दाद-तलब[४] हुए। मीर साहबने फ़र्माया—"मेरी तारीफ़की क्या एहतियाज[५] है? हरवतको साहबके अशआर[६] पर हालते वज्द[७] व समाअ[८] है।" नवाब पर यह सखुन निहायत नागवार गुज़रा और दूसरे रोज़ मीर साहबको फिर तलब किया। आप कुर्सीपर बैठे, जमीन पर सिवाय ख़ाक कुछ न बिछवाया। मीर साहबने लमहेके लमहे इन्तजार[९] मोढ़े चौकीका किया। बाद अज़ाँ[१०] दुपट्टा अपना दोतहा करके बिछाया और बैठ गये। नवाब साहबने फ़र्माया—"कुछ इर्शाद[११] कीजिए।" मीर साहबने यह क़ता पढ़ा—

वज़ीरस्त जलीलुलक़दर, अमीरेस्त, आलीशान, हालिश मुस्तग़नी अज़ शरह व बयाँ मिर्ज़ा रफीअ सौदा औरा अज़सना गुस्तरान अस्त।" (गुलशने बेख़ार पृष्ठ २३२)। पर 'तज़किरा करीमुद्दीन'में बड़ी निन्दा की गयी है—"यह अमीर बहुत नमकहराम और बर्बाद करनेवाला खान्दान तैमूरियाका था। आलमगीर सानी भी इसीकी नमकहरामी की सबब मक़्तूल हुआ। मिर्ज़ारफीअ सौदा उसकी मद्दाहीनमेंसे है।" (पृ० १२३) इसका एक शेर यह है—

आया न कभी ख़्वाबमें भी वस्ल मयस्सर,
क्या जानिये क़िस वक्त मेरी आँख लगी है।

इसकी स्त्री गन्ना बेग़म 'शोख़' भी शेर कहती थी।

१. जल हंस, २. चकवाक, ३. संयोग-वश; ४. प्रशंसार्थी, ५. आवश्यकता, अपेक्षा, ६. शेरका बहुवचन, ७. मस्तीमें झूमना, ८. राग, ९. प्रतीक्षा, १०. इसके बाद, ११. कथन।

कल पाँव एक कासए[1] सर पर जो आ गया,
नागह वह उस्तखान[2] शिकस्तोंसे चूर था।
कहने लगा कि देखकर चल राह बेखबर,
मैं भी कभू किसूका सरे पुर गरूर[3] था।'

यह ठीक है कि स्वाभिमान उनमें मर्यादा उल्लंघन कर गया था और तुनुकमिज़ाजी अहंकारकी उस सीमापर पहुँच गयी थी जहाँ वह समाजका दूषण बन जाती है पर इसके कारण ही संसारके बड़ेसे बड़े प्रलोभनके लिए भी उनका सिर न झुका। स्वाभिमानके आगे राजसम्मान भी उनके लिए तुच्छ था। यह भी मानता हूँ कि यह उनके चरित्रकी विकृति थी क्योंकि वास्तविक स्वाभिमानी वह है जो दूसरेके स्वाभिमानका भी उतना ही ख्याल रखता है जितना अपना, इसलिए वह दूसरोंको भी ऊपर उठाता है, उसपर प्रहार करके नहीं, उसे गले लगाकर।

कदाचित् मीरके पिता या चचा जीवित रहते और इनकी छाया बराबर उन्हें मिली होती, प्रेम एवं स्नेहका वह स्रोत अकस्मात् टूट न गया होता तो मीरका निर्माण वैसा ही हुआ होता। तब वह दूसरोंके प्रति गहरी संवेदनाओं और सहानुभूतियोंसे भरे होते। पर जब वह उग रहे थे तभी उनके गिर्द एक तूफ़ान, एक बवण्डर आया जिसने उनको अस्थिर कर दिया—विपत्तियोंकी ऐसी धारा, जिसका पाट बढ़ता ही गया और जो जीवन भर कभी समाप्त न हुई। इसलिए जहाँ उनमें एकान्तप्रियता, दर्दमन्दी, गम्भीरता और प्रेम-प्रवणता आई, वहाँ चिड़चिड़ापन, तुनुकमिज़ाजी, जीवन एवं जगत्से असन्तोष भी आया। अपनीसे भिन्न विचार-प्रणालियों, जीवन-विधियोंसे समझौता करनेकी शक्ति एवं सामाजिकता देनेवाला प्रेम उनका न था।

मानसके अतलमें

१. सिर रूपी प्याला, २. हड्डियाँ, ३. स्वाभिमानी मस्तक।

स्नेही एवं सन्तकी जगह, इसीलिए, वह आलोचक एवं उपदेशक बन गये, संशोधक हो गये, दूसरोंसे सीखने और दूसरोंको ग्रहण करनेकी जगह दूसरों के दोषों पर प्रहार कर उन्हें उठानेका आग्रह उनमें प्रबल होता गया। अतीतके प्रति, जो चला गया है या जा रहा है उसे भूलकर जो सामने है उसे ग्रहण करनेकी जगह अतीत और अतीतके मूल्योंके प्रति प्रबल आसक्ति उनमें सदा रही। इसीलिए वह हरएकसे उलझ पड़ते थे, हरएकसे खीझ जाते थे।

उलझाव है ज़मीं से झगड़ा है आसमाँ से।

काव्य केवल चमत्कार नहीं

वह दिलसे नेक थे, क़त्तई किसीका बुरा न चाहते थे पर किसीको ऐसी राह पर चलते देखते, जिसे वह हृदयसे ग़लत समझते थे, तो चुप न रह सकते थे। प्राचीन मूल्योंके प्रति, दिल्लीकी शताब्दियोंकी परम्पराके प्रति, उनमें जो मोह था, उसके कारण वह सचमुच अनुभव करते थे कि ज़माना ग़लत राह पर जा रहा है; ज़बान ख़राब की जा रही है; शेरो सख़ुन नीचे पाये पर ले जाया जा रहा है। उनके निकट काव्य, या ज़बान एक आन्तरिक श्रेष्ठता, एक अन्त:सौष्ठव, एक अन्त:संस्कृतिका चिह्न है, केवल रचना-चातुरी नहीं, केवल शब्द-चमत्कार नहीं। इसीलिए वह खीझते थे, अन्दर ज़मानेके प्रति जो खीझ थी, ज़रा भी अवाञ्छनीय दृश्य सामने आते ही निकल पड़ती थी। पर युग दूसरी ओर जा रहा था। लोग उनकी इज्ज़त करते थे, उनके महत्वको समझते थे, पर उसका अनुसरण न कर पाते थे। उसके गहरे प्रयोजन और तात्पर्यको समझ न पाते थे। मीर साहब इससे दुखी होते थे और हाय मार कर कहते थे:—

समझा न कोई मेरी ज़बाँ इस दयार में

× × ×

इधर यह खीझ थी और उधर वह इश्क़ था जिसकी गहरी छाप इन पर इनके पिता और चचाने डाली थी। यौवन कालमें इन्होंने किसी विधुवदनी को प्रेम किया। उसमें असफल हुए। पर असफलता केवल इस अर्थमें कि दोनोंका मिलन न हो सका। इससे प्रेमकी संवेदनाएँ व्यक्तिगत और गहरी होती गयीं। विपत्तियोंके साथ दर्दकी सम्पत्ति तो इन्हें बचपनसे मिली थी, प्रियतमाके आजीवन विरहने उसमें वह आग पैदा कर दी कि जिसमें जलना जीवनका सर्वोत्तम पुरस्कार है; उसने उनमें वे बूँदें भरीं जिनमें समुद्र समा जाता है और जिसके लिए कहा गया है—

विरहका रस

य' वह क़तरा है जिसमें डूबना ही है उभर जाना

शायद है कि प्रियतमा इन्हें मिल गयी होती तो यह खो गये होते; जीवनकी रंगीनियाँ इनके अन्तःकरणकी प्यासको ले डूबतीं; शायद है कि यह फिर उतना ऊँचा न उठ पाते; वह स्थायी, कभी स्थिर न होनेवाली वेदना इनमें न आती जो इनके जीवनको साधारण भोग-विलास, ऐशो-इशरतके स्तरसे ऊपर उठा सकी और इनके काव्यको वह प्रकाश दे सकी जो उर्दू ज़बानमें दूसरे किसीको नसीब न हुआ। इस प्रकार विरहका रस इनके जीवन और काव्यपर छा गया है। दुःखोंसे भरी अपनी ज़िन्दगीका सारा रास्ता वेदनापूर्ण सीनेके बल पार किया है और संसारके, समष्टिके दुःखको प्रियतमके विरहमें इस तरह मिला दिया है कि दोनोंको अलग करना मुश्किल है। उन्होंने प्रेमको सर्वोच्च सभ्यताका स्रोत बना दिया है।

मीर अकबराबाद, दिल्ली, लखनऊ जहाँ भी गये, बीच-बीचमें उन्हें गहरी आर्थिक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। वह ज़माना ही ऐसा था जब राजकुमार भी भूखों मरते थे। दिल्लीमें इनकी आर्थिक विपत्तियों का अनुमान मिर्ज़ाअली लुत्फ़के निम्नलिखित बयानसे किया जा सकता है जो उन्होंने 'गुलशने हिन्द' (पृ० २०९) में दर्ज किया है :–

"मीर सा शायर जो कि सेहरकारिये सख़ुनमें तिलस्मसाज है ख़्यालका, और जादूतराजिए बयानमें मानी परदाज़ है मक़ालका, वह नान शबीनाका मोहताज है, और बात कोई नहीं उसकी पूछता आज है।"

ऐसी कठिनाइयोंमें भी वह उन्हीं मूल्योंसे ठहरे रहे जो अपने ऊपर उन्होंने खुद लगाये थे—

मेरी क़द्र क्या इनके कुछ हाथ है,
जो रुतबा है मेरा मेरे साथ है।

इनका सबसे बड़ा गुण यही है कि इन कठिनाइयोंके आगे वह कभी झुकनेको तैयार नहीं हुए; अपने मार्ग पर चलते ही गये। ऐसा नहीं कि उनमें संसारका रस चखनेकी भावना न थी। उनमें ज़िन्दगीकी प्रेरणाएँ थीं पर बन्दगी की, पूजाकी भावनाएँ भी थीं। इसीलिए इनके जीवन और काव्यमें कभी एक तत्व की, कभी दूसरे तत्व की अधिकता हम पाते हैं। जैसे एक ही शरीरमें दो आत्माएं हों। एक इश्ककी गहराईमें डूबी, समर्पणशील, दूसरी गर्वोन्नता, संसारके आगे न झुकनेवाली। खूबी यह है कि यह गिरते हैं, पर गिरकर उठते और आगे चलते हैं—काँटोंको रौंदते हुए, फूलोंको आशीर्वाद देते हुए, कलेजा हथेली पर रखे, सिर ऊँचा किये, आँखें तर किये चले जा रहे हैं और चले जा रहे हैं।

ज़िन्दगी और बन्दगी साथ-साथ है

मीर : जीवन एवं काव्यकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

●

मीर जिस ज़मानेमें हुए उस समय उत्तर भारत, विशेषत: दिल्लीके समीपवर्त्ती भागकी स्थिति बड़ी डाँवाडोल थी। रईसोंका तख़्ता उलट रहा था; गद्दियाँ जहाँ तहाँ लुड़की हुई फिरती थीं। आज जो राजा है, कल उसका पता नहीं वह कहाँ गया; आज जो अहंकारसे भरा, ऐश्वर्यके सिंहासन पर है, कल अकिंचन और परमुखापेक्षी होकर किसी गड्ढेमें पड़ा है। मतलब सब तरफ़ अँधेरगर्दी, अव्यवस्था, अनिश्चितता, लूट, झगड़े-लड़ाईका राज था। मुगल साम्राज्य विशृङ्खल होता जा रहा था; राजकोष पारस्परिक झगड़ोंमें समाप्तप्राय था; कानूनका बन्धन ढीला पड़ गया था। मालगुज़ारी वसूल ही न हो पाती थी या अगर मुश्किलसे कुछ वसूल हो पाती थी तो वसूल करनेवालोंकी जेबोंमें चली जाती थी। राजपूत, सिख, जाट, मरहठे जिसे देखिए, विद्रोह और नये राज्य स्थापित करने को तैयार। सेनाको न समयपर वेतन मिलता था, न उसके जीवनकी कोई निश्चितता थी। इसलिए सैनिकोंकी दृढ़ता और निष्ठा सदा डाँवाडोल रहती थी। हर आदमी अपनी बनानेके फेरमें था; साम्राज्य वा देशकी भलाईका भाव लोगोंमें बहुत ही कम रह गया था।

डाँवाडोल उत्तर भारत

दिल्लीकी शक्ति नाम मात्रको रह गयी थी। सबकी लोलुप आँखें उसी की ओर जाती थीं। पतनमें भी दिल्लीमें गहरा आकर्षण था। केन्द्रीय-मुगल-साम्राज्यका चिराग़ टिमटिमा रहा था। मरहठे, रुहेले, जाट, पठान, सिख सब अपनी दौड़में थे। मज़ा यह कि दिल्लीश्वरको इन उठती आँधियोंसे कोई ख़ास सरोकार न था, वह जब तक गुज़रे चैनसे गुज़रने दो, सिद्धान्तका अनुयायी था। मोहम्मदशाह दिल्लीके तख़्त पर था। उसे अपने ऐशोइशरतमें दीन दुनियाकी ख़बर न थी।

दिल्ली, निर्वीर्य, निःशक्त दिल्ली, अफ़वाहकी तरह विदेशोंमें धन-दौलत के लिए मशहूर दिल्लीकी तरफ़ इसी देशके फिरक़ों, क्षत्रपों तथा छोटे-मोटे राजा-नवाबोंकी आँख नहीं लगी थी, विदेशों तक भी उसकी अव्यवस्थाकी खबर पहुँच चुकी थी। इसलिए दुस्साहसी विदेशी सरदारोंके लिए यह अच्छा अवसर था। फलतः नादिरशाहने हमला किया; पंजाबको सर करता दिल्ली पहुँचा और उसे लूटकर नंगी-बुच्ची कर दिया। ५८ दिनतक यहाँ रहा, जिस तरह लूटते बना लूटा और हज़ारों ऊँटों पर हीरे ज़वाहिर, सोने-चाँदी तथा लूटका और सामान लादकर ईरान लौट गया। फ़्रेज़र नामक इतिहासकारने अपने नादिरशाह ग्रंथमें इस लूटकाअन्दाज़ सत्तर करोड़ किया है पर मैं समझता हूँ वह इससे कहीं ज्यादा माल ले गया; फिर उसके सरदारों, सैनिकोंके हाथ जो कुछ लगा होगा, उसकी तो बात ही न पूछिए। पीढ़ियोंकी दौलत, विशेषतः जवाहरात उसके हाथ लगे। अन्दाज़ है कि सिर्फ जवाहरात पचास करोड़से कमके नहीं रहे होंगे। इसी लूटमें वह मशहूर तख़्तेताऊस (मयूर सिंहासन) तथा कोहेनूर भी था। तीन सौ हाथी, दस हज़ार घोड़े, दस हज़ार ऊँट अलग थे। हज़ारों आदमी नादिरकी तलवारके घाट लगे। 'मीर'के ऊपर कृपा रखने और उन्हें संरक्षण प्रदान करनेवाले नवाब समसामउद्दौला भी इस हंगामेमें १५ फरवरी १७३९ ई० को क़त्ल कर दिये गये।

लुटेरोंका आकर्षण-केन्द्र दिल्ली

इस क़त्लेआमसे दिल्लीमें त्राहि-त्राहि मची हुई थी। वह एक महा-श्मशान बनी हुई थी। ११ मार्चको जो क़त्लेआम हुआ उसमें चाँदनी-चौक, दरीबा और पहाड़गंजकी बस्तियाँ बिल्कुल साफ़ और वीरान हो गयीं। स्वयं ईरानी इतिहासकारोंका अन्दाज़ है कि इस अवसर पर तीस हज़ारसे कम आदमी कृपाणकी भेंट न हुए होंगे। जो मर गये वे फिर भी अच्छे रहे। जो बचे वे अपने मरे हुए गुरुजनों एवं प्रियजनोंके दुःखपर रोने भी न पाये,

नादिरशाही लूट

उनसे गहरा दण्ड और कर वसूल किया गया। अमीर-उमराओं पर बड़ी बेरहमी की गयी। किसीको धूपमें खड़ा किया गया; किसीके कान काट लिये गये। इस बेरहमी और अपमानके डरसे कितनी औरतोंने आत्म-हत्या कर ली; कितने आदमी कुओंमें डूब मरे। वज़ीर क़मरुद्दीनखाँको धूपमें खड़ा कराके एक करोड़ से ज़्यादाके जवाहरात प्राप्त किये गये। उसके दीवान मजलिसरायका खुले दरबारमें कान काट लिया गया। उसे अपना ऐसा अपमान लगा कि उसने १८ अप्रैल १७३९ ई० को आत्महत्या करली। आदमियोंको ही नहीं, औरतोंको भी नहीं बख्शा गया। उनकी बुरीं तरह बेइज्ज़ती की गयी, उनकी आबरू छीन ली गयी। समसाम उद्दौलाके भाई मुज़फ़्फ़रखाँकी पत्नियों और बेटियोंकी वह बेइज्ज़ती हुई कि उनके शत्रु भी धिक्कारने लगे।

नादिरशाहकी इस लूट और हमलेके बाद दिल्ली बेपानी हो गयी। उसकी जड़ें उखड़ गयीं; आर्थिक दुरवस्थाकी सीमा हो गयी और दिल्लीका रहा-सहा ऐश्वर्य भी समाप्त हो गया। नादिर ५ मई १७३९ ई० को दिल्लीसे विदा हुआ। दिल्लीको कमज़ोर पाकर उसने अफ़ग़ानिस्तान और सिंध नदीके पारके इलाक़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया। फिर पंजाब भी मुग़लोंके हाथसे निकल गया। पंजाबके हाथमें आजानेके कारण नादिरशाहके बाद उसका स्थान लेने वाले अहमदशाह अब्दालीके लिए दिल्ली पर आक्रमण करना और उसे लूटना सरल हो गया। उधर सिख उठे; दक्षिण तथा मध्यभारतमें मरहठे अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे थे। कुछ दिनोंमें पूर्वमें अवध तथा दक्षिणमें हैदराबाद स्वतन्त्र हो गये।

मधुपात्रोंमें डूबा मोहम्मदशाह

जैसा मैं कह चुका हूँ, ऐसे भयानक समयमें मोहम्मदशाह जैसा दुर्बलमना व्यक्ति दिल्लीके सिंहासन पर था। आश्चर्य तो यह है कि इसका बचपन ७ सालके लम्बे अरसे तक क़ैदकी मुसीबतोंमें बीता था तब भी इसने दुनियासे कुछ न सीखा। सत्रह वर्षकी आयमें सिंहासन पर

बैठा। कदाचित् उसने सोचा कि दिल्लीमें बादशाह रोज़ बनते-बिगड़ते रहते हैं, जो ज़रा भी स्वतन्त्र वृत्ति ग्रहण करता है सरदार और वज़ीर उसे दबा देते हैं इसलिए अच्छा यही है कि शासनका काम उन्हीं पर छोड़ कर अपने दुःखोंको मधुयामिनी और मधुपात्रोंमें डुबा दिया जाय। इसने २८ वर्षके लम्बे समय तक राज्य किया किन्तु कदाचित् ही एक-दो बार बाहर निकला होगा। सारा समय राग-रंगमें कटता था। वह शिथिल, सुस्त, विलासी और आरामतलब था। धीरे-धीरे शरीर दुर्बल पड़ गया। तब इसने फकीरों और जोगियोंकी ओर मुँह फेरा। यहाँ तक कि दरबारमें दरवेशोंका प्रभाव बहुत बढ़ गया।

ईरानी-तूरानी संघर्ष

चूँकि सरदारों और अमीरोंके हाथमें शासन चला गया और कोई देखने वाला न था, इसलिए वे मनमानी करते थे। उनमें भी स्वार्थकी भावना इतनी प्रबल हुई कि एक-दूसरेको फूटी आँख देख नहीं सकते थे। ये सरदार प्रधानतः दो दलोंमें विभाजित थे। एकका नेता था—क़मरउद्दीन एतमादउद्दौला द्वितीय जो १७२४ ई०में निज़ामुल्मुल्कके बाद वज़ीर नियुक्त हुआ। इसमें प्रमुखतः तूरानी थे। दूसरा दल ईरानियोंका था जिसका नेता अबुल मन्सूर ख़ाँ सफ़दरजंग था। इसे १७३८में अवधकी सूबेदारी मिली। सच पूछिए तो मुग़ल साम्राज्यके अन्तिम युगका इतिहास इन्हीं दो गुटोंके विरोध और संघर्षका इतिहास है। यह संघर्ष केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं था, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें फैल गया था; यहाँ तक कि साहित्य भी इससे बच न सका। 'आरज़ू' और 'हज़ी' तथा क़तील और ग़ालिबके संघर्षमें इसीका प्रतिबिम्ब है। कभी एक दलके हाथमें शक्ति आती, कभी दूसरे के। १७३२ से १७३९ तक समसामउद्दौला और मुज़फ़्फ़र ख़ाँ की चली पर जब नादिरआहके आक्रमणमें ये मारे गये तो अमीरख़ाँ प्रथम के लड़के मीरमीरान अमीरख़ाँ अम्दतुलमुल्क द्वितीयकी चमकी। यह

बड़ा प्रत्युत्पन्नमति था। स्वयं अच्छा कवि था, फिर उसकी मृदुभाषिता तथा विद्या एवं कलाका संरक्षण प्रसिद्ध है।

इसके द्वारा मोहम्मद इसहाक़खाँ प्रथमकी पहुँच बादशाह तक हुई। चूँकि दोनों ईरानी शिया थे इसलिए परस्पर बड़ी बनती थी। धीरे-धीरे इसहाकखाँका बादशाह मोहम्मदशाह पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उसे एक क्षणके लिए अलग न करता था। जब बादशाह नादिरशाहके विरुद्ध लड़ाईमें हार कर भागा तो इसहाकखाँ भी उसी हाथी पर सवार था और उसे बराबर हिम्मत दिलाता रहा। नादिरशाह भी उसकी तारीफ़ करता था। अतः उसकी ज़ोरोंसे उन्नति हुई और ऊँचे पद पर पहुँचा। १८ एप्रिल, १७४५ को उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका पुत्र मिर्ज़ा मोहम्मद (नजमुद्दौला इसहाक़ द्वितीय) दीवान खालसा नियुक्त हुआ और कुछ दिनों तक, पिताकी भाँति ही, शाही दरबारमें उसकी प्रतिष्ठा रही। बादशाहके आदेशसे इसहाक़खाँ प्रथमकी पुत्रीका विवाह सफ़दरजंगके पुत्र शुजाउद्दौलासे हो गया। १७४५ ई० में इन्हीं से आसफ़उद्दौलाका जन्म हुआ। यह महिला इतिहासमें नवाब बहू बेगमके नामसे प्रसिद्ध हुई। बादमें इन्हीं पर वारेन हेस्टिंग्सने अत्याचार किया था।

मीरने 'ज़िक्रे मीर' में एक और अमीर असदयारखाँका भी ज़िक्र किया है जिसकी मददसे वह नवाब बहादुर जावेदखाँके यहाँ नियुक्त हुए। यह ३५ वर्षकी उम्रमें अवधका सूबेदार बनाया गया था। धीरे-धीरे उसने एक अत्यन्त शक्तिमान सेनाका संघटन कर लिया। शियोंका तो नेता ही बन गया। इस ज़मानेमें लाहौरसे आग भड़की। १७२६ ई० में ज़िक्रयार खाँ पंजाबका गवर्नर नियुक्त हुआ। उसका विवाह वज़ीर एतमादुद्दौला प्रथमकी लड़कीसे हुआ था और उसके ज्येष्ठ पुत्रका, उसके लड़के एतमादुद्दौला द्वितीयकी बेटीसे। इस प्रकार दरबारमें उसकी बड़ी पहुँच थी। जनतामें भी उसको पर्याप्त सम्मान मिला था। यहाँ तक कि पहली जुलाई १७४५ को जब उसकी मृत्यु हुई तो लाहौरकी जनता उसके

शोकमें मग्न हो गयी। लोग ढाढ़ें मारकर रोते थे; तीन दिनतक नगर में चूल्हा और दिया नहीं जला। लाहौरमें एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न था जो उसके जनाज़ेके साथ न गया हो।

पर दुनियाकी विचित्रता तो देखिए कि उसके मरनेके बाद उसके दोनों पुत्रों, यहियाखाँ और शाहनवाज़खाँमें ही युद्ध हो गया। शाहनवाज़ ने यहियाखाँ सूबेदार पंजाबके पूरे माल-असबाव पर कब्जा कर लिया। जब पंजाबकी हालत इस प्रकार बिगड़ रही थी, नादिरशाह कत्ल कर दिया गया और अहमदशाह अब्दाली उसके स्थानपर गद्दीपर बैठा।

अब्दालीको निमंत्रण

जून ४७ में वह हिन्दुस्थानपर आक्रमण करनेकी योजना बनाने लगा। चूँकि शाहनवाज़खाँको भलीभाँति मालूम था कि दिल्लीश्वर मोहम्मदशाह उसे पंजाबका ग़वर्नर न बनायेगा क्योंकि अधिकार बड़े भाईका है इसलिए उसने अहमदशाह अब्दालीको भारतपर अधिकार करनेके लिए निमन्त्रण दिया। उसे खुश करनेके लिए उसने 'शियाधर्म' भी अंगीकार कर लिया और अपनी मुहरपर १२ इमामोंके नाम खुदवाये। उसे आशा थी कि इन बातोंसे अहमदशाह खुश हो जायगा और ईरानी सिपाही उसकी मदद करेंगे।

८ जनवरी १७४८ ई० को अहमदशाह अब्दाली लाहौरके पास पहुँच गया। उसने अपने गुरु बाबा साबिरको शहरमें भेजा। उसकी माँ लाहौर में थी और वह उससे मिलना चाहता था। किन्तु जन-साधारणमें यह प्रसिद्ध था कि बाबा साबिर जादूगर है। शाहनवाज़ने उसे गिर-फ़्तार करवा लिया पर बिना उसकी आज्ञाके ही उसके किसी छोटे अधि-कारीने दूसरे दिन उसे क़त्ल कर दिया। अब्दाली क्रुद्ध हो गया और बदला लेनेका हुक्म दिया। शाहनवाज़ रातों-रात शहरसे निकल भागा। उसकी देखा-देखी, और अफ़सर भी निकल गये। उनके भगनेसे क़ैदमें पड़े ज़िक्रयारखाँके निष्ठावान् सेवक छूट गये। उन्होंने अब्दालीसे कहा ३०

लाख रुपये ले लीजिए और शहरको चौपट न कीजिए। वह मान गया, फिर भी बहुत-सा माल उसके हाथ लगा। लाहौर पर अधिकार हो जाने से उसकी ताक़त दुगुनी हो गयी और वह विश्वासपूर्वक १९ फ़रवरीको दिल्लीकी ओर रवाना हुआ।

अब्दाली दिल्लीके निकट आता जारहा था पर मोहम्मदशाहके विलासी दरबारी कुछ निश्चय नहीं कर पाते थे। ज़्यादातर लोग मोहम्मदशाहसे यही कहते थे कि हुजूर लड़ाईमें शरीक न हों, अब्दाली ऐसा कहाँका रुस्तम है, बादशाहका कोई भी गुलाम जाकर उसे क़ैद कर लायेगा (देखिए मज्मुल तवारीख़)। जो कुछ समझदार थे वे कहते थे कि बादशाह पानी-पत या करनाल तक ज़रूर जायँ, इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। मोहम्मद-शाह भी इसे समझता था पर उसमें साहस न था।

अन्तमें तय हुआ कि वज़ीर क़मरुद्दीनखाँ सेनाकी कमान हाथमें लें और ईश्वरीसिंह महाराज जयपुर तथा नासिरखाँ उनकी मददके लिए जायँ। ८ जनवरीको प्रयाणका निश्चय हुआ था किन्तु ४–५ दिन तोपख़ाने की प्रतीक्षामें ही लग गये। उधर ईश्वरीसिंह भी बादशाहसे ख़ुश न था क्योंकि उसने रणथंभौरका क़िला माँगा था जिसे देनेसे बादशाहने इन्कार कर दिया था, इसलिए वह भी टालमटोल करता रहा। यह फ़ौज दिल्ली से १६ मील, नरेला तक, पहुँची होगी कि समाचार मिला अब्दालीने लाहौर ले लिया। इस समाचारसे मुगल सरदारोंके होश-हवास जाते रहे। ख़ैर, उनके कहनेसे शाहज़ादा अहमदशाहको उनके साथ भेजा गया। २५ जनवरीको ये लोग सरहिन्द पहुँचे पर वहाँके किले पर भी अफ़ग़ानोंने सरलतापूर्वक अधिकार कर लिया। क़िलेदार मार दिये गये; स्त्रियाँ क़ैद कर ली गयीं। अब दिल्लीका रास्ता साफ़ हो गया। दिल्लीवालोंने नादिर-शाहके अत्याचारोंकी याद करके अपनी स्त्रियोंको वेश बदल कर शहरके बाहर भेज दिया।

११ मार्चको एक गोलेसे घायल होकर वज़ीर क़मरुद्दीन मर गया।

उसके पुत्र मुईनुल्मुल्कने सेनाको सँभाला और बड़ी बहादुरी दिखाई पर ईश्वरीसिंह अपने नाईकी सलाहसे भाग निकला। इस समय सफ़दरजंगने बड़े साहससे काम लिया। इसी समय, संयोग-वश अब्दालीके गोला-बारूदमें आग लग गयी जिसमें एक हज़ार अफ़गान सिपाही जलकर राख हो गये। इस घटनासे अब्दालियोंके पाँव उखड़ गये। ये लोग लौट कर पानीपतके पास पहुँचे थे कि मोहम्मनशाहके देहावसानका समाचार मिला। इस प्रकार अहमदशाह शाहज़ादाको विजय एवं सिंहासन एक ही साथ प्राप्त हुआ। मीरने इन बातोंका वर्णन 'ज़िक्रेमीर'में किया है।

अब अहमदशाह गद्दी पर बैठा। इस समय उसकी उम्र २२ सालकी थी पर उसे न शासनका ज्ञान था, न सैन्य-संचालनका। उसका समय बेगमोंके साथ गुज़रा था। उसे अच्छी शिक्षा भी न मिली थी; बापने भी ज़्यादा ध्यान न दिया था। बड़ी कठिनाईसे अबतककी ज़िन्दगी बीती थी। अब एकदम बन्धन हट गये; कोई रोकटोक करनेवाला न रहा। परिणाम यह हुआ कि बुरी संगतमें पड़ गया। साथी जान-बूझकर इसे ग़लत रास्ते पर डालते थे। विशेषत: वह जावेदखाँ ख़ाजासराके हाथ की कठपुतली था। शराब और औरतके सिवा उसे किसी बातसे मतलब न था। उसके साथ कोई मर्द तो दिखाई ही न देता था, सदा परियोंका क़ाफला चारों ओर घेरे रहता था।

अहमदशाहका शासन

जो इसे सूझती करता था। १७५३ ई० की बात है कि एक दिन अपने ६ सालके बच्चे महमूदशाहको खेमेमें मसनद पर बिठा कर दरबार लगवाया; सब सरदार उस बच्चेके सामने खड़े हुए; नज़रें दी गयीं। नवम्बर ५३ में इसी बच्चेको पंजाबका गवर्नर नियुक्त किया। और मज़ेकी बात यह कि उसका नायब एक सालका दूध-पीता बच्चा नियुक्त हुआ। इसी तरह कश्मीरकी सूबेदारी १ बरसके एक बच्चेको दी। यह सब खेल उस समय हो रहा था जब अब्दाली पंजाब और कश्मीरका दरवाज़ा खटखटा रहा था।

वह बड़ा डरपोक भी था। सिकन्दराबादमें उसे मराठोंके विद्रोहका समाचार मिला; बस वह यों सर पर पैर रखकर भागा कि बेगमोंको भी साथ न लिया। वे सब क़ैद हुईं। अपने शासनके अन्तिम २-३ सालोंमें उसने प्रबन्धकी ओर कुछ ध्यान दिया पर अनुभवहीनताके कारण उसे कोई सफलता न मिली। इसके दरबारमें ख़ाजासराओं और औरतोंका राज था। इसके पिता मोहम्मदकी बेगमोंमें एक नर्त्तकी ऊधमबाई भी थी। अहमदशाह उसके आदेश बिना कोई काम न करता था। इस औरत-का चरित्र गिरा हुआ था। एक ख़ाजासरा जावेदख़ाँसे उसका ऐसा लगाव था कि सब लोग थू-थू करते थे। वह रातको भी अन्तःपुरमें रहने लगा था। शाही दरबान उससे बड़े क्रुद्ध थे, इसलिए कि उन्हें महीनोंसे वेतन न मिला था। एक दिन वे सब गधा और एक-एक कुतिया पकड़ लाये। जो अमीर आता उससे कहते (गधेको दिखाकर) यह नवाब बहादुर हैं, और यह (कुतियाको दिखाकर) हज़रत क़ुदसिया हैं, पहले इनको सलाम कीजिए, फिर आगे बढ़िए।

जब बादशाहका यह हाल हो, राज्य क्या चलता ? आर्थिक स्थिति इतनी गिर गयी थी कि सिपाहियोंको महीनोंसे वेतन नहीं मिला था। वे रोज़ प्रदर्शन करते थे पर उनके लिए दो लाख रुपये भी एकत्र न हो सके। उधर ऊधमबाईने अपनी सालगिरहका समारोह मनाया जिसमें दो करोड़ खर्च किये गये।

अहमदशाहने सफ़दरजंगको वज़ीर बनाना चाहा किन्तु निज़ामुलमुल्क आसफ़जाहके भयसे तदनुकूल घोषणा न की जा सकी। वह काँटा भी शीघ्र ही दूर हो गया। २१ मई (१७४८) को बुढ़ानपुरमें आसफ़जाहकी मृत्यु हो गयी। सफ़दरजंगको मंत्रित्वके सम्पूर्ण अधिकार मिल गये।

उधर राजपूतानेमें मारवाड़के राजा अभयसिंह और नागौरके बख़्तसिंह में चल रही थी। १७४९ से १७५१ तक यह झगड़ा चलता रहा। दिल्ली

बख़्तसिंहके साथ थी। अन्तमें उसीकी विजय हुई और उसके अधिकारमें जोधपुर एवं अजमेर दोनों आ गये।

दिल्ली बख़्तसिंहका साथ इसलिए दे रही थी कि उसके द्वारा राजपूतानेसे शेष कर मिलनेकी संभावना थी पर उसने कुछ नहीं दिया। दिल्लीने सैनिक अभियान भी किया पर कोई विशेष सफलता न हुई। १७५० में मल्हार राव होल्करने जयपुर पर हमला किया। उस समय ईश्वरीसिंह राजा था। उसमें होल्करका सामना करनेका साहस न था। उसने विषपान करके आत्महत्या करली। सब तरहकी कोशिशें हुई पर न मराठे, न दिल्लीवाले राजपूतानासे विशेष धन पा सके।

इन लड़ाइयोंमें मीर भी रिआयतखाँके साथ थे। उन्होंने इन लड़ाइयों का आँखों-देखा हाल लिखा है।

बहरहाल, विवश होकर मीरबख़्शी दिल्ली वापस आगया। इस अभियानसे कुछ मिलना तो दूर रहा, उलटे क़र्ज़ बढ़ गया। राजस्थानके अभियानमें ६० लाख ख़र्च हुए और मुश्किलसे पाँच लाख हाथ आया। फ़ौजमें १८ हज़ार सिपाही थे जिन्हें साल भरसे एक पैसा वेतन न मिला था। मीरबख़्शी सादातखाँने रोज़के तक़ाजोंसे ऊबकर दरबारका आना-जाना छोड़ दिया। पूछने पर कहता, कोई बादशाह ही नहीं, किसके पास जाऊँ? उस खाजासराके पास जाकर इज्ज़त न गँवाऊँगा।

ख़ाजासरा जावेदखाँने सुना तो आग-बबूला हो गया। झूठी-सच्ची गढ़कर बादशाहसे हुक्म निकलवा दिया कि सादातखाँको मीरबख़्शीके पदसे हटाया जाता है। उसके घर पर पहरा बैठा दिया और तोपें लगवा दीं तथा ग़ाज़ीउद्दीनखाँको मीरबख़्शी बनवाया और इन्तज़ामउद्दौलाको अजमेर का सूबेदार। इस तरह तूरानी पार्टीका ज़ोर बढ़ा दिया। सफ़दरजंग और जावेदख़ाँके बीच राजनीतिकी बिसात पर शतरंजकी चालें चली जा रही थीं। इस समय मीर रिआयतख़ाँकी नौकरी छोड़कर जावेदख़ाँकी नौकरीमें आ गये थे।

१५ सितम्बर १७४८ को रुहेला सरदार अली मोहम्मदका देहावसान हुआ। अफ़वाह थी कि उसने बड़ी दौलत छोड़ी है। सफ़दरजंगने क़ायमख़ाँ बंगशको रुपयेका लोभ देकर रुहेलखण्डका फ़ौजदार बना दिया। फलतः क़ायमख़ाँ बंगश तथा हाफ़िज़ अहमदख़ाँ रुहेलामें लड़ाई हुई और क़ायमख़ाँ मारा गया। पर आश्चर्य सफ़दरजंगको उसकी मृत्यु पर दुःख नहीं हुआ, उलटे उसने उसकी सारी जायदाद पर अधिकार करना चाहा किन्तु क़ायमकी माँ बीबी साहबाने अपने सौतेले बेटे अहमद बंगशसे मदद माँगी और कहा कि 'अगर ख़ुदा तुम्हें औरत पैदा करता तो मुझे सब्र आ जाता। तुम मर्द हो, बड़ा अफसोस है, मुझ पर यह वक़्त पड़े और तुम बैठे देखते रहो।' यही नहीं, उसने अफ़ग़ान किसानोंके पास अपनी चादर भेजी और अपनी बेकसी बताकर फ़रयाद की। इसका नतीजा यह हुआ कि सारे फर्रुख़ाबादमें आग लग गयी। सफ़दरजंगके आदमियोंने वहाँ बड़े अत्याचार किये थे। इससे सारे अफ़ग़ान किसान भड़क उठे और सफ़दरजंग का नायब नवलराय उनके हाथों मारा गया। सफ़दरजंग स्वयं सेना लेकर आया पर वह भी घायल होकर और हारकर भाग गया। वज़ीरकी हार कोई मामूली हार नहीं थी। इसका बड़ा असर पड़ा।

युगकी मकड़ीके जाले

बादमें सफ़दरजंगने मल्हारराव होलकर और सूरजमल जाटसे मिलकर अफग़ानों पर आक्रमण किया और उनको बुरी तरह पराजित किया। मीरने लिखा है :—"वज़ीर बारे दोगर लश्कर कशीदद अफ़ग़ानाँरा मग़लूब साख़्ता तसल्लुत तमाम दर हुजूरआमद।"

१७५२ ई० में अब्दालीने फिर हमला किया। इसमें रुहेलोंने अब्दाली का साथ दिया और रुहेलोंके खोये अधिकार पुनः हाथ आये। उधर सफ़दरजंगने अब्दालीसे बचनेके लिए मराठोंको ५० लाख रुपये और पेशवाको आगरा एवं अजमेरकी सूबेदारी देनेके प्रलोभन पर मददके लिए बुलाया।

पर सफ़दरजंगके पहुँचनेमें देर हुई और बादशाहने भयवश पंजाब और सिंधके सूबे अब्दालीको सुपुर्द कर दिये। जब २५ एप्रिलको सफ़दरजंग ५० हज़ार मराठा सिपाहियोंके साथ दिल्लीके समीप पहुँचा तो जावेदख़ाँने उसे बताया कि अब्दालीसे सुलह हो गयी है और अब इन मराठा सिपाहियों की आवश्यकता नहीं है। सफ़दरजंग बड़ा क्रुद्ध हुआ। सबसे बड़ा सवाल यह था कि मराठोंको जो पचास लाख देनेका वादा किया गया था वह कैसे पूरा किया जाय ? रुपया न मिलनेपर मराठे दिल्लीके पहले ही रुक गये और लूट-मार शुरू कर दी। हज़ारों गाँव नष्ट हो गये। दिल्ली शहरके निवासी यह सब समाचार सुनकर भयसे काँपने लगे क्योंकि न जाने कब मराठे आकर लूटने लगें। सफ़दरजंग चुप था। जावेदखाँने स्वयं मल्हारराव होलकरसे मिलकर बातचीत शुरू की। तय हुआ कि उन्हें कुछ लाख रुपये दे दिये जायँ और वे ४ मईको चले जायँ। इस तरह ९ दिनके त्रासके पश्चात् फिर दिल्लीने चैनकी साँस ली।

जावेदख़ाँ और सफ़दरजंगके सम्बन्ध बिगड़ते ही गये। मौक़ा पाकर अगस्त १७५२में सफ़दरजंगने जावेदख़ाँको क़त्ल करा दिया। उसका सिर वज़ीरके महलपर लटका दिया गया और धड़ यमुनाकी रेतीपर फेंक दिया गया।

किन्तु जावेदख़ाँके क़त्लसे सफ़दरजंगका कोई लाभ नहीं हुआ। उसके सम्बन्ध बादशाह और ऊधमबाईसे और बिगड़ गये। जावेदख़ाँमें बहुत-सी बुराइयाँ थीं; सभी उसे बुरा कहते थे पर उसे पद और जागीरकी लालसा नहीं थी। उसकी मृत्युके बाद सब अधिकार इन्तज़ामउद्दौला और इयादुल्मुल्कके हाथमें आ गये जो बड़े वंशके थे पर जिनकी पद एवं धन-सम्बन्धी लालसाकी सीमा नहीं थी।★

इन्तज़ामउद्दौला मोहम्मदशाहके मंत्री क़मरुद्दीनख़ाँका पुत्र था और

★ सर यदुनाथ सरकार।

अपनी काहिली एवं कायरताके लिए प्रसिद्ध था। वह मार्च १७५३ ई०से मई १७५४ ई० तक मंत्री रहा पर शासनमें स्थिरता एवं सुधार लानेका कोई प्रयत्न नहीं किया। इयादुल्मुल्क आसफ़जाहका पोता था। उसका वास्तविक नाम शहाबुद्दीन था किन्तु धीरे-धीरे इमादुल्मुल्क, फीरोज़जंग मीर बख़्शी और निज़ामुल्मुल्क आसफजाहकी उपाधियोंसे विभूषित हुआ, यहाँ तक कि जून १७५४ ई० में प्रधानमंत्री भी हो गया। यह वीर एवं साहसी था तथा काव्यका प्रेमी किन्तु धन-सम्पत्तिके लोभने इसके इन गुणोंपर परदा डाल दिया और निर्दयता तथा अत्याचारकी कहानी पीछे छोड़ गया।

जावेदख़ाँकी मृत्युके बाद 'मीर' बेकार हो गये। पर सौभाग्य-वश सफ़दरजंगके दीवान महानारायणने आदरपूर्वक इन्हें बुलाया और अपने पास रख लिया। यहाँ 'मीर' की ख़ूब निभी। महानारायणके दीवानख़ानेके दारोग़ा मीर नजमुद्दीन अली 'सलाम'से इनकी ख़ूब पटती थी। यह भी अकबराबाद (आगरा) के ही रहनेवाले थे। दोनों साथ बैठते, शेर कहते, दिल्लगीकी बातें करते। मीरने स्वयं उनकी प्रशंसा की है :—

"यह आदमीयत, हुर्मत[1], अज़मत[2] सब ही औसाफ़[3]के जामअ[4] हैं और मुझमें और इनमें बड़ा इत्तिहाद[5] है।"

इस समय सफ़दरजंग निष्कण्टक था। वह पूरे अर्थमें प्रधान मन्त्री था। सात महीने तक बिल्कुल शान्ति रही। यदि वह दूरदर्शी होता तो इस शान्तिके कालको शासन एवं सेनाके सुप्रबन्धमें लगाता पर लोभी आदमी दूरकी नहीं देखता। फलतः इसने कुछ नहीं किया बल्कि अपने अभिमानसे बादशाह तथा सरदारोंको नाराज कर दिया।

उधर सरकारी ओहदेदारों, चोबदारों और तोपखानेके सिपाहियोंको महीनोंसे वेतन नहीं मिला था। सैनिकोंका विद्रोह रोज़की बात हो गयी। वे लोग सड़कोंपर शोर मचाते, अफसरोंका रास्ता रोककर खड़े हो जाते

१. मर्यादा। २. महत्ता। ३. गुणों। ४. समष्टि। ५. ऐक्य।

और महलके दरवाज़ोंको बन्द कर देते थे। इससे कई-कई दिन तक क़िले-वालोंको न पानी मिलता, न खाना। उधर मराठे सदा दिल्लीके आस-पास चक्कर काटा करते थे और अवसर देखकर लूट लेते थे। जाटोंका भी यही हाल था—यहाँ तक कि जाटगर्दी शब्द ही उनकी ज़बर्दस्तीके लिए चल गया।

इस समय सम्राट्की सेना दुर्बल एवं भूखकी मारी थी किन्तु स्वयं सफ़दरजंगके पास काफ़ी बड़ी सेना थी। इसमें अधिकांश मध्य एशियाके तुर्क सिपाही थे जो 'कुलाहपोश' या 'मुग़लिया' कहलाते थे। इन्हीं दिनों मीर बख़्शी गाज़ीउद्दीन फ़ीरोज़जंगकी मृत्युका समाचार आया। १२ दिसम्बर ५२ को सफ़दरजंगने इस पदपर शहाबउद्दीन इमादुल्मुल्कको नियुक्त करवा दिया। इस समय वह केवल १५ सालका लड़का था और फ़ौजका उसे ज़रा भी अनुभव न था।

सफ़दरजंगने सोचा, यों तूरानी पार्टीका एक आदमी तोड़ कर अपने में मिला लूंगा, वह आजन्म कृतज्ञता-बंधनमें बँधा रहेगा। यही उसकी

आस्तीनका साँप

ग़लती थी। वह भूल गया कि उस ज़मानेमें कृतज्ञता की परवा किसीको न थी। फलतः इमादुल्मुल्क आस्तीनका साँप निकला। फिर सफ़दरज़ंगके खर्च दिन-दिन बढ़ते जा रहे थे। जब बादशाह अपने पहरेदारों और सैनिकोंको वेतन नहीं दे पाते थे तब सफ़दरजंगने अपने पुत्र शुजाउद्दौलाकी शादीमें पैंतालीस लाख रुपये खर्च किये। इन कारणोंसे तथा जावेदखांके कत्लसे बादशाह बहुत दुखी रहते थे। जावेदखांके क़त्लके बाद ऊधमबाई (साहिबउज्ज़मानी) को तो इतना दुःख हुआ कि उसने अपने सब रत्न-आभूषण उतार फेंके और विधवाओंकी तरह सफेद कपड़े पहिन लिये। सफ़दरजंगको भय हुआ कि कहीं वह बदला न ले इसलिए उसने अन्तःपुरपर अपने आदमियोंका पहरा रखा और अन्तःपुर में भी अपने विश्वासकी आठ स्त्रियोंको रखवा दिया जो एक-एक बातपर

ध्यान रखती थीं और एक-एक चिट्ठी-पत्री पढ़ती थीं। ऊधमबाईको यह बात और बुरी लगी। वह बिगड़ गयी और उसने तुरन्त इन जासूसोंको बाहर किया। इसपर सफ़दरजंगने नाराज़ होकर दरबारका आना-जाना छोड़ दिया। चूँकि शक्ति उसके हाथमें थी, बादशाह और ऊधमबाई दोनों को इस रूठे हुए वज़ीरको मनाने उसके घर जाना पड़ा। बादशाहने सम्पूर्ण अधिकार सफ़दरजंगको देनेका वादा किया और यह प्रतिज्ञा भी की कि आगे कोई उपाधि या पद किसीको बिना उसकी इच्छाके नहीं दिया जायगा।

अब क्या था सफ़दरजंगकी तूती बोलने लगी। उसने क़िलेमें आने-जानेवालोंपर बंधन लगा दिये। इससे सरदारोंने क़िलेमें जाना छोड़ दिया। १४ सितम्बर १७५३ को शुक्र (जुम्मे) की नमाज़को बादशाह गये, तब सिर्फ़ एक आदमी उनके साथ था। १६–१७ सितम्बरको दरबार हुआ तो उसमें भी सफ़दरजंगके चन्द आदमियोंके सिवा कोई शामिल नहीं हुआ। इस समय बादशाहकी स्थिति एक क़ैदी-जैसी थी; पैसा पास नहीं; राजकीय सेवकोंको दो सालसे वेतन नहीं मिला था। जब उनका तक़ाज़ा बहुत बढ़ा तो राजकोष केवल ४ मासका वेतन चुका सका। बात यह थी कि सफ़दरजंग जो कुछ वसूल करता ख़ुद रख लेता, सरकारी ख़जानेमें जमा ही नहीं करता था।

ऊधमबाई यह सब देखती थी और कुढ़-कुढ़कर रह जाती थी। अन्तमें हारकर मार्च १७५३में उसने षड्यन्त्र किया। क़िलेदार अबूतराबख़ाँ

जाटोंकी लूट

(जो सफ़दरजंगका आदमी था) को निकाल बाहर किया। अब दोनोंमें चलने लगी। यह झगड़ा ७ नवम्बर १७५३ तक चलता रहा। बादशाहने शुजाउद्दौलाको निकालकर समसामउद्दौलाके बेटे (समसाम द्वितीय) को रखा और अबूतराबख़ाँकी जगह अहमदअंगाको क़िलेदार बनाया। सफ़दरजंगने सूरजमल जाटको दिल्लीपर हमला करनेके लिए उकसाया।

जाटोंने नगरप्राचीर तक ख़ूब लूट-मार की और लाखों रुपये एकत्र किये। मुहल्लेके मुहल्ले तबाह होगये। पुरानी दिल्लीके लोगोंका यह हाल था कि लोग जानके डरसे इस मुहल्लेसे उस मुहल्ले, उस मुहल्लेसे इस मुहल्ले भागते फिरते थे। विवश होकर बादशाहने सफ़दरजंगको पदसे हटा दिया और उसकी जगह एतमादउद्दौलाको मंत्री बनाया तथा इमादुल्मुल्क मीर बख़्शीको निज़ाम एवं आसफ़जाहकी उपाधियाँ प्रदान कीं। सफ़दरजंगने विद्रोह किया। उसने बादशाहके अधिकार एवं आदेशको माननेसे इन्कार कर दिया। उसने शुजाउद्दौला द्वारा ख़रीदे हुए एक युवक ख़्वाजासराको अकबर आदिलशाहकी उपाधिके साथ सिंहासनपर बिठाया, स्वयं उसका वज़ीर बना। इमादुल्मुल्कने बड़ी चालाकीके साथ सफ़दरजंगके तुर्क सिपाहियोंको तोड़ लिया और इस तरह २३ हज़ारकी सेना बना ली। उसने सफ़दरजंगके साथी ईरानियोंके मकानोंको लूटनेका हुक्म दे दिया। हज़ारों घर लुट गये। २९ सितम्बरको खुलकर लड़ाई हुई। बादशाह एवं इमादुल्मुल्ककी सहायताके लिए नजीबख़ाँ रुहेला भी आ गया था। स्वभावतः बादशाह ज़्यादा प्रबल हो गया पर इमादुल्मुल्क एवं वज़ीर इन्तज़ामउद्दौला की पारस्परिक प्रतियोगिता बीचमें आ पड़ी। उधर बादशाहकी आर्थिक स्थितिके कारण भी मामला बिगड़ गया। इस समय बादशाहके पास ८० हज़ार सिपाही थे जिनको वेतन देनेके लिए उसके पास धन नहीं था। उसने अपने रत्नादि बेंच दिये, महलका सामान बेचा पर पूरा न पड़ा। भूखे सिपाही दिल्लीकी गलियोंमें लूट-मार करते फिरते थे। दोनों पक्ष पस्त थे इसलिए जयपुर नरेश माधवसिंहने बीचमें पड़कर सुलह करा दी। सफ़दरजंग अवध चला गया।

सफ़दरजंगके अवध जानेके ६ मास तकका समय बड़ी अव्यवस्था और अशान्तिका समय था। उपर्युक्त दोनों प्रधान अधिकारियोंकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्वितामें सब कुछ चौपट हो गया। ८० हज़ार सैनिकोंका खर्च २४ लाख मासिक था। ७ मास युद्ध चला, इस तरह १ करोड़ ६८ लाख तो

सिर्फ़ वही देने थे। पुराने सिपाहियोंको तो दो सालसे वेतन नहीं मिला था। रुहेले और मराठे अलग रुपये माँगते थे।

उधर जाटोंने सफ़दरजंगके विद्रोहकालमें अपनी शक्ति खूब बढ़ा ली थी। सूरजमलने महाराज जयपुरसे मैत्री कर ली थी। मराठोंने सूरजमलसे दो करोड़ रुपये माँगे। उसने ४ लाखपर सौदा करना चाहा जो न हो सका। इसलिए मल्हार-राव होल्करने १६ जनवरी १७५४ को डीग, भरतपुर और खम्भीर पर आक्रमण कर दिया। सूरजमलने देखा, मराठोंकी सेना अधिक है, इसलिए खम्भीरके क़िलेमें बन्द हो गया। मराठोंके पास तोपें नहीं थीं इसलिए उनका घेरा सफल नहीं हुआ। इस घेरेमें १५ मार्च १७५४ को खण्डेराव होल्कर मारा गया और उसकी नौ पत्नियाँ उसके साथ सती हो गयीं।

जाट-मराठा संघर्ष

पुत्र-शोकसे बूढ़ा मल्हारराव पागल हो गया और उसने बदला लेनेका निश्चय कर लिया। मज़ा यह कि उसके शोकमें शत्रु-मित्र सब सम्मिलित हुए। सूरजमल तकने शोक-वस्त्र धारण किये। लड़ाई चलती रही। खम्भीर गढ़की दीवारें मिट्टीकी थीं पर टससे मस न हुईं। इसलिए चार मासके घेरेके बाद सन्धि हो गयी और तय पाया कि जाट मराठोंको तीस लाख रुपये तीन क़िस्तमें देंगे और वह दो करोड़ रुपये जो इमादुल्मुल्क और मरहठोंने बादशाहकी तरफ़से माँगे थे, सुविधानुसार मीरबख़्शी और होलकरको दिये जायँगे। इस समय इमादुल्मुल्क ही सबसे शक्तिमान् सरदार था। उसीके कारण सफ़दरजंगकी हार हुई थी, उसीने जाटोंकी प्रबलताको रोक दिया था तथा होलकर उसीका सहायक था। किन्तु उसकी भी कठिनाई यही थी कि पैसा पास नहीं था। जो कुछ पूर्वजोंकी कमाई थी वह भी सफ़दरजंगसे संघर्षमें खर्च हो चुकी थी; राजकोष रिक्त था और प्रान्तोंकी आय बन्द थी। विवश होकर उसने खालसा ज़मीनोंसे

बादशाहकी बेबसी

रुपया वसूल करना शुरू कर दिया और फरवरी १७५४ ई० में कोल एवं सिकन्दराबाद पर अधिकार कर लिया। उसने आक़बतमहमूदको रिवाड़ी भेजा कि वहाँ पैसा एकत्र करे। यह बात बादशाहको बड़ी बुरी लगी क्योंकि उसका अवलम्ब ये ज़मीनें ही थीं; वह द्वार बन्द हो जानेसे महल-वालोंको उपवासपर उपवास होने लगे। उधर सिपाही वेतन माँगते थे। बादशाह बड़ा परीशान था। उसने बार-बार बख्शीको लिखा कि वह सिपाहियोंका वेतन चुका दे किन्तु वह बराबर टालमटोल करता रहा। खम्भीरके घेरेके बाद यह सम्बन्ध और बिगड़ गया। क्योंकि वहाँ तोपें भेजनेमें बादशाहके टालमटोल करनेपर इमादुल्मुल्कने आक़बतमहमूदको मराठी सेनाके साथ भेजा। महमूदने दिल्लीके धनियोंको खूब लूटा। उधर सेनाके भूखे सिपाहियोंने हर जगह लूट-मार शुरू कर दी। क़िले वालोंको खाना भी न मिला। खारी बावली और लाहौरी दरवाज़ाके समीप हज़ारों घर वीरान और बेचिराग़ हो गये और लाशोंके ढेरके ढेर लग गये। आक़बतमहमूद बराबर सिकन्दराबाद पर छापे मारता रहता था। पूछनेपर कहता कि तुर्क सिपाही उसके नियंत्रणमें नहीं हैं और अपनी तनख़ाहें वसूल करनेके लिए लूटमार करते हैं।

विवश हो बादशाह अहमदशाहने स्वयं सिकन्दराबाद जानेका निश्चय किया। पर तोपचियोंने विना वेतन लिये एक पग आगे रखनेसे इन्कार कर दिया। शाही हाथी भी चार दिनके भूखे थे और उनमें बोझ उठानेकी शक्ति ही न थी। एक तो सामान ही क्या था, दूसरे उसे ले जानेके लिए कोई गाड़ी भी सुलभ न थी क्योंकि नक़द दाम लिये बिना कोई इस सेवाके लिए तैयार नहीं था। किसी प्रकार २७ एप्रिलको यह दल रवाना हुआ। दो एक दिन बाद ऊधमबाई तथा दूसरी बेगमें भी पहुँच गयीं और सिकन्दराबाद बादशाहके अधिकारमें आ गया।

पर इससे बादशाहको कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मराठों और जाटोंने सुलह कर ली। समाचार मिला कि वे बादशाहपर आक्रमण

करेंगे। इससे बादशाह इतना घबड़ाथा कि रोने लगा और ईश्वरसे प्रार्थना की कि किसी तरह यह बला टल जाय पर बला टलनेवाली न थी। होलकर की सेनाएँ सिकन्दराबादके पास आती जा रही थीं। बादशाह दिल्ली भाग गया और इस परीशानीमें भगा कि बेगमोंको भी साथ न ले जा सका और वे (ऊधमबाई ओर साहब महल इत्यादि) मराठोंके हाथ वन्दिनी हुईं। उनके आभूषण छीन लिये गये। होलकरने ऊधमबाईके साथ सद्-व्यवहार किया पर अन्य बेगमोंको बड़े कष्ट उठाने पड़े। कुछ तो पैदल और नंगे सिर भागती-भागती, भूखी-प्यासी दिल्ली पहुँचीं। विवश हीकर बादशाहने इन्तज़ामउद्दौलाको हटा दिया और इमादुल्मुल्कको वज़ीर बनाया। २ जून १७५४ को इमादुल्मुल्क बादशाहकी सेवामें उपस्थित हुआ और क़ुरान शरीफ़पर हाथ रखकर बादशाहके प्रति वफ़ादारीकी क़समें खाईं और कहा कि मैं अपना ख़ून बहाकर आपकी रक्षा करूँगा।

पर ज़माना ऐसा आ गया था कि लोगोंके चरित्र गिर गये थे। किसी का भरोसा न था। क़ुरानको इन्सान धोके-धड़ीके लिए प्रयुक्त करने लगा था। इमादुमुल्कने उधर क़समें खाईं इधर शाह आलम बहादुरशाहके बेटे आलमगीर द्वितीयको तख़्तपर बैठा दिया और जिसकी निष्ठाकी क़समें खाईं थीं उसीके साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया कि मानवता शर्मसे पानी-पानी हो गयी। अहमदशाह डरके मारे रंगमहलकी झुरमुटोंमें छिप गया। जब पता लगा तबतक प्याससे उसका गला सूख गया था। उसने पानी माँगा तो आक़बत महमूदके भाई सैफ़ुद्दौलाने वहीं पड़े एक मिट्टीके ठीकरेमें पानी डालकर उसके मुँहमें लगा दिया।

इमादुल्मुल्क भी चैनसे न बैठ सका। उसके हाथमें सब कुछ था पर शाही फ़ौजको सन्तुष्ट करनेका कोई उपाय न था। उसे न जाने कबसे वेतन नहीं दिया जा सका था। सैनिक फ़ाक़े कर रहे थे। वे रोज़ व्यापारियों और अमीरोंके घर लूटते थे और कोई रोकनेवाला न था। २१ जून १७५४ को तोपख़ानेके सिपाहियोंकी माँगोंने इतना उग्र रूप धारण किया कि उन्होंने

क्रोधमें आक़बत महमूदके कपड़े फाड़ डाले। इमादने भी सारा दोष आक़बतपर डाल दिया और तीन दिन बाद उसे क़त्ल करके उसकी लाश यमुनाकी रेतीपर फेंकवा दी। अहमदशाह बादशाह और उसकी माँ की आँखोंमें सलाइयाँ फेरकर उन्हें अन्धा कर दिया गया। मीरने इन घटनाओंका बड़ा दर्दनाक वर्णन किया है। उनका निम्नलिखित शेर भी इसी घटनाकी ओर इशारा करता है—

शहाँ कि कहले जवाहर थी ख़ाके पा जिनकी
उन्हीं की आँखों में फिरती सलाइयाँ देखीं।

आलमगीर द्वितीय ५५ सालकी उम्रमें तख़्तपर बैठा। उसका जीवन कष्टोंमें ही बीता था। इतिहास और साहित्यका दीवाना था। अधिकांश

बूढ़े की विलासिता

समय अध्ययनमें व्यतीत करता था। औरंगज़ेबकी भाँति वह भी पाँचों समय नमाज़ पढ़ता और सरल जीवन बिताता था। एक-एक सरकारी काग़ज़को स्वयं पढ़ता। मतलब अपने कर्तव्यके प्रति जागरूक था पर उसे सैनिक एवं शासनसम्बन्धी अनुभव बिलकुल न था, न दृढ़ता थी। इसलिए अपनी सारी अच्छाइयोंके होते हुए भी वह इमादुल्मुकके हाथकी कठपुतली बन गया।

फिर वह विलासी भी था। बुढ़ौतीमें भी नई-नई शादियाँ करता था। फरवरी १७५६ में जब उसकी उम्र साठके निकट पहुँच रही थी, उसने स्व० मुहम्मद शाहकी कन्या हज़रत बेगमसे शादीका इरादा किया। हज़रत बेगम अनिन्द्य सुन्दरी थी और केवल १६ सालकी थी। लड़कीने दृढ़तासे काम लिया और विवाहसे इन्कार कर दिया। यह भी कहा कि यदि मुझे अधिक तंग किया गया तो मैं ज़हर खा लूँगी। आलमगीर (द्वितीय) ने उसे एकान्त बन्दीगृहमें डाल दिया। १ सितम्बर १७५८ को बादशाहने

ज़ीनत अफ़रोज़ बेगमसे शादी की—यह उस वक्तका हाल है जब जनाबको चक्कर पर चक्कर आते थे और साँस उखड़ी जाती थी।

अशिक्षित इमादुल्मुल्कके कष्ट भी बढ़ते गये। रुहेलोंके हाथों उसकी बड़ी दुर्गति हुई। उसे पानीपतकी सड़कोंपर घसीटा गया और उसकी बेगमोंके साथ अनेक प्रकारके दुर्व्यवहार किये गये।

इन दिनों रुहेले ज़ोरों पर थे। १७५७ के अब्दालीके भयंकर आक्रमणके बाद नजीबुद्दौला तेज़ीसे उठ रहा था। अब्दालीने इमादुल्मुल्कको अलग कर दिया। इमाद मराठोंसे मिल गया। सितम्बर ५७ में मराठोंने हमला करके नजीबको निकाल बाहर किया और अहमद खाँ बंगशको मीरबख्शी बनाया। बंगश बराबर बीमार रहता था इसलिए उसकी आड़में मरहठे ही कर्त्ता-धर्ता थे।

इस समय दिल्लीमें बादशाहका शासन नाम-भरको था। आर्थिक स्थिति अवर्णनीय रूपसे बिगड़ चुकी थी। बादशाहके नौकर-चाकर भूखों मर रहे थे। स्वयं बादशाहके पास ईदगाह तक जानेके लिए सवारी न थी। १० मई १७५८ को वह महलसे पत्थरवाली मस्जिद तक पैदल गया। सिपाहियोंको ५-६ सालसे वेतन नहीं मिला था। उन्होंने अपने घोड़े और कपड़े तक बेच दिये थे। शाही अस्तबलके जानवर भूखों मर रहे थे, उन्हें कई-कई दिनों तक फ़ाके होते थे। बेगमोंको प्रायः उपवास ही करना पड़ता था। एक दिन शाकिरखाँ शाहज़ादा आलीगुहरके सामने खैरातख़ानेका शोरबा ले गया। शाहजादेने कहा कि यह महलकी बेगमोंको दे दो जिनके मुँहमें तीन दिनसे एक दाना नहीं गया है। 'तारीख़ आलमगीर सानी' में लिखा है कि एक दिन क़िलेकी बेगमें भूखसे बिलबिला उठीं और पर्देका कुछ ख्याल न कर महलसे शहरकी ओर जाने लगीं। किन्तु क़िलेके द्वार बन्द थे इसलिए वहीं चुप होकर बैठ रहीं और एक रात तथा एक दिन इसी तरह बैठी रहीं। १७५७ में दो बार अब्दालीने दिल्लीको लूटा; पाँच महीने नजीबुद्दौलाने लूट-खसोट जारी रखी। अनेक प्रकारकी

महामारियाँ फैल रही थीं। चारों ओर दुर्भिक्षका राज था। खाद्य द्रव्यका बाज़ारोंमें बड़ा अभाव था। मूंगकी दाल दो रुपये सेर बिकती थी और इमली सौ रुपये सेर। बेरोजगारी बराबर बढ़ती जाती थी; चोरी-डाका आम बात थी। नवम्बर १७५८ में भूकम्प भी आया जिसमें बहुतसे आदमी मर गये। इस समय मराठे पंजाब तक पर छा गये थे। मार्च ५८ में उन्होंने सर हिन्द तक ले लिया था। वे बढ़ते ही गये और अटक तक पर उनका अधिकार हो गया। वहाँ अपना आदमी रखकर वे फिर दक्षिण चले गये।

२९ नवम्बर १७५९ को इमादुद्दौलाने बादशाह (आलमगीर द्वितीय) और अपने प्रतिद्वन्द्वी इन्तजाम दोनोंको क़त्ल करवा दिया। इधर अहमद-शाह अब्दालीने पुनः आक्रमण कर दिया। १७६० में बरारी घाट (दिल्लीसे दस मील उत्तर स्थित) पर मराठों एवं अब्दालीमें घमासान लड़ाई हुई। इसमें दत्ताजी मारे गये, जनकोजी सिंधिया घायल हुए, मराठोंकी बुरी हार हुई। 'मीर' ने 'जिक्रेमीर' में लिखा है कि अब दिल्ली में न कोई बादशाह था, न कोई वज़ीर। उसकी हालत विधवासे अधिक व्यथाजनक थी। अब्दालियोंने उसे मन भर लूटा। इस लूट और बर्बादी का विस्तृत वर्णन मीरने लिखा है:—

"........मैं शहरमें ही रहा। शामके बाद मुनादी हुई कि शाह अब्दालीने सबको क्षमाप्रदान कर दी है; रिआयामें से कोई परीशान न हो;

दिल्ली की लाचारी

लेकिन थोड़ी-सी रात गुज़री थी कि दुर्रानियोंने ज़ुल्म शुरू कर दिया। शहरको आग लगा दी। घर जला दिये। अगली सुबह क़यामतकी सुबह थी। अफ़ग़ान और रुहेले हत्या और विध्वंसमें लग गये। उन्होंने मकान तोड़ डाले, लोगोंकी मुश्कें कस लीं; अक्सरको जला दिया या उनके सिर काट लिये। एक आलम ख़ाक और ख़ूनमें मिल गया। तीन रात और दिन यह ज़ुल्म जारी रहा। दुर्रानियोंने खाने-पीनेकी कोई चीज़ न

छोड़ी। उन्होंने छतें और दीवारें तोड़ डालीं और लोगोंके सीने ज़ख्मी कर दिये। राज्यके सरदार फ़क़ीर हो गये, वज़ीर और शरीफ़ नंगे और बड़ी-बड़ी हवेलियोंवाले गृहहीन।........लोगोंके बीबी-बच्चे क़ैद थे। और क़त्ल व ग़ारतका सिलसिला बिना रोक-टोक जारी था। अफ़ग़ान ज़लील करते और गालियाँ देते थे और तरह-तरहके ज़ुल्म करते थे। जो चीज़ मिली लूट ली। नई दिल्ली यानी शाहजहानाबाद ख़ाकके बराबर हो गयी। इसके बाद यह बेरहम पुरानी दिल्लीकी तरफ़ मुतवज्जह हुए और बेशुमार लोगोंको हलाक कर डाला। सात आठ दिन तक यही हंगामा गर्म रहा। किसीके घर पहननेके कपड़े और एक दिनके खाने तकका सामान न रहा। मर्दोंके सिरपर टोपी और औरतोंके सिर पर दुपट्टा तक नहीं था। मुसीबतज़दोंकी फरियाद आसमान तक पहुँचती लेकिन अब्दालीके कान पर जूँ न रेंगती। बहुत-से लोग दिल्ली छोड़कर लखनऊ चले गये और वहाँ मर गये।"

इस हंगामेमें मीर साहबकी हालत, जो पहिले से ही ख़राब थी, बहुत बुरी हो गयी। उनका तकिया या निवासस्थान भी मिट्टीमें मिला दिया गया। यह दुखी हो, राजा जुगलकिशोरकी आज्ञा ले, शहरसे निकल गये। ८–९ मील चलनेके बाद रात एक पेड़के नीचे बिताई। प्रातः राजा जुगलकिशोरकी पत्नी उधरसे गुज़रीं। वह इनको और इनके साथियोंको बरसाना ले गयीं। फिर वहाँसे जब कामान गयीं तब यह भी गये। वहाँ लाला राधाकिशनके पुत्र बहादुरसिंहने इनकी इज़्ज़त की और अपने पास रखा। फिर राजाके छोटे लड़केने इन्हें अपने यहाँ बुला लिया और भली-भाँति रखा। इस प्रकार उस कठिनाईके समय अनेक सम्पन्न हिन्दुओंने मीरकी सहायता की। वस्तुतः उस समय साम्प्रदायिक दृष्टिकोण उच्च वर्गोंमें था ही नहीं।

मराठोंकी हारको पेशवा भूले नहीं थे। ज़रा अवकाश पाते ही सदाशिवराव भाऊ को, एक बड़ी सेनाके साथ, उन्होंने उत्तरकी ओर रवाना

किया। इस सेनाने २ अगस्त १७६० को दिल्लीपर अधिकार कर लिया। अवधके नवाब शुजाउद्दौला इस प्रयत्नमें थे कि पेशवा और अब्दालीमें किसी तरह सुलह हो जाय, शाह अलम द्वितीय, जो विहारकी ओर था और जिसकी अनुपस्थितिमें शाहे जहाँ द्वितीय गद्दी पर था, को दिल्लीकी गद्दी मिले एवं उसके ज्येष्ठ पुत्र मिर्ज़ा जवान बख़्तको युवराज बनाया जाय तथा अब्दाली एवं मराठे दोनों अपने-अपने देशको लौट जायँ। इस प्रस्ताव पर इमाद बिगड़ गया तथा जाटराज सूरजमल आगबबूला हो गये। दोनों बिना भाऊ से पूछे वल्लभगढ़ लौट गये। इससे मराठोंको बड़ी हानि पहुँची। भाऊके स्वभावमें कठोरता थी। वह किसीकी कुछ सुनता न था। उसने सूरजमलसे कहा, "तुम तो निरे ज़मींदार हो, सैनिक अभियानका तुमको क्या ज्ञान ?" बूढ़े होलकरके लिए कहा—"वह तो सठिया गया है, और उसकी कोई बात बुद्धिसंगत नहीं होती।" इस प्रकार उसने सबको नाराज़ कर दिया। १७६१ में अब्दाली और मराठोंके बीच पानीपतकी मशहूर लड़ाई हुई। मराठोंकी सबसे बड़ी कठिनाई रसद और रुपयेकी थी। सिपाही भूखे, घोड़े भूखे। अन्तमें १३ जनवरीको भूखे सैनिक भाऊके पास पहुँचे और कहा—"आज दो दिनसे हममेंसे किसीके मुँहमें एक दाना नहीं गया। हम यों एड़ियाँ रगड़-रगड़के मरना नहीं चाहते, आज्ञा दीजिए कि मर जायें या शत्रुको मार भगायें।" फलतः १४ जनवरीको भयानक घमासान मच गया। मराठे तथा उनकी ओरसे इब्राहीम गर्दी ऐसी बहादुरीसे लड़ा कि शत्रुओंने भी उसकी प्रशंसा की पर भूखी असन्तुष्ट सेना कब तक लड़ती। फलतः मराठे हार गये। पर्याप्त धन, घोड़े, ऊँट अफ़गानोंके हाथ लगे। दक्षिण में मातम छा गया। पेशवाका पुत्र विश्वासराव मारा गया; भाऊका सिर काट लिया गया और दो दिनके बाद उसकी लाश मिली; यशवंतराव, तिनकोजी सिंधिया, जनकोजी सिंधिया, इब्राहीम

भाऊ की तुनुकमिज़ाजी

बार-बार लुटी दिल्ली

खाँ, शमशेर बहादुर इत्यादि बड़े-बड़े सरदार एवं नायक मारे गये; संता जी को चालीस घाव लगे और महादजी सिंधियाके पाँवमें वह चोट लगी कि उम्र भर ठीक न हुई। सदाशिव राव भाऊकी उच्चाशयता, आत्मत्याग, वीरता असंदिग्ध होते हुए भी उसके स्वभावने उसके पक्षको दुर्बल कर दिया। इस हारने भारतका इतिहास बदल दिया। कहाँ मराठे भारतीय राष्ट्रके नेता थे, कहाँ इस हारका ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव हुआ कि उनका साथ देना प्रत्येकने ख़तरनाक समझ लिया। वे इतने हतप्रभ हो गये कि उनकी भागती सेनाकी टुकड़ियोंको गाँवकी औरतोंने लूट लिया।

२९ जनवरी १७६१ को अब्दाली, कोहेनूर लगाये और रत्नजटित वस्त्राभूषणोंसे सज्जित, दिल्ली आया। उसने महलमें रहना शुरू किया। चाहता था कि कुछ महीने आरामसे गुज़ारे किन्तु उसके सैनिक घर जानेके लिए बेचैन थे इसलिए उसने २० मार्चको कूचका हुक्म दे दिया। इन सैनिकोंने भी दिल्लीको खूब लूटा। मीर लिखते हैं:—

"....एक रोज़ शहरको निकला। चलते-चलते शहरके एक ताज़े वीरानेमें पहुँचा। हर क़दम पर आँसू बहाता....जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, मेरी हैरत बढ़ती गयी, मकान पहचाने नहीं जाते थे, मक़ानोंका कहीं पता नहीं था। मकान टूटे हुए, दीवारें बैठी हुई, खानकाहें बेसूफ़ीके और खराबात बेमस्तके वीरान पड़े थे।....बाज़ार कहाँ जिनका ज़िक्र करूँ, तिफ़्लां तहे बाजार कहाँ, हुस्न कहाँ जिसको पूछूँ, जवानाने रैना चल बसे, पीरांने पारसा गुज़र गये, महल्ले खराब कूचे बर्बाद, हर तरफ़ वहशत हवैदा और उन्स नापैदा।....नागाह उस मोहल्लेमें पहुँचा जहाँ मेरा घर था, दिन रात सोहबतें गर्म रहती थीं, शेर पढ़ता था और आशिक़ाना बसर करता था, रातोंको रोता था और हसीनोंसे इश्क़ करता था, वहाँ कोई शनासा तक न मिला कि दो घड़ी बातें कर लूं। कुछ देर खड़ा हैरतसे तकता रहा। सख्त सदमा हुआ और अहद किया कि अब फिर न आऊँगा और जबतक ज़िन्दा हूँ शहरका क़स्द न करूँगा।"

मीर लिखते हैं:—"चूँकि अफ़ग़ानोंका ग़ुरूर हदसे गुज़र गया था इसलिए ग़ैरते इलाहीने उन्हें सिखोंके हाथों ज़लील किया···उन्होंने इस क़दर दिक़ किया कि ये भागे-भागे फिरते थे और कहीं पनाह नहीं मिलती थी।····सिख इनका पीछा करते हुए दरियाए अटक तक पहुँचे और उस सूबे पर मुतसर्रिफ हो गये। चंद दिनों बाद····उन्होंने लाहौर भी ले लिया।"

उधर १२ जून १७६१ को सूरजमलने आगरा (अकबराबाद) पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस समय आगरा सबसे मालदार शहर था। दिल्लीकी बरबादीने इसे आगे बढ़ाया और समृद्ध किया। सूरजमलके हाथ पचास लाखकी रक़म आई। अस्त्र-शस्त्र, सामान, आभूषणका अनुमान करना कठिन है। सब सामान भरतपुर एवं डीग भेज दिया गया।

२९ नवम्बर १७५९ को आलमगीर द्वितीय मारा गया था। तबसे उसका बड़ा बेटा शाह आलम मारा-मारा फिरता रहा था, उसे दिल्ली आनेकी आज्ञा न थी। १२ वर्ष बाद उसका निर्वासनकाल समाप्त हुआ और उसने बादशाहके रूपमें दिल्लीमें प्रवेश किया (१७७२)। वह दिल्ली के राजकुमारोंमें सबसे योग्य था। वह अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत तथा कई भारतीय भाषाएँ जानता था। वह उर्दू, फ़ारसी तथा हिन्दीमें कविता करता था। उर्दू फ़ारसीमें 'आफ़ताब' के नामसे और हिन्दीमें शाहआलमके नामसे। शाहआलमके हिन्दी, फ़ारसी, उर्दू और पंजाबी शेरोंका संग्रह 'नादिराते शाही' रामपुरसे प्रकाशित हो गया है।

किन्तु उस युगमें देश और जातिका चरित्र गिर गया था। हर आदमी देशकी जगह अपने लाभकी बात सोचता था और उसके लिए बुरासे बुरा काम करनेको तैयार हो जाता था। इमाद स्वयं साहित्यिक व्यक्ति था; हर समय हाथमें तसबीह फेरता रहता था पर ज़रा-से लाभके लिए मित्रसे मित्रको क़त्ल करवा देता था। वह स्वयं शाह आलमका शत्रु था।

१७६३ में रुहेला सरदार नजीबुद्दौला तथा सूरजमलमें भी भिड़न्त

हो गयी। इसी लड़ाईमें सूरजमल मारे गये। उधर अवधके नवाब शुजाउद्दौला तथा मरहठोंने मिलकर अंग्रेज़ोंसे लड़ाई की पर सफल न हुए। तब शुजा अवध चले गये; मराठे भाग कर ग्वालियर पहुँचे और फिर सूरजमलके पुत्र जवाहरसिंह पर आक्रमण कर दिया। जवाहरसिंहने आठ-दस हज़ार सिख सैनिकों एवं अपने जाटोंकी सहायतासे मराठोंको खदेड़ दिया। मल्हार रावको इतना दुःख हुआ कि चन्द दिनों बाद मर गया।

सूरजमलका अन्त

इसके बाद मीरने जवाहरसिंह एवं जयसिंहके पुत्र माधवसिंह (जयपुर) के युद्धका वर्णन किया है। दक्षिणी राजपूतोंसे और सिख जवाहरसिंहसे मिल गये। इस प्रकार एक न एक युद्ध होता रहता था और देश बरबाद होता जा रहा था।

१७६८ में किसीने अकबराबाद (आगरा) में जवाहरसिंहको क़त्ल कर दिया और उसका भाई राव रतनसिंह गद्दी पर बैठा किन्तु वह व्यभिचारी, मद्यप एवं अत्याचारी था और किसीके द्वारा मार दिया गया। १७७० (३१ अक्तूबर) में नजीबुद्दौला भी मर गया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि शाह आलमका निर्वासन १२ वर्षमें समाप्त हुआ। १७७२ में उसने दिल्लीमें प्रवेश किया। किन्तु सिंहासन में वास्तविक शक्ति न रह गयी थी। न खजाना था, न कोई निष्ठावान साथी था। देशकी हालत यह कि कहीं मराठे उठते है, कहीं जाट लूटते हैं, कहीं अफगान अत्याचार कर रहे हैं; उधर अँग्रेज धीरे-धीरे एक ओर बिहार और दूसरी ओर मद्रासकी तरफ़ बढ़ते चले जा रहे हैं।

१७७४ के आस-पास शुजाउद्दौलाकी तूती बोल रही थी। अँग्रेज़ भी उसके सहायक थे। वारेन हेस्टिंग्ज़की सहायतासे उसने रुहेलों पर हमला कर दिया। रुहेला रहमतख़ाँ बड़ी बहादुरीसे लड़ा पर युद्धभूमिमें मारा गया।

यहाँसे लखनऊ लौटते ही शुजा बीमार हो गया और अच्छीसे अच्छी चिकित्सा भी उसे बचा न सकी। १७७५ में उसकी मृत्यु हो गयी और आसफ़उद्दौला अवधकी गद्दीपर बैठा। इन्हींके निमंत्रणपर मीर लखनऊ आकर रहे थे।

देशकी दशा इतनी अस्थिर थी कि कल क्या होगा और कौन किसके साथ होगा, कोई नहीं कह सकता था। पर इतना निश्चित था कि दिल्ली शक्तिहीन, बेबस थी और कोई न कोई उसपर हावी रहता था। सबसे ज़्यादा भय उसपर मराठोंका था। बीच-बीच में वे भगा दिये जाते थे या चले जाते थे पर फिर आ जाते थे। इधर उनका ज़ोर फिर बढ़ा। दिल्ली और बादशाहपर उनका प्रभुत्व-सा था। वे जहाँ चाहते बादशाहको ले जाते, जिस रूपमें चाहते उसका उपयोग करते।

उधर जाब्ताखाँके पुत्र रुहेला गुलाम क़ादिरका ज़ोर सहारनपुरकी तरफ़ बढ़ रहा था। उसने सिखोंकी सेनासे मिलकर दोआबेके बहुतेरे शाही

गुलाम क़ादिर के अकल्पनीय अत्याचार

क्षेत्रोंपर क़ब्ज़ा कर लिया। धीरे-धीरे वह इतना प्रचण्ड हो गया कि बादशाहसे भी माँगें करने लगा पर बादशाहने स्वीकार न किया। तब वह लड़नेपर आमादा हो गया। एक मास तक छिट-पुट लड़ाई होती रही। फिर वह आगरेकी ओर चला गया। वहाँ मिर्ज़ा इस्माइल बेग क़िलेमें घिरा हुआ था। दोनोंके बीच मित्रताके वादे हुए। दोनों मिल गये और मराठोंसे मिलनेका निश्चय किया पर अवसर आया तो सारा बोझ मिर्ज़ा इस्माइल पर पड़ा। वह बड़ी बहादुरीसे लड़ा और मराठोंको भगा दिया पर वे नई सेना लेकर फिर आ गये जिसमें मिर्ज़ाकी गहरी पराजय हुई। गुलाम क़ादिर तमाशा देखता रहा। इससे मिर्ज़ा निराश होकर अपने क्षेत्रमें लौट गया।

गुलाम क़ादिर बादशाहके नाज़िर मंज़ूरअलीखाँके साथ मिलकर बादशाह पर अपना प्रभुत्व जमानेके षड्यन्त्र करने लगा। इसमें उसकी

दादी ऊधमबाई और साहिबा महल भी शामिल थीं। वह क़िलेमें पहुँचा और मिर्ज़ा बेदारबख़्तका हाथ पकड़कर तख़्तपर बैठा दिया। अब धीरे-धीरे उसने सारे क़िले और महलपर वह अधिकार जमाया कि बादशाह क़ैदी हो गया। गुलाम क़ादिरके भयंकर अत्याचारसे इतिहास लज्जित होता है। उसने शाहआलम एवं उसके बेटोंपर अत्याचार करना आरम्भ किया। शरीरके कपड़े तक उतार लिये; छोटे-छोटे बच्चों तकको खाने-पीनेसे वंचित कर दिया। शाह आलम कहता—यदि अपराध किया है तो मैंने किया है; इन बच्चोंका क्या अपराध है। पर गुलाम क़ादिर ज़रा भी ध्यान न देता; वह आदमी नहीं शैतान था। दो दिन-रात भूख-प्याससे तड़पकर बच्चे मर गये तब राजा मनबहार सिंहने बड़ी ख़ुशामद करके अट्ठाईस रोटियाँ और दो बहँगी पानी भेज दिया। बादशाहके सैकड़ों स्वजन थे इसलिए एक टुकड़ा रोटी और चार बूँद पानीका औसत भी नहीं पड़ा। मिर्ज़ा मेंढूने गुलामक़ादिरसे छिपाकर चौदह रोटियाँ और एक घड़ा पानी शाह आलमके पास भेजा। किसी तरह पता लग गया। आदमी बन्दी करके गुलाम क़ादिरके सामने लाया गया और उसे कुत्तोंके सामने डाल दिया गया।

क़ादिरने महलोंकी तलाशी ली। मिर्ज़ा अकबरशाहके मकानमें चार हज़ार अशर्फ़ियाँ, चौदह हज़ार रुपये, एक मन सोनेके बर्तन, चार मन चाँदीके बर्तन, पैंतीस मन ताँबेके बर्तन, दस तख्ता दुशाले और पन्द्रह गठरियाँ किख़ाब की बरामद हुईं। इसी प्रकार सबके यहाँसे कुछ न कुछ प्राप्त हुआ। उसने नवाब ताजमहल, नवाब शाहाबादी, मुबारक महल तथा रानी जयपुरका माल ज़ब्त किया। नवाब शाहाबादीके मकानसे दो सन्दूक़ मुहरें, दस हज़ार अशर्फ़ियाँ, चालीस हज़ार रुपये, एक छोटा सन्दूक़ जवाहरात, सोनेका एक, चाँदीके पाँच मन बर्तन, एक सन्दूक़ स्वर्णाभूषण तथा अन्य सामान बरामद हुए। बेलदारोंने रानी जयपुरीके मकानकी एक-एक दीवारको तोड़ा तो दो हज़ार अशर्फ़ियाँ और तीस हज़ार रुपये निकले। बेदारबख़्तने सरफ़राज़ तथा तमकीन नामक ख़ाजासरोंको आदेश

दिया कि शाहआलमके महलोंकी परिचारिकाओंको लकड़ीसे बाँधकर कोड़ोंसे मारा जाय। हर महलसे रोने-पीटनेकी आवाज़ आने लगी। जो कुछ उनसे मिला, ले लिया और उनको नंगे सिर निकाल दिया। उसके बाद अपने बापकी छोकरियोंको माल-असबाबका पता बतानेके लिए मारा-पीटा, उन्होंने दो स्थान बताये। वहाँसे दो सन्दूक चाँदीके बर्तनों और जवा-हरातके बरामद हुए।

चंद दिन बाद गुलाम क़ादिर रंगमहलमें गया और एक-एकको बुला-कर कहा कि रुपया लाओ नहीं तो तुम्हारे साथ भी यही बर्ताव होगा। उन्होंने रोते-रोते जवाब दिया कि हमें रोटियोंके लाले पड़ रहे हैं, हमारे पास रुपया कहाँ जो दें? शाह आलमसे कहा कि नकदी बताओ वर्ना अकबर शाहको उलटा लटकाकर कोड़े मारूँगा और गधीपर चढ़ाकर शहर में फिराऊँगा। शाह आलमने जवाब दिया कि जो कुछ है वह इन्हीं मकानोंमें हैं, मेरे पेटमें नहीं है। क़ादिरने जवाब दिया कि मकान की तलाशीके बाद तुम्हारे पेटकी भी तलाशी ली लायगी। वह हुक्का पीता जाता था और धुवाँ बादशाहकी तरफ़ छोड़ता जाता था। दो दिन बादशाह आलमकी बहिन करामतउन्निसा बेगमको उलटा लटकाकर तेल गरम उसपर डाला और कोड़े मारकर असबाबका पता पूछा। उसने चंद गड़े ख़जानोंका पता बताया। वहाँसे लाखों रुपयेका माल बरामद हुआ।

मोतीमहलमें शाह आलमको, शहज़ादों सहित, गर्म ईंटोंपर खड़ा किया और मिर्ज़ा अकबर शाह और सुलेमान शिकोहको लकड़ीसे बाँधकर मारनेका हुक्म दिया। शाह आलम शुष्क ओठों एवं आर्द्र नयनोंसे धूपमें बैठा देखता और फ़रियाद करता था। गुलाम क़ादिरने हुक्म दिया कि इसे ज़मीन पर गिराकर इसकी आँखोंमें सलाई भोंक दी। लोग चिमट गये और बेचारेको ज़मीन पर गिराकर उनकी आँखोंमें सलाइयाँ फेर दीं! वह ज़मीन पर तड़पने लगा। फिर उसे लकड़ियाँ मारकर बिठा दिया। गुलाम क़ादिरने व्यंग तथा उपहासपूर्वक पूछा कि क्या कुछ नज़र आता

है ? शाह आलमने जवाब दिया कि उस कुरानके सिवा जो हमारे-तुम्हारे दरमियान था कुछ नज़र नहीं आता। गुलाम क़ादिरने उठकर एक लात सीने पर मारी। वह चित गिर पड़ा। क़ादिर छाती पर चढ़ बैठा। कंदहारी ख़ाँने शाह आलमके हाथ पकड़ लिये और दूसरोंने पाँव पकड़े। क़ादिरने छुरेसे एक आँख और कंदहारी खाँने दूसरी आँख निकाल ली। शाहआलम घायल पक्षीकी तरह तड़पता था। क़ादिरने चित्रकारको बुलाकर हुक्म दिया कि तस्वीर इसी रूपमें कि मैं शाह आलमके सीनेपर बैठा हुआ, छुरी हाथमें लिये आँखें निकालता हूँ, खींच दे। आदमी नियुक्त कर दिये कि इसको और इसके बच्चोंको न पानी दिया जाय, न खाना। रोने पीटनेकी आवाज़ सुनकर पूछा कि यह क्या गुल है ? लोगोंने उत्तर दिया कि शाह आलम की दशापर स्त्रियाँ रोती हैं। हुक्म दिया कि जो भी रोयेगा वह, शाह आलमकी तरह, अन्धा कर दिया जायगा।

एक दिन एक ख़ाजासराने आकर सूचना दी कि शाह आलमकी दशवर्षीया लड़की भूक-प्याससे मर गयी। क़ादिरने हुक्म दिया कि जहाँ पड़ी है वहीं उन्हीं कपड़ोंमें दफ़न कर दो। एक दिन बेदारबख़्तने कहला भेजा कि मोहम्मदशाहकी पटरानी मर गयी है उसके दफ़नकी क्या व्यवस्था हो ? क़ादिरने बहुत गालियाँ देकर कहा कि वहीं पड़ी रहने दो। जब लाश सड़ने लगी तो लोगोंकी अनुनय पर तीसरे दिन दफ़नका हुक्म मिला।

माधवजी सिंधियाने जब ये दर्दनाक क़िस्से सुने तो मराठी सेना भेजी, गुलाम क़ादिरको घोर दण्ड देकर १७८८ में मार डाला और शाह आलम द्वितीयको पुनः तख़्त पर बैठाया तथा उसके व्ययके लिए नौलाख रुपये वार्षिक नियत कर दिये।

भारतीय इतिहासके ऐसे अस्थिर युगमें 'मीर' हुए थे और उन्होंने इन व्यथाकारी घटनाओं तथा विस्मयकारी परिवर्तनोंको स्वयं देखा था। उन्होंने अपनी जीवन-कथामें इनका विस्तृत वर्णन किया है। इन घटनाओंने उनके प्रेमल एवं भावुक मनपर गहरा असर डाला। ये अनुभूतियाँ ही

उनकी ग़ज़लोंमें उतर आई हैं और उन्हें गहरी वेदनासे पूर्ण कर दिया है। डा० फारूक़ीने ठीक ही लिखा है कि "उन्होंने शेर नहीं कहे, दिल और दिल्लीके मर्सिये लिखे हैं।....जिस तरह 'शराब खिचकर तलवार' हो जाती है उसी तरह मीरका तारीख़ी माहौल उनकी ग़ज़लोंमें ढल गया है।" जब उत्तर भारत और देहली राजनीतिक आँधियोंमें अस्थिर थे तब मीर चट्टानकी तरह स्थिर रहे और तेज़ीसे बदलते ज़मानेके चित्र अपने दिल और उस दिलका अक्स अपनी ग़ज़लोंमें उतारते रहे। वह भुक्तभोगी थे। उन्होंने धैर्यपूर्वक ज़मानेकी कठिनाइयों तथा प्रेमकी मुसीबतोंको भोगा, सिर ऊपर किये इसीलिए 'उनमें जीवनका वह सौष्ठव है जो जीवन भर निराशाओं और असफलताओंके उपयोगसे उत्पन्न होता है।' उनके दर्दमें निजी प्रेम-वेदना तथा युग-वेदनाका ऐसा अनोखा सम्मिलन है जो उर्दू काव्यमें अन्यत्र नहीं मिलता। उनकी वेदना केवल आत्मरोदन नहीं, वह एक सभ्यता, एक विशेष सामाजिक परम्पराकी असफलताका रोदन है। उनके रोदनमें उनके ही आँसू नहीं, समष्टिकी वेदनाके आँसू हैं। उनमें वह वेदना है, वह जलन है, वह तड़प है जिसके बिना मानव-जीवन मानव-जीवन नहीं, एक रेगिस्तान है। फिर तेज़ीसे बदलते हुए युगकी उथल-पुथलने उनके दुःखमें एक अजीब स्थिरता, एक संयम, एक आत्म-नियंत्रण, एक अपनी ज़िम्मेदारीकी भावना पैदा कर दी है। उनके काव्यमें उनके युगकी चीख़ है, उसकी आशा-निराशाएँ हैं, यहाँ हम इतिहासके एक भग्न होते युग-स्तूपके दर्शन करते हैं; उसका रोदन सुनते हैं—ऐसा रोदन जिसमें कलेजा बोलता है; जिसमें हाड़-मांस बोलता है, जिसमें ख़ूनकी गर्मी है, जिसमें जीवनकी उठान और मृत्युकी अनुभूति है; जिसमें इन्सानियतकी पुकार और युगके संस्कार हैं। शब्दके झरोखोंमें युगकी व्यथासे प्रभावित प्रेममें डूबे एक सच्चे मानवके हृदयकी शत-शत भंगिमाएँ झाँकती हैं।

मीरके काव्यकी विशेषता

काव्य-समीक्षा भाग

मीर-काव्यकी मानसिक पृष्ठभूमि

●

मैं कहीं संकेत रूपमें लिख चुका हूँ कि मीरकी वेदनामें समष्टिकी संवेदनाएँ झाँक-झाँक उठती हैं। उनमें अपना दर्द भी है और ज़मानेका दर्द भी है। उनमें ज़िन्दगी है पर बन्दगीके आलिंगनमें बँधी हुई; उनमें इश्क़ है पर साधना की गोदमें सोता हुआ; उनमें मस्ती है पर दुनियाके दुखोंपर सौ-सौ आँसू बहानेवाली; उनमें कल्पना है जो आसमानको ज़मीनसे बाँधे हुए हैं; उनमें पागलपन है जो अपनेको ठहर-ठहरकर दिलके आईनेमें देख लेता है। एक विरह जिसमें मिलनकी बेहोशी है। मीर अनेक व्यक्तित्वोंका व्यक्ति है। उसमें एक साथ कई-कई मानसिक भूमिकाएँ दिखाई पड़ जाती हैं।

उनमें समष्टिकी संवेदनाएँ झाँकती हैं !

मीर-काव्यकी मानसिक पृष्ठभूमिपर जो रेखाएँ गहरी हैं उनमें सबसे पहली रेखा है प्रेमकी। यह प्रेम, दिलमें उमड़ता प्रेम, अपने दिमाग़ और इर्द-गिर्दके वातावरणपर छा जानेवाला प्रेम, प्रेम जिसके बिना जीवन जीवन नहीं, उनमें पिता और चचासे आया; यज़ीद वग़ैरा दरवेशों ने उसे जलाकर रोशन किया, पर तबतक वह दूरागत था, रहस्यमय था, व्यापक था, अनुभूत था। बादमें यौवनके वंशी रवने उसमें एक तस्वीर पैदा की; एक अबोला यौवन अपनी आँखोंसे बोला, और एक दिलमें पूजा-की घण्टियाँ बजीं। पर देवताको पुजारीके सामनेसे हटा लिया गया। मतलब दुनियाने उस विधुवदनीको इनसे अलग कर दिया जो इनके समस्त मानसिक वातावरणपर यों छाती जा रही थी जैसे चाँदका जादू देखते-देखते अँधेरी दुनिया पर छा जाता है।

अबोला यौवन जब बोल उठा

इस विरहमें वह रोये, पागल हुए पर वह रोना अमृत हो गया। क्योंकि विरहकी करुणाने इन्हें इस प्रकार आलिंगन किया कि जन्म भर न छोड़ा। इसी संवेदनाके कारण इनका काव्य उच्च भावभूमिपर प्रतिष्ठित हो सका। भवभूतिने जब 'करुण रस ही एक रस है', कहा था तो एक ऐसे सत्यकी अवतारणा की थी जो मानव-हृदयकी चेतनाओं और प्रेरणाओंके द्वारा अनन्तकालसे पुष्ट होता आया है।

फिर बचपनमें बेघर-बार, बिना माँ-बाप, अनाथ, दिल उजड़ा, चतुर्दिक्‌की बस्तियाँ उजड़ीं, जिस दिल्लीमें आये रहने वह सनातन विधवा—

सनातन विधवा-सी दिल्लीकी तड़प

जिसकी माँगमें सिन्दूर बार-बार पड़ता और बार-बार पुँछता था, जो बार-बार प्रताड़ित, प्रवंचित, पददलित की जाती थी पर जिसे मरने नहीं दिया जाता था,—एक बेबसी, एक सुनसानका आलम; हर तरफ़ भय, त्रास, निराशा। कोई किसीका नहीं। मंज़िल दूर; राह अँधेरी, दीपक कोई नहीं, उस दीपकके सिवा जो दिलमें जल रहा था। इस प्रकार एक निराशा और वेदना इनमें यों भर गयी जिसका जीवनभर अन्त नहीं हुआ। इन्होंने देखा कि कल जिनकी पूजा होती थी, जिनकी पगधूलि लोग आँखोंमें अंजनकी भाँति लगाते थे, वे बेघर-बार, दाने-दानेको मोहताज हैं, जिन राजकुमारों पर सिंहासन निछावर हों वे भूखसे सूखी रोटियोंके लिए तड़पते हैं। अपने और दूसरोंके जीवनमें कालचक्रके इस परिवर्तनने उन्हें अन्तःस्थ कर दिया। भौतिक ऐश्वर्यकी असारता उनके दिलमें पैठ गयी। यह उनकी मानसिक पृष्ठभूमिकी दूसरी गहरी रेखा है।

मीर एक शरीफ़, साधुमना, उच्च भावभूमि पर रहने वाले प्रेममार्गी

काव्यके लिए शिष्ट मनोभूमिका अनिवार्य है

संतके पुत्र थे। अच्छे ख़ान्दानके थे, एक आनुवंशिक विरासत उन्हें मिली थी। उन्हें ऊँची दृष्टि मिली थी; उच्च सभ्यताके संस्कार प्राप्त हुए थे। इसलिए जीवनमें शिष्टाचारसे,

ऊँचाइयोंसे वह कभी न गिरे। तुच्छताकी भावनाको वह इन्सानका सबसे बड़ा दुर्गुण समझते रहे। उनके विचारमें काव्यके लिए शिष्ट जीवनकी भूमिका आवश्यक है। पहले आदमी बनो, शिष्टताकी ऊँचाइयों पर चढ़ो, तब कविता करनेकी चेष्टा करो—कुछ इस प्रकारकी शिक्षा उनकी थी। उनके काव्यमें इस शिष्ट मानसिक भूमिकाके दर्शन होते हैं। यह उस तस्वीरकी तीसरी गहरी रेखा है।

चौथी बात यह कि गहरी एवं अनुभूत प्रेम-वेदनाके कारण इनका काव्य उस आगके ऊपर एक पर्दा बनकर रह गया है जो इनमें जलती थी।

प्यास है पर गिरावट नहीं

इसलिए उसमें एक हलकी रहस्यात्मक चाँदनी सी है। एक ओर क़यामतका-सा शोर, गहरा उत्ताप, बेचैनी है, दूसरी ओर उसपर नियन्त्रण का, बन्धनका, अनुशासनका स्वर है। प्यास है पर गिरावट नहीं है; नींद है पर मूर्च्छा नहीं है; असफलताका दंश है पर जीवनकी प्रेरणामें लिपटा हुआ।

सब मिलाकर वह आत्मानुभूति और भावनाके कवि हैं। उनका काव्य अनुभूतियोंकी आर्द्रताका काव्य है। वह गहरे मनोमंथनका काव्य है।

इन रेखाओंकी हम ज़रा विस्तारसे चर्चा करेंगे क्योंकि उनके बिना मीरकी उस मानसिक पृष्ठभूमिको ग्रहण करना कठिन है जिसपर उनका समस्त काव्य खड़ा है।

जैसा मैंने कहा है, पहली और मूलभूत भावना-रेखा, जिसपर जीवन एवं काव्यका समस्त आधार है, प्रेमकी, इश्क़की है। इनके पिता जब-तब

इश्क़की व्याप्ति

इनसे कहा करते थे—"बेटा! इश्क़ इख्तियार करो कि इश्क़ ही इस कारख़ाना पर मुसल्लत[१] है; अगर इश्क़ न होता तो यह तमाम निज़ाम[२] दरहम-बरहम[३] हो जाता। बेइश्क़की ज़िन्दगानी बवाल है और इश्क़में

१. आच्छादित। २. व्यवस्था। ३. छिन्न-भिन्न।

दिल खोना अस्लेकमाल है। इश्क़ ही बनाता है और इश्क़ ही बिगाड़ता है।" कभी कहते—"आलम[१] में जो कुछ है, इश्क़का ज़हूर[२] है। आग सोज़े[३] इश्क़ है; पानी रफ़्तारे[४]-इश्क़ है, ख़ाक[५] क़रारे[६]-इश्क़ है; हवा इज़्तरारे[७]-इश्क़ है; मौत इश्क़की मस्ती है, हयात[८] इश्क़की होशयारी है; रात इश्क़का ख़्वाब[९] है, दिन इश्क़की बेदारी[१०] है।.......यहाँ तक कि आसमानोंकी हरकत हरकते-इश्क़ी[११] है।"

मीरने इसे गाँठ बाँध लिया था। यह शिक्षा उनके अन्तरमें प्रविष्ट हो गयी थी और समय पाकर पुष्ट होती गयी। प्रेमकी व्यापकताके वर्णनसे उनका काव्य भरा हुआ है और पिताकी उस बातकी छाप जगह-जगह दिखाई पड़ती है। देखिए:—

इश्क़ ही इश्क़ है जहाँ देखो,
सारे आलममें भर रहा है इश्क़।
इश्क़ माशूक़[१२] इश्क़ आशिक़[१३] है,
यानी अपना ही मुब्तला[१४] है इश्क़।
कौन मक़सद[१५] को इश्क़ बिन पहुँचा,
आर्ज़ू[१६] इश्क़, मुद्दआ[१७] है इश्क़।

"जहाँ देखो प्रेम ही प्रेम है। यह प्रेम सारे जगत्‌में भर रहा है। वही प्रेमी है और वही प्रियतम है अर्थात् वह स्वयं पर ही आसक्त है। बिना प्रेमके लक्ष्य तक कौन पहुँच पाया है। प्रेम ही अभिलाषा है और प्रेम ही उद्देश्य है।"

---

१. जगत्। २. अभिव्यक्ति। ३. जलन। ४. गति। ५. मिट्टी। ६. स्थिरता। ७. व्याकुलता, आतुरता। ८. जीवन। ९. स्वप्न। १०. जागरण। ११. प्रेमका चक्कर। १२. प्रियतम। १३. प्रेमी। १४. आसक्त। १५. प्रयोजन। १६. अभिलाषा। १७. अभिप्राय।

आगे फिर कहते हैं:—

दर्द ही ख़ुद है ख़ुद दवा है इश्क़,
शेख़ क्या जाने तू कि क्या है इश्क़।
तू न होवे तो नज़्म कुल उठ जाय,
सच्चे हैं शायरां ख़ुदा है इश्क़।

"प्रेम ही वेदना है और प्रेम ही उस वेदनाकी दवा भी है। ऐ उपदेशक! तू क्या जाने कि प्रेम क्या है? प्रेम न हो तो सारी व्यवस्था ही समाप्त हो जाय, कवियोंका कथन ठीक है कि प्रेम ही ईश्वर है।"

अन्दर-बाहर ऊपर-नीचे प्रेम ही प्रेम दिखाई देता है:—

ज़ाहिर[1] बातिन[2] अव्वल-आख़िर[3], पाईं बाला[4] इश्क़ है सब,
नूरोज़ुल्मत[5], मानी व सूरत[6] सब कुछ आप हुआ है इश्क़।

आकाशके घूमनेके बारेमें भी पिताकी बात भूल नहीं पाये हैं:—

मक़सूद[7] गुम किया है तब ऐसा है इज़्तिराब[8]
चक्करमें वर्ना काहेको यूँ आसमाँ रहे।

प्रियतमको छिपा दिया है, लक्ष्य ओझल कर दिया गया है तभी इतनी बेचैनी है नहीं तो आसमाँ यूँ चक्कर क्यों करता?

१. प्रकट, बाह्य। २. आन्तरिक। ३. आदि-अन्त। ४. नीचे-ऊपर। ५. आकाश-अन्धकार। ६. रूप और अर्थ। ७. लक्ष्य, इष्ट। ८. व्याकुलता।

बचपनमें जो छाप पड़ी, वह बराबर बनी रही। यौवनमें जब आकाश का वह प्रेम ज़मीनके चाँदपर उतरा तब भी मानवीय प्रेममें भी वही ऊँचाई, वही व्यापकता बनी रही। हाँ, इस निजी प्रेमानुभूतिने उसे चिन्मय कर दिया। पहले जो ख्याल दिमाग़में थे वे दिलमें उतर आये; वे अपने हो गये। दर्द आया, जलन आई, अभिलाषाओंने करवट ली, प्यास उमड़ी, बेचैनी बढ़ी। 'मसनवी-ख़ाबोख़याल' काल्पनिक नहीं है; वह दिलकी पुकार है; यह उस वेदनाका चित्रण है जो पूजाकी देवीसे दूर कर दिये जानेपर इन्हें हुआ था। उससे भगते थे पर वह मूर्ति इनके दिलमें घर कर गयी थी; जागते-सोते, उठते-बैठते वही विधुवदन दिखाई पड़ता था। देखिए:—

आकाशका प्रेम ज़मीन के चाँद पर

चला अकबराबादसे जिस घड़ी,
दरोबाम[1] पर चश्मेहसरत[2] पड़ी॥
कि तर्केवतन[3] पहले क्योंकर करूँ।
मगर हर क़दम दिलको पत्थर करूँ॥

× ×

जिगर जौरे गर्दूं[4] से खूँ हो गया।
मुझे रुकते-रुकते जुनूँ[5] हो गया॥

× ×

वही जल्वा हर आनके साथ था।
तसव्वुर[6] मेरी जानके साथ था॥

१. द्वार और छत। २. लालसापूर्ण नयन। ३. घरका त्याग। ४. आकाशके उत्पीड़न। ५. उन्माद। ६. प्रणिधान।

उसे देखूँ जिधर करूँ मैं निगह ।
वही एक सूरत हज़ारों जगह ॥
गुले ताज़ा[1] शर्मिन्दा उस रू[2] से हो ।
खिजल[3] मुश्केनाब[4] उसके गेसू[5] से हो ॥
सरापा[6] में जिस जा नज़र कीजिये ।
वहीं उम्र अपनी बसर कीजिये ॥

यह जुनून भी पिता-प्रदत्त इश्क़की बुनियाद पर ही खड़ा है। पिता, चचा और दरवेशोंकी शिक्षाने ही इस प्रेमको धर्मोन्माद पर, साम्प्रदायिक

धार्मिक क्षुद्रताओं से परे

क्षुद्रताओंके ऊपर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने, विशेषतः बायज़ीदने, देरोहरमसे ऊपर उठकर प्रेम-धर्म, हृदय-धर्म निभाने पर ज़ोर दिया था; बायज़ीदने कहा था—"दिल्हार कि दिलशिकनी कसे न कनी व संग-सितम बरशीशए न ज़नी। दिल रा कि अर्श मी गोयंद अज़ीं राह अस्त कि मंजिल खास आँ माह अस्त।" मीर कहते हैं :—

देरो-हरमसे गुज़रे अब दिल है घर हमारा ।
है ख़त्म इस आबलेपर सैरो-सफ़र हमारा ॥

सइए तोफ़ेहरम[7] न की हर्गिज़,
आसताँ[8] पर तेरे मुक़ाम किया ।
तेरे कूचेके रहनेवालोंने,
यहींसे काबाको सलाम किया ।

१. ताज़ा, नवीन, गुलाब। २. मुख। ३. लज्जित। ४. कस्तूरी-गंध। ५. बाल। ६. नखशिख। ७. काबाकी ओर जानेका प्रयास। ८. स्थान, आश्रम।

इश्के ख़ूबाँको मीर मैं अपना,
क़िबला व काबा व इमाम किया।

इस प्रकार प्रेम ही उनकी पूजा, प्रेम ही उनका क़िबला व काबा है। मध्ययुगीन प्रेममार्गी संतोंकी भाँति इनका उपासना-पथ भी प्रेमका पथ है। साफ़ कहा है—

मत रंज कर किसूका कि अपना तो एतक़ाद[1],
दिल ढायकर गो काबा बनाया तो क्या हुआ?

दिलको ढहाकर, मिटाकर काबा ही बना लिया तो क्या फ़ायदा?

इस प्रेमने ही इनमें मस्तीका एक आलम पैदा किया है, एक बेख़ुदी दी है। कभी ऐसी जगह पहुँच जाते हैं जहाँ अपनेको भूल जाते हैं; ख़ुद ही अपनी प्रतीक्षा करते हैं; एक अजीब बेचैनीसे भर जाते हैं; कभी होशमें आते हैं तो कहते हैं, हम और ही आलममें थे। ऐसे समय किसीसे मिलना भी अच्छा नहीं लगता क्योंकि पुजारी देवताके सांनिध्यमें होता है; जगत् आँखोंसे हट जाता है। कुछ शेरोंमें मीरकी मस्तीकी यह छवि है :—

मिलनेवालो! फिर मिलिएगा हम हैं आलमे-दीगर[2] में,
मीर फ़क़ीरको सब्र है यानी मस्तीका आलम है अब।

× ×

बेख़ुदीमें न मीरके जाओ,
तुमने देखा है और आलममें।

× ×

१. विश्वास। २. दूसरी दुनिया।

बेख़ुदी ले गयी कहाँ हमको,
देरसे इन्तज़ार है अपना।

× ×

रहे हम आलमे मस्तीमें अक्सर,
रहा कुछ और ही आलम[1] हमारा।

जब ऐसी मस्तीका आलम होता है तब आनन्दका केन्द्र व्यक्ति स्वयं हो जाता है, फिर दूसरेकी नाज़बरदारीकी तमन्ना नहीं, शक्ति नहीं:—

गुलने बहुत कहा कि चमनसे न जाइए,
गुलगश्तको जो आइए, आँखों पै आइए।
मैं बेदिमाग़ करके तग़ाफुल[2] चला गया,
वह दिल कहाँ कि नाज़ किसूके उठाइए।

मस्तीका आलम जब होता था तब अपनेमें ऐसे डूबते थे कि कौन आया कौन गया इसकी ख़बर भी न होती थी। उस्ताद ज़ौक एक अवस्था-

'ज़ौक' की आप बीती

प्राप्त व्यक्ति से कहते थे कि "एक दिन मीर साहबके पास मैं गया। जाड़ेके अन्तिम दिन थे, वसन्तागमका ज़माना। देखा कि वह टहल रहे हैं; उदास हैं और रह-रहकर यह मिसरा पढ़ते हैं:—

"अबके दिन भी बहारके यों ही गुज़र गये।"

मैं सलाम करके बैठ गया, थोड़ी देर बाद उठा और सलाम करके चला आया। मीर साहबको ख़बर भी न हुई, वह जिस ध्यानमें पहले निमग्न थे, उसीमें निमग्न रहे। उनकी भाव-भंगीसे विदग्धता और वेदना फूटी पड़ती थी।"*

१. हाल। २. उपेक्षा।

* आबे हयात : मोहम्मद हुसेन 'आज़ाद'।

कभी ऐसा होता था कि महीनों बीत गये, अपनेमें ऐसे डूबते कि इर्द-गिर्द क्या है, क्या हो रहा है, इसकी भी कुछ ख़बर न लगती थी। एक

यह संलग्नता !

कथा है कि मीर साहबको बहुत कष्टमें देखकर लखनऊके एक नवाब इन्हें बाल-बच्चोंके साथ अपने घर ले गये और महलका एक भाग रहनेके लिए दे दिया। बैठकमें एक तरफ़की खिड़कियाँ बन्द थीं; उनके सामने ही एक सुरम्य उद्यान था। नवाबने वह हिस्सा इसलिए दिया था कि बाग़से इनका दिल बहले, मनोरंजन हो पर अर्सा बीत गया; खिड़कियाँ वैसे ही बन्द पड़ी रहीं। मीर साहबने कभी खोलकर बाटिकाकी ओर नहीं देखा। एक दिन उनके एक मित्र उनसे मिलने आये। उन्होंने कहा कि "इधर बाग़ है, खिड़कियाँ खोलकर क्यों नहीं बैठते ?" मीर साहब आश्चर्यान्वित होकर बोले—"इधर बाग़ भी है ?" उन्होंने कहा—"इसीलिए नवाब साहब यहाँ लाये हैं कि जी बहलता रहे और मन प्रसन्न हो।" मीर साहबके फटे-पुराने मस्विदे ग़जलोंके पड़े थे, उनकी ओर संकेत करके कहा—"मैं तो इस बाग़में ऐसा लगा हूँ कि दूसरे बाग़की मुझे ख़बर नहीं।"

क्या संलग्नता है ! बरसों बीत जायँ, सामने बाटिका हो किन्तु खिड़की तक न खुले !

× × ×

यौवनकालमें तो प्रेमकी अग्नि इनमें ऐसी प्रज्वलित हुई कि उसीमें जलते थे और मज़े लेते थे। आँखोंमें आँसू, बाल बिखरे, आत्मविस्मृत, खोये-खोयेसे, घुलकर पीले पड़ रहे। ये चित्र भी इनके काव्यमें प्रायः मिल जाते हैं:—

क्या मीर है यही जो तेरे दर[१]पे था खड़ा
नमनाक चश्मो[२] खुश्क लब[३] व रंग ज़र्द[४] सा ?

---

१. द्वार। २. भीगी आँखें। ३. सूखे ओठ। ४. पीला रंग।

याः—

हमेशा चश्म है नमनाक हाथ दिलपर है
ख़ुदा किसूको न हम-सा भी दर्दमन्द करे।

और यह नाज़ुकमिज़ाजी भी साथ लगी हैः—

नाज़ुकमिज़ाज आप क़यामत हैं मीरजी,
जूँ शीशा मेरे मुँह न लगो मैं नशेमें हूँ।

× ×

इनका काव्य इनकी गहरी वेदनाकी अभिव्यक्ति मात्र है। वह काव्य क्या है, एक परदा है, जिसके पीछे सिसकते दिलकी आवाज़ है, जिसके पीछे आरज़ूओं और तमन्नाओंकी दुनिया है। ख़ुद कहते हैंः—

किया था शेरको परदा सुख़नका
वही आख़िरको ठहरा फ़न हमारा।

× ×

इस परदेमें ग़मे दिल कहता है मीर अपना,
क्या शेरो-शायरी है यारो शुआरे आशिक़।

× ×

कब और ग़ज़ल कहता मैं इस ज़मींमें लेकिन,
परदेमें मुझे अपना अहवाल सुनाना था।

'परदेमें मुझे अपना अहवाल सुनाना था'—इसी बातको एक दूसरी जगह ख़ुद ही हैरत करते हुए हज़रत फर्माते हैंः—

एक आफ़ते ज़माँ है यह 'मीर' इश्क़पेशा,
परदेमें सारे मतलब अपने अदा करे है।

'मीर' जैसे लोगोंके सामने स्फूर्तिके कोई साधन न रह गये थे; सब तरफ़ निराशाकी अवस्था थी; कोई ऐसी चीज़ न थी कि जीवनकी थकी रुदनशील शक्तियाँ उसका सहारा लेतीं। बस यही प्रेमकी वेदना थी जो उन्हें किसी तरह जिलाये हुए थी। जीवन कभी बेहोश होता, कभी बेहोशीमें ही आँखें खोल देता, दो शब्द रोगीके मुँहसे निकलते—पर प्रेम अपनी थपकियोंसे उसे पोषण देता रहता। और यह प्रेम उच्च भूमिकाओं पर उठाने वाला प्रेम था। इसमें भोग उतना न था जितनी आराधना थी; आराधना जो मानवको उठाकर देवत्वके शीर्ष स्थानपर रख देती है। कहते हैं:—

प्रेमकी वेदना ही उनका संबल है

परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत तुझे,
नज़रमें सबोंकी ख़ुदा कर चले।

ऐ बुत, ऐ मूर्ति, तेरी इतनी उपासना की है कि सबकी नज़रमें तुझे ख़ुदा बना दिया है।

यह कल्पना नहीं, जीवनका सत्य है। मानव-प्रेमसे भी साधक सर्वोच्च ईश्वरीय प्रेम तक पहुँच सकता है। यदि इसका तात्त्विक विवेचन करें तो ज्ञात होगा कि दो व्यक्तियोंमें जब जीव-साम्यके कारण आकर्षण होता है तब प्रेमोदय होता है। प्रेमारम्भमें प्रेमी एवं प्रियतम दोनोंको इस प्रेरणा-का विशेष ज्ञान नहीं होता; पर भीतर ही भीतर एक आग सुलग उठती है। फिर एक अवस्था आती है जिसे पूर्वानुराग कहते हैं। धीरे-धीरे चित्र में विदग्धता आने लगती है। किसीको देखनेकी, किसीकी बात सुननेकी इच्छा लगी रहती है। दिल बेचैन-सा रहता है। छाती जलती है पर पता नहीं चलता कि यह क्या है? 'मीर' भी इस आगके शिकार हैं:—

साधना एवं सिद्धि

छाती जला करे है सोज़े दरूँ[1] बलासे
एक आग-सी लगी है, क्या जानिए कि क्या है ?

यह प्रेमका पूर्वाभास है। इसके लक्षणोंकी झलक 'मीर' के इस शेर में भी है :—

हम तौरे इश्क़[2] से तो वाक़िफ़[3] नहीं हैं, लेकिन,
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है।

एक दूसरे कवि 'शेफ़्ता' ने भी कहा है :—

शायद इसीका नाम मुहब्बत है शेफ़्ता,
इक आग-सी है दिलमें हमारे लगी हुई।

पूर्वावस्थामें यही होता है। उस समय कोई 'सीनेमें दिलको मला करता है।' फिर प्रेम अधिकाधिक गम्भीर होता जाता है, यहाँ तक कि वह पूर्ण प्रणयमें परिवर्तित हो जाता है। इसके बाद प्रेमी प्रियतमके ध्यानमें इतनी तल्लीनता प्राप्त करता है कि आँख खोलनेपर इधर-उधर चारों ओर वह मिनटों तक उसकी छबि देखता है। यही अवस्था प्रेम-मार्गकी सच्ची सीढ़ी है।

उपर्युक्त अवस्था जिस समय और भी विकसित होती है, उस समय मिनटोंकी जगह घंटों तक सब वस्तुएँ अपने प्यारेके रूपमें दीख पड़ने लगती हैं, किन्तु अभी तक उसकी इच्छा विशेष रूपसे प्रियतमको देखनेकी होती है। बहुत कुछ इसी भावनाकी झलक 'मीर' के इन शेरों में है :—

१. आन्तरिक जलन। २. प्रेमके ढंग, तरीक़े। ३. अभिज्ञ।

यकजा अटकके रहता है दिल हमारा वर्ना
सबमें वही हक़ीकत[1] दिखलाई दे रही है।

× ×

रहते हो तुम आँखोंमें फिरते हो तुम्हीं दिलमें
मुद्दतसे अगर्चे याँ आते हो न जाते हो।

यही संलग्नता मुक्ति अथवा विश्व-प्रेमका प्रारम्भिक रूप है। इसके बाद वह अवस्था होती है जिसे कवि 'प्रसाद' 'प्रियतममय यह विश्व निरखना'—कहते हैं।

वेदनाकी ज्वलन्त अवस्थामें हृदयकी, अपनी, बेचैनीका मीरने जो ज़िक्र किया है, उसमें करुणाकी सीमा है। वह दुश्मनोंसे भी प्रार्थना करते हैं कि वे मेरे प्रियतमसे मिलनेके लिए दुआ करें :—

यह इज़्तिराब[2] देख कि अब दुश्मनोंसे भी
कहता हूँ उसके मिलनेकी कुछ तुम दुआ करो।

वह बेचैनी है, वह दर्द है कि मरनेके बाद भी हसरतें सिर पटकती हैं :—

हसरतें उसकी सिर पटकती हैं,
मर्गे फ़रहाद[3] क्या किया तूने?

दिलका हाल पूछनेपर वह कुछ कह नहीं पाता। वेदना उस सीमापर है जब वाणीका लोप हो जाता है। पूछनेपर उत्तर तो मिलता नहीं, रक्तकी एक बूंद टपक पड़ती है। क्या शेर है :—

१. सत्य, ईश्वरत्व। २. बेचैनी, व्याकुलता। ३. फरहादकी मृत्यु। फरहाद फारसका प्रसिद्ध प्रेमी था जिसने प्रियतमा शीरींके लिए सर्वस्वार्पण किया था।

आँखोंसे पूछा हाल दिलका \
एक बूँद टपक पड़ी लहूकी।

वेदनाको छिपानेका भी ख़्याल है। प्रेमकी बदनामी न हो इसलिए आँखोंमें भरे आँसुओंको रोक रखनेकी पूरी चेष्टा है। वेदना और दुःखमें भी कितना नियंत्रण है :—

पासे नामूसे इश्क़[1] था वर्ना
कितने आँसू पलक तक आये थे।

मतलब उनका प्रेम बाज़ारू प्रेम नहीं है; वह मानवकी अन्तःसंस्कृति से पूर्ण है। इसमें गिरावटपर एक रोक, एक ठहराव, एक नियन्त्रण है।

× × ×

अक्सर कवियों, शायरोंमें चरित्रकी, आचरणकी बन्दिश नहीं होती; वे निर्बन्ध होनेमें अपना वैशिष्ट्य मानते हैं। 'मीर'की मानसिक पार्श्व-

मानवकी श्रेष्ठता के कवि

भूमिमें कविके लिए पहले इन्सानकी भूमिकाका निर्वाह करना आवश्यक है। उनके निकट मानवताकी ही श्रेष्ठ अभिव्यक्ति काव्य रूपमें सामने आती है, इसलिए 'मीर' इन्सानको बड़ा महत्त्व देते हैं। इन्सान देवतासे भी बड़ा है। महाभारतकार कहते हैं—'मनुष्य से बड़ा कुछ नहीं है।' मीर भी मानवीय श्रेष्ठताके सम्बन्धमें कहते हैं :—

मत सहल हमें जानो फिरता है फ़लक[2] बरसों
तब ख़ाकके परदेसे इन्सान निकलते हैं।

फिर कहते हैं :—

मरता हूँ मैं तो आदमे ख़ाकीकी शान पर
अल्लाह रे दिमाग़ कि है आसमान पर।

१. प्रेमकी बदनामीका ख़्याल। २. आकाश।

बड़ी चुनौतीके साथ, आदमीके रुतबेको सबके ऊपर रखकर, कहते हैं:—

इलाही कैसे होते हैं जिन्हें है बंदगी ख़्वाहिश
हमें तो शर्म दामनगीर होती है ख़ुदा होते।

क्या ख़ूब शेर है। वे न जाने कैसे होते हैं जिन्हें अभिलाषा है कि लोग हमारी बंदगी करें—उपासना करें, हमारे सामने झुकें। भई, यहाँ तो ख़ुदा होते लज्जा, आँचल, दामन पकड़ लेती है।

संसारकी शोभा आदमीसे ही है:—

आदमे ख़ाकीसे आलमको जिला[1] है वर्ना
आईना था तो मगर क़ाबिले[2] दीदार न था।

× × ×

बरसों लगी रही हैं जब मेह्रोमह[3] से आँखें
तब कोई हमसा साहब साहब नज़र[4] बने है।

इधर इंसान और ज़िन्दगीका यह वैभव, यह ऐश्वर्य, यह महत्ता उनकी दृष्टिमें है, उधर संसारकी असारता भी उनके दिलमें खुभी हुई है। यहाँ विश्राम नहीं, केवल चलना है। हिन्दीके अमर कवि 'प्रसाद'ने अपने 'प्रेमपथिक'में कहा है—

इस पथका उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवनमें टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

पर मीरका कहना है कि यह दुनिया मंज़िल नहीं है, यहाँ टिकनेकी आशा या चेष्टा न कर, यह राह है, किसी और की। कुछ इसी ज़मीनपर, पर दूसरी कैफ़ियतमें, मैंने अपनी एक ग़ज़लमें कहा है—

१. शोभा, आभा। २. देखने योग्य। ३. सूर्य-चन्द्र। ४. आँखवाला।

वही पथ हूँ स्वयं चलने लगा जो मेरे चलने से
जो .खुद चलने लगी मंज़िल वही मैं एक मंज़िल हूँ।

मीर कहते हैं:—

य' मंज़िल नहीं, बेख़बर, राह है।

वह मृत्युको थकावटकी, विश्रामकी एक अवधि मात्र मानते हैं, मरकर फिर आगे चलना ही है, जैसे मुसाफ़िर ज़रा दम लेकर चलता है:—

मर्ग एक माँदगीका वक़्फ़ा है,
यानी आगे चलेंगे दम लेकर।

एक जगह और कहते हैं कि उम्र बिताते-बिताते हम थक गये हैं इसलिए मृत्युका अन्तर आ जाना अब ज़रूरी है।

× × ×

मीरके काव्यकी मानसिक पृष्ठभूमिमें प्रेम मुख्य प्रवृत्ति है। इस प्रेममें भी गहरी वेदनाशीलता, गहरी दर्दमन्दीका आलम है। इसीसे उनमें एक

विशेषताएँ

छटपटाहट, एक बेचैनी है, बेचैनी जो बँधे समुद्रकी तरह तड़पती है पर बाँधको तोड़ नहीं पाती। डा० फारूक़ीने बहुत ठीक लिखा है कि "वह तिश्नगी[1], वह बेचैनी, वह वालिहाना[2] सुपुर्दगी[3], वह ज़ब्तोनज़्म[4], वह क़यामत[5] का-सा हंगामा[6] और वह आगकी-सी लपट जो इनके कलाम[7] में है उसके हक़ीकी असबाब[8] इनकी ज़िन्दगी और नफ्सयानी[9] हक़ायक़में ही मिल सकते हैं।"

१. प्यास। २. मुग्धतापूर्ण। ३. समर्पण। ४. नियंत्रण और व्यवस्था। ५. प्रलय। ६. शोर। ७. काव्य। ८. वास्तविक कारण। ९. मानसिक।

उन्होंने ज़िन्दगीमें कितनी कठिनाइयाँ झेलीं, कितने संकट उठाये, कितनी निराशाओंका सामना किया, पर कभी पीठ न दिखाई। जब कोई मित्र नहीं, हितैषी नहीं तब भी इनकी यात्रा बन्द नहीं हुई। एक अजीब दृढ़ता और अपना भरोसा उन्हें सदा रहा। उनमें जो

जीवनका महत् दृश्य

आत्म-विश्वास, हम देखते हैं वह इसीलिए है। आँधियाँ चल रही हैं, बिजलियाँ कड़कती हैं, बादल जल-थल एक करते हैं; अँधेरा दुनियाको निगल जानेको फैलता है कि फैलता है पर यह है कि अपना गर्वोन्नत मस्तक उठाये चले जा रहे हैं और चले जा रहे हैं। एक ओर संसारकी असारताका अनुभव, दूसरी ओर अपने पाँव पर खड़े होनेका संकल्प, एक ओर निराशा दूसरी ओर विश्वास, एक ओर व्यथातुरता दूसरी ओर ज़िन्दगीकी पूजा, एक ओर शोर दूसरी ओर एकान्त नीरवता, एक ओर लपट और दूसरी ओर बर्फानी आवरण,—और इन द्वन्द्वोंके बीच अपनी ही शक्तिकी छायामें उनकी जीवन-यात्रा ! क्या यह महत् नहीं है ? वह कहते हैं :—

अपना ही हाथ सर पे रहा अपने याँ सदा
मुशफ़िक़[१] कोई नहीं है, कोई मेह्रबाँ[२] नहीं।

इन्होंने प्रेमको समझा है, प्रेम किया है, प्रेमकी बेचैनी और तड़पके ऐसे चित्र दिये हैं कि दिल भर आता है, करुणा उमड़ती है; एक बेख़ुदी जिसका दिल दर्दसे चीख़-चीख़ उठता है। खोये-खोये हैं, न जाने कहाँ हैं; न जाने कहाँ दिल है, न जाने कहाँ आँखें हैं, न जाने कहाँ ध्यान है। कहते हैं :—

गह आपमें नहीं हो, गह मुन्तज़िर[३] कहीं हो,
यह मीरजी तुम्हारा इन रोज़ों हाल क्या है ?

१. मित्र। २. कृपालु। ३. प्रतीक्षामें।

अपनी बेज़ुबाँ दर्दमन्दी, अपनी अबोली व्यथाको किस करुण रूपमें व्यक्त करते हैं :—

आबलेकी सी तरह टीस लगी, फूट बही,
दर्दमन्दीमें गयी सारी जवानी इसकी।

और इस अबोली व्यथाकी गहराई देखिए :—

जब नाम तेरा लीजिए तब चश्म भर आवे,
इस ज़िन्दगी करनेको कहाँसे जिगर आवे ?

× ×

हमारे आगे तेरा जब किसीने नाम लिया।
तो दिल सितमज़दाको मैंने थाम-थाम लिया॥

और उधर शोख़ी और शरारतका यह हाल है कि तुम्हारा रोना सुननेको तैयार नहीं :—

एक शख़्स मुझी-सा था कि था तुझसे पै आशिक़,
वह उसकी वफ़ा[1] पेशगी वह उसकी जवानी।
यह कहके जो रोया तो लगा कहने, न कह 'मीर',
सुनता नहीं मैं ज़ुल्मरसीदों[2] की कहानी॥

इस प्रकार दिलमें अभिलाषाओंका सागर है पर ओठ बन्द हैं। इनका प्रियतम एक नीरव-व्यथा बनकर इनके जीवनमें समा गया है। उसकी आरज़ू, उसकी उपस्थिति, उसका तसव्वुर ही इनके दिलका मरहम है। इस दर्दके स्वादके आगे सब कुछ निरर्थक है, तुच्छ है। तुम हो तो सब है, तुम्हारी कामना है तो सब सुख है :—

मौसिमे अब्र[3] हो सुबू[4] भी हो।
गुल हो, गुलशन[5] हो और तू भी हो।

---

१. निष्ठा। २. अत्याचार-पीड़ितों। ३. बादल। ४. मद्यभाण्ड। ५. उद्यान।

दिल तमन्नाकदा[1] तो है पर 'मीर',
हो तो उसकी ही आर्ज़ू भी हो।

पर इन आर्ज़ूओं पर भी बन्दिश है :—

आर्ज़ूएँ हज़ार रखते हैं,
तिसपे हम दिलको मार रखते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इनके काव्यकी पार्श्वभूमिमें प्रेमकी अनेक छायाएँ चल-फिर रही हैं। प्रेममें व्यापकता है; वह हर रंग और रूप में प्रकट है। दिलोंमें बाढ़का आलम भी है और भाटेकी, उतारकी शान्ति भी है; जिन विपत्तियोंमें जिये और जिन कठिनाइयोंमें पले-बढ़े उनकी झलक है। गहरी वेदनाओंको कलेजेसे चिपटाये हुए हैं। यह वेदना उनके जीवनका आधार है, कोई बिक्री या सौदेकी चीज़ नहीं। जिसको प्यार किया, ख़ूब किया। इश्क़में हज़ार-हज़ार अभिलाषाएँ उठती हैं पर वे अबोली, दर्दमें डूबी रह जाती हैं। सनातन विरहका वातावरण इनपर यों छा गया है कि मिलनमें भी विरहका रस भिद गया है। इसीलिए सब अभिलाषाओंके साथ भी प्रेम उपासना बन गया है और काव्य मानवता एवं युगकी पीड़ाकी, संस्कृतिकी अभिव्यक्ति होकर रह गया है। उनकी निजी व्यथा युगकी व्यथाके साथ मिलकर एक हो गयी है। इसीलिए उनके काव्यमें जहाँ उनके हृदयका एकान्त संवेदन है वहाँ युगका चीत्कार भी है। उसमें सहस्र-सहस्र हृदयोंकी धड़कनें सुनाई पड़ती हैं; उसमें सैकड़ों प्राणोंकी आशा, सैकड़ों नयनोंकी निराशा, सैकड़ों ओठोंकी प्यास और मिठास है; जिन्दगियाँ जादूसे उठती हैं,—रोती हैं और उठती हैं, तड़पती हैं और उठती हैं,—एक नीरव, अबोली साधना अपनी ख़ामोशीमें भी बोल-बोल उठती है; वे बोल जो दिलोंमें अमृतकी गंगा बहा देते हैं।

१. अभिलषित।

मीर काव्य : कला-पक्ष

●

उर्दू काव्यमें विभिन्न शायरोंमें विभिन्न गुण मिलते हैं। किसीमें भाषाका पाण्डित्य है, किसीमें कल्पनाकी तेज़ उड़ान है, किसीमें अर्थ-गाम्भीर्य है, किसीमें कहनेका ढंग है, किसीमें प्रसादगुण है, किसीमें गहरी अनुभूति है, किसीमें अलंकृत शैलीकी बहार है पर मीर हैं कि इनमें अनेक गुणों एवं विशेषताओंका भाण्डार है। निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ इनमें पाई जाती हैं:—

१. प्रसाद गुण; भाषाका जादू, सादगी। (ज़बानकी सेहरकारी)
२. कहनेका ढंग (तर्ज़े बयाँ)।
३. विलक्षणता (नुदरत)।
४. व्यथातुरता।
५. चित्रकारी वा चित्रात्मकता।
६. व्यक्तिगत अनुभूतिका साधारणीकरण।
७. शिष्टता।
८. शब्द और धर्मका सन्तुलन (अलफ़ाज़ व मानीका तवाज़ुन)
९. थोड़ेमें बहुत कहना : गागरमें सागर।
१०. रचनाकी क्रमबद्धता।
११. मुहाविरोंका सुन्दर प्रयोग।
१२. व्यंग्य
१३. उपमाएँ और रूपक।
१४. संगीतात्मकता।
१५. फ़ारसी उक्तियोंका अनुकरण।

१६. देशज शब्दोंका प्रयोग : भारतीयता ।

१७. काव्य-दृष्टि

१८. रहस्यात्मकता : तसव्वुफ़का प्रभाव

१९. तत्त्वज्ञान

२०. विविध विशेषताएँ

प्रसाद गुण :

मीरका काव्य सर्वत्र प्रसादगुणसे पूर्ण है । यह प्रसादगुण न केवल भावों-को लेकर है बल्कि भाषामें भी है । भाषाकी सरलता तो कहीं-कहीं कमालकी है जैसे बातें करते हों । देखिए:—

कुछ करो फ़िक्र मुझ दिवानेकी,
धूम है फिर बहार आनेकी
कहते हैं डूबते उछलते हैं ।
डूबे ऐसे कोई निकलते हैं ।

× ×

आह जो हमदमी[1] सी करती है ।
अब तो वह भी कमी-सी करती है ।

× ×

शामसे कुछ बुझा-सा रहता है,
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस[2] का ।

× ×

फोड़ा-सा सारी रात जो पकता रहेगा दिल,
तो सुबह तक तो हाथ लगाया न जायगा ।

× ×

१. साथ देना, सख्य । २. दीन ।

हम फ़क़ीरोंसे बेअदाई क्या,
आन बैठे जो तुमने प्यार किया।

× ×

अश्क[1] आँखोंमें कब नहीं आता।
लहू आता है जब नहीं आता।
होश जाता नहीं रहा लेकिन,
जब वह आता है तब नहीं आता।

× ×

दिल मुझे उस गलीमें ले जाकर,
और भी ख़ाक में मिला लाया।
इब्तिदा[2] ही में मर गये सब यार,
इश्क़की कौन इन्तिहा[3] लाया।

× ×

बेख़ुदी ले गयी कहाँ हमको,
देरसे इन्तज़ार है अपना।
रोते-फिरते हैं सारी-सारी रात,
अब यही रोज़गार है अपना।
देके दिल हम जो हो गये मजबूर,
इसमें क्या इख़्तियार है अपना।
जिसको तुम आसमान कहते हो,
सो दिलोंका गुबार है अपना।

× ×

१. आँसू। २. आरम्भ। ३. अन्त।

हमने अपनी-सी की बहुत लेकिन ,
मर्ज़े - इश्क़का इलाज नहीं ।

× ×

क्या है देखो हो जो उधर हरदम ,
और चितवनमें प्यार-सा है कुछ ।

इस प्रकारकी सीधी-सादी बातोंसे उनका काव्य भरा हुआ है ।

कहनेका ढंग (तर्ज़ेबयाँ) :

पर केवल भाषाकी सादगीसे कोई विशेषता नहीं आती । ऐसी सादगी मीरके समकालिक अनेक शायरोंमें थोड़ी-बहुत पाई जाती है । असल चीज़ है कहनेका ढंग तथा उसकी नवीनता । मीरमें दोनों बातें हैं । जैसी इनकी भाषा सरल और सुलझी हुई है वैसा ही इनके कहनेका ढंग ख़ूब है । जैसे देखने-देखनेमें एक बात पैदा हो जाती है, वैसे ही कहने-कहनेमें भी अजब असर हो जाता है । हाफ़िज़की भाँति इनकी ग़ज़लें जो दिलमें चुभती हैं उसका एक कारण यह भी है कि यह शायर बनकर नहीं, प्रेमी बनकर बोलते हैं । इससे उसमें अपने-आप एक असर पैदा हो जाता है और बिना प्रयत्नके ही काव्यका कला-पक्ष निखर उठता है । वैसे अलग-अलग देखने पर कोई विशेष बात मालूम नहीं होती फिर भी—

क्या जानूँ दिलको खींचे हैं क्यों शेर मीरके !

उर्दू काव्यका प्रेमी विरहमें पागल होता है तब कपड़े फाड़ता है; गला फाड़ता है । यह ऐसी बात है जिसे अनेक प्रकारसे अनेक कवियोंने कहा है । एक पिटा-पिटाया मज़मून है जिसे लोग बराबर कहते आये और आज भी कहते जा रहे हैं । ऐसी ज़मीनपर मीरको चलना है । वह कहते हैं :—

अब के जुनूँमें फासला शायद न कुछ रहे ,
दामनके चाक और गरेबाँके चाकमें ।

मतलब इतना ही है कि अबके पागलपनका जो दौरा होगा उसमें शायद दामन (आँचल-छोर) के चाक और गलेके चाकमें कोई फासला न रह जाय यानी पूरा पागलपनका दृश्य दिखाई देगा। कोई ख़ास बात नहीं पर कहनेका ढंग ऐसा है कि उसने बातमें बात पैदा कर दी है। मौलाना हालीने अपने 'दीवान'[१] के मुक़दमेमें[२] इस शेरका ज़िक्र करते हुए एक घटनाका वर्णन किया है जिससे मीरके काव्यकी विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। वह लिखते हैं :—

"मौलाना 'आज़ुर्दा' के मकानपर, उनके चन्द अहबाब,[३] जिनमें 'मोमिन' और 'शेफ़्ता' भी थे, एक रोज़ जमा थे। मीरका यह शेर पढ़ा गया। शेरकी बेइन्तिहाँ[४] तारीफ़[५] हुई और सबको यह ख़्याल हुआ कि इस क़ाफियेको हर शख़्स अपने-अपने सलीक़े[६] और फ़िक्र[७] के मुआफ़िक़[८] बाँधकर दिखाये। सब क़लम, दावात और काग़ज़ लेकर अलग-अलग बैठ गये और फ़िक्र करने लगे। इसी वक़्त एक और दोस्त वारिद[९] हुए। मौलानासे पूछा कि हज़रत किस फ़िक्रमें बैठे हैं ?, मौलानाने कहा—"कुल-हो-अल्ला-हो अहदका[१०] जवाब लिख रहा हूँ।"

इसके बाद मौलाना हाली ख़ुद अपनी राय प्रकट करते हैं:—

"ज़ाहिर[११] है कि जोशेजनूँ[१२] में गरेबाँ या दामन या दोनोंको चाक करना एक निहायत मुबतज़िल[१३] और पामाल[१४] मज़मून[१५] है जिसको क़दीम[१६] ज़मानेसे लोग बराबर बाँधते चले आये हैं। ऐसे चिथेड़े हुए मज़-मूनको मीरने बावजूद ग़ायत[१७] दर्जेकी सादगीके एक ऐसे अछूते, निराले

१. ग़ज़लोंका संकलन, २. भूमिका, प्रस्तावना। ३. मित्र (बहुवचन)। ४. असीम। ५. प्रशंसा। ६. ढंग। ७. कल्पना। ८. अनुकूल। ९. प्रविष्ट। १०. क़ुरानकी सूरत 'कह कि अल्लाह एक है'। ११. प्रकट है। १२. पागलपनकी तेज़ी। १३. अधम, निम्न। १४. पददलित। १५. विषय। १६. प्राचीन। १७. हद।

और दिलकश[१] असलूब[२] में बयान किया है कि इससे बेहतर असलूब तसव्वुरमें नहीं आ सकता। इस असलूबमें बड़ी ख़ूबी यही है कि सीधा-सादा है, नेचुरल[३] है और बावजूद इसके बिलकुल अनोखा है।"

हैरते - रूए - गुलसे मुर्ग़-चमन
चुप है यों, बेज़बान है गोया।

फूलके, गुलाबके मुखपर व्यक्त हैरतसे, आश्चर्यसे चमनका पक्षी यों चुप है जैसे बेज़बान हो।

कहा मैंने कितना है गुलका सबात[४]
कली ने यह सुनकर तबस्सुम[५] किया।
जिगरमें ही एक क़तरा[६] ख़ूँ है सरश्क[७],
पलक तक गया तो तलातम[८] किया।

× ×

दावा किया था गुलने तेरे रुख़से बाग़में,
सेली[९] लगी सबाकी सो मुँह लाल हो गया।

गुल (गुलाब) लाल होता है उससे प्रियतमाके कपोल या चेहरेकी उपमा दी जाती है उसी गुलके लाल रंगपर 'मीर' मज़मून बाँधते हैं। क्यों है यह लाल रंग ? कहते हैं कि उद्यानमें गुलाबने तेरे मुँहसे बराबरीका दावा किया था। इसपर प्रभातीने ऐसा तमाचा मारा कि उसका मुँह लाल हो गया।

१. चित्ताकर्षक। २. अभिव्यक्ति, प्रकट करनेका ढंग। ३. स्वाभाविक। ४. स्थिरता। ५. मुसकराहट। ६. बिन्दु। ७. अश्रुबिन्दु। ८. बाढ। ९. तमाचा।

विलक्षणता :

काव्यके कला-सौन्दर्यमें विलक्षणताका स्थान बहुत ऊँचा है। जिन बातों को हम रोज़ देखते-सुनते हैं उन्हींको कवि एक विलक्षण रूपमें हमारे सामने उपस्थित करता है। मीरके काव्यमें ऐसे शेरोंका बाहुल्य है जो यूँ साधारण हैं पर अपनी विलक्षणताके कारण श्रेष्ठ काव्य-भूमि पर उठ गये हैं।

कहते हो, इत्तिहाद[१] है हमको,
हाँ, कहो एतमाद[२] है हमको।

× ×

बेकली, बेख़ुदी कुछ आज नहीं,
एक मुद्दतसे वह मिज़ाज नहीं।

विरहमें सब रोते हैं; आँसू गिराते हैं पर यह नियंत्रण, यह ठहराव देखिए :—

पासे नामूसे इश्क़[३] था वर्ना
कितने आँसू पलक तक आये थे।

× ×

दिल किस क़दर शिकस्ता हुआ था कि रात मीर,
जो बात लबपै आई वह फ़रियाद हो गयी।

× ×

एक समय हम आग थे, तप रहे थे। अब ख़ाक हैं; मिट्टीमें मिल गये हैं। वह आरंभ था, यह अन्त है। (याद रहे कि हर आग अन्तमें राख—

१. मैत्री, लगाव। २. भरोसा, विश्वास। ३. प्रेमकी बदनामीका ख़्याल।

ख़ाक—हो जाती हैं)। इस प्रकार प्रेममें अपने मिटनेके गौरवको, अत्यन्त दर्द भरे ढंगपर, प्रदर्शित किया है :—

आग थे इब्तिदाए इश्क़में हम,
अब जो हैं ख़ाक इन्तिहा है यह।

पतंगने, प्रेमीने, न जाने क्या निवेदन किया कि शमा, सुबह तक सिर धुनती रही। निवेदनका विलक्षण प्रभाव है :—

सुबह तक शमा सिरको धुनती रही,
क्या पतंगेने इल्तिमास किया।

प्रेमकी चोटको छिपानेकी विवशताका वर्णन करते हैं :—

हाय उस ज़ख़्मिए शमशीरे मुहब्बतका[1] जिगर,
दर्दको अपने जो नाचार छिपा रखता हो।

उस प्रेमकी तलवारके घायल हृदयकी क्या कहें जो विवश होकर अपनी वेदनाको छिपा ले।

व्यथातुरता :

मैं पहिले भी लिख चुका हूँ कि व्यथातुरतासे तो इनका सम्पूर्ण काव्य ही ओत-प्रोत है। कुछ ऐसे दर्दके साथ यह अपनी बात कहते हैं कि कलेजा मुँहको आता है। इनके दयारसे ऐसी व्यथातुर आवाज़ आती है मानो हज़ारों हसरतें गले मिलकर रो रही हों; एक दिलोंको छूने वाली आवाज़, दिमाग़को बेचैन कर देने वाली आवाज़, वह आवाज़ जो उठती है तो सब पर छा जाती है, जैसे आँसुओंकी घटा हो जो मनके आकाश पर सदाके लिए छा गयी हो। बेचैनीका यह हाल है कि दुश्मनोंसे कहते

१. प्रेमकी तलवारका घायल।

फिरते हैं कि अब तुम लोग उससे मिलनके लिए आशीर्वाद दो, प्रार्थना करो।

यह इज़तिराब[१] देख कि अब दुश्मनोंसे भी,
कहता हूँ, उससे मिलनेकी अब तुम दुआ करो।

फरहाद, शीरींके प्रेममें अपना काम करता ही रहा कि मौतने उसे दुनियाके परदेसे उठा दिया। अब उसकी अधूरी लालसाएँ, उसके बाद, अपने सिर धुन रही हैं।

हसरतें उसकी सिर पटकती हैं,
मर्गे फ़रहाद[२] क्या किया तूने ?

मुँहसे तो वह बोलते नहीं, पर आँखोंके इशारेसे दिलका हाल पूछ लिया करते हैं। व्यथा अन्तरको यों कुरेद रही है कि इस बार जो आँखोंसे दिलका हाल पूछा तो रक्तकी एक बूँद टपक पड़ी !

कहीं भी तुम्हारा नाम आ जाता है, या मुझे ही याद आ जाती है, तब आँखें भर आती हैं। इतनी व्यथा अब कब तक सहूँगा; जीनेके लिए कहाँसे पत्थरका कलेजा लाऊँ ? जब कोई तुम्हारा नाम लेता है तो दिलको थाम-थाम लेता हूँ।

जब नाम तेरा लीजिए तब चश्म[३] भर आवे
इस ज़िन्दगी करनेको कहाँसे जिगर आवे ?
हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया।
तो दिल सितमज़दहको हमने थाम-थाम लिया॥

१. बेचैनी। २. फरहादकी मृत्यु। ३. आँख।

कभी-कभी हम निराशाभरी दृष्टि तुमपर डाल लेते थे; उतना ही हमारा सुख था पर अब देखता हूँ कि तुम मुझसे मुँह भी छिपाकर चले जा रहे हो, यह क्या बात है ?

कोई नाउमीदाना करते निगाह,
सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले ।

बहार आई है । कलियाँ मुसकराई हैं; फूल खिले हैं; डालियाँ सिजदेमें झुक गयी हैं; सुरभित वायु दिलोंको गुदगुदाती है पर उस ग़रीब पंखीका क्या, जो क़फ़समें, पिंजरेमें पड़ा, तड़प रहा है । कभी उम्मीद थी कि छूट-कर अपने घोंसले तक पहुँचेंगे किन्तु अब तो पंख भी गिर गये, रिहाईकी कोई उम्मीद नहीं रह गयी :—

बालो पर भी गये बहारके साथ,
अब तवक्का[१] नहीं रिहाई की ।

× × ×

प्रेमकी बेचैनीमें आँसू निकल ही आते हैं । ऐ उपदेशक ! तू रोनेको मना करता है पर हमारी विवशताको नहीं देखता ?

आजकल बेक़रार हैं हम भी,
बैठ जा चलनेहार हैं हम भी ।
मना गिरिया[२] न कर तू ऐ नासेह[३] ।
इसमें बेइख़्तियार[४] हैं हम भी ।

कहते हैं, मनकी अभिलाषा है कि चाहूँ तो सिर्फ़ तुमको चाहूँ, देखूँ तो सिर्फ़ तुम्हें देखूँ । तुम्हीं मेरे दिलकी आकांक्षा हो, तुम्हीं मेरी आँखोंकी अभिलाषा हो :—

१. आशा । २. रोदन । ३. उपदेशक । ४. लाचार ।

चाहें तो तुमको चाहें देखें तो तुमको देखें,
ख्वाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम ।

चित्रकारी :

स्वभावत: प्रेममें लज्जा होती है । इसका एक चित्र है :—

मीरसे पूछा जो मैं आशिक़ हो तुम
होके कुछ चुपकेसे शरमाये बहुत ।

प्रेमके दीवानेपनका एक चित्र है :—

कहता था किसूसे कुछ तकता था किसूका मुँह,
कल मीर खड़ा था याँ सच है कि दिवाना था ।

जब सौन्दर्य खीझता है, क्रुद्ध होता है तो उसका आकर्षण बढ़ जाता है । वह ग़ुस्सेसे ओठोंमें कुछ कह रहे हैं :—

ज़ुल्म है क़हर है क़यामत है,
ग़ुस्सेमें उसके ज़ेरे लबकी बात ।

बज़्म—महफ़िलमें आमने-सामने पड़ गये हैं । न देखा जाता है, न आँखें ही नीची किये रहा जाता है । इसी अवस्थाका चित्र है:—

बज़्ममें मुँह उधर करें क्योंकर ,
और नीची नज़र करें क्योंकर ?
यों भी मुश्किल है वों भी मुश्किल है
सर झुकाये गुज़र करें क्यों कर ?

शोख़ी और शरारतका एक चित्र है:—

मैं कहा देखो इधर टुक तुम तो मैं भी जान दूँ
हँसके बोले यह तेरी बातें हैं फिर देखेंगे हम ।

क्या सही तस्वीर है:—

उससे घबराके जो कुछ कहनेपै आ जाता हूँ।
दिलकी फिर दिलमें लिये चुपका चला जाता हूँ।

अनुभूतियोंका साधारणीकरण :

मीरने बहुत सहा है, बहुत कठिनाइयाँ झेली हैं पर अपनी अनुभूतियों को दूसरोंकी अनुभूतियोंसे मिला दिया है। वे उनकी अनुभूतियाँ तो हैं ही पर परिधिसे निकल कर वे सबकी अनुभूतियाँ हो गयी हैं। उनकी वेदना युग-वेदनामें समा गयी है या यह कहें तो ज़्यादा ठीक होगा कि युग-वेदना उनकी वेदनामें समा गयी है। उन्होंने बड़ों-बड़ोंको मिटते देखा है; आँखोंके सामने सिंहासन उलटते देखे हैं, इसलिए वह खुद अपनेको समझते हैं:—

ज़ेरे फ़लक[1] भला तू रोये है आपको मीर,
किस-किस तरहका आलम याँ ख़ाक हो गया है।
सर मारना पत्थरसे या टुकड़े जिगर करना,
इस इश्क़की वादीमें हर नूअ[2] बसर करना।
हम तौर इश्क़से तो वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन,
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है।
तकलीफ़ दर्दे-दिलकी अबस हमनशींने ली,
दर्दे सख़ुनने मेरे सभोंको रुला दिया।
यारब! कोई तो वास्ता सरगश्तगीका है,
एक इश्क़ भर रहा है ज़मीं-आसमानमें।

१. आकाशके नीचे। २. प्रकार।

शहाँ कि कहले जवाहर[1] थी ख़ाके पा[2] जिनकी,
उन्हींकी आँखोंमें फिरते सलाइयाँ देखीं।

× ×

शिकवा[3] करूँ हूँ बख़्त[4] का इतने ग़ज़ब न हो बुताँ,
मुझको ख़ुदा नख़ास्ता तुमसे तो कुछ गिला[5] नहीं।
चश्म सफ़ेद व अश्क सुर्ख़[6] आह दिले हज़ीं[7] है याँ,
शीशा[8] नहीं है, मय[9] नहीं, अब्र[10] नहीं, हवा नहीं।

× ×

शिष्टता और मानवता :

मीरपर शिष्टताके संस्कार ऐसे पड़े हैं कि शायद ही कभी उनके काव्यमें ओछेपनकी झलक आई हो। वह इंसानको, मनुष्यको बहुत ऊँचा स्थान देते हैं, इसलिए कभी नीचेकी सतह पर होनेमें उन्हें ख़ुशी नहीं। वह अपने प्रियतमके दोषोंको बहुत सँभाल कर कहते हैं। शब्दोंके चयनमें भी बड़ा ख़्याल रखते हैं। मानवकी उच्चताके सम्बन्धमें वह कहते हैः—

मरता हूँ मैं तो आदमे ख़ाकी[11] की शान पर,
अल्लाह रे दिमाग़ कि है आसमान पर।

× ×

वह लोग तुमने एक ही शोख़ीमें खो दिये,
पैदा किये थे चर्ख़ने[12] जो ख़ाक छान कर।

१. रत्नांजन २. चरण-धूलि। ३. उपालम्भ। ४. भाग्य। ५. शिकायत। ६. लाल आँसू, रक्ताश्रु ७. दुखी दिल। ८. आईना, मद्यकी सुराही, दिल। ९. मद्य। १०. बादल। ११. मिट्टीका पुतला आदमी। १२. आसमाँ।

आदमे ख़ाकीसे आलमको जिला[१] है वर्ना,
आईना था तो मगर क़ाबिले दीदार[२] न था।

शब्द और अर्थका सन्तुलन :

उर्दू शायरीमें यह गुण बहुत कम पाया जाता है। इसमें शब्दोंका चुनाव गर्भित अर्थके वातावरणके अनुकूल होता है। काव्य-कलाका यह बड़ा दुष्कर पक्ष है। इसमें समानार्थकवाची दूसरे शब्द रख देनेसे वह सौन्दर्य, वह मज़ा नहीं रह जाता। पैनी दृष्टि और शब्दोंके ध्वन्यात्मक ज्ञानसे कविमें यह गुण आता है। नवाब मिर्ज़ा जाफर अली खाँ 'असर' अपनी पुस्तक 'मज़ामीर' में इस विषयमें मीरकी विशेषताओंकी चर्चा करते हुए लिखते हैं:—"मग़रबी शायरी[३] में यह सनअत[४] सिर्फ़ हवास ज़ाहरी[५] के मुशाहदात[६] के फ़र्ज़[७] को पूरा करती है; मस्लन्[८] दरियाकी रवानी,...यह बात नहीं कि सौत[९] या नशस्ते अलफ़ाज़[१०] किसी जज़्बे[११] या क़लबी वारदात[१२] की पेशखानी[१३] करे। यह मीरके कमालेफ़न[१४] का मोजिज़ा[१५] है कि उसने उर्दू शायरीमें, जिसपर सख़्त क़यूद[१६] आयद[१७] हैं....वह ख़ूबियाँ पैदा कर दी हैं जो मग़रबी शायरीमें, इतनी आज़ादी पर भी मादूम[१८] हैं।"

उदाहरण लीजिए:—

कुछ करो फ़िक्र मुझ दिवानेकी।
धूम है फिर बहार आनेकी॥

१. दीप्ति, शोभा। २. देखने योग्य। ३. पाश्चात्य काव्य। ४. शिल्प। ५. बाह्य भाव। ६. निरीक्षण। ७. कर्तव्य। ८. जैसे, उदाहरणतः। ९. ध्वनि। १०. शब्द बिठाना, शब्द-योजना। ११. मनोभाव। १२. हार्दिक घटना। १३. पूर्वाभास। १४. श्रेष्ठ शिल्प। १५. चमत्कार। १६. नियम, बन्धन। १७. लागू। १८. अप्राप्य, अस्तित्वहीन।

असर साहब लिखते हैं:—"पहले मिसरेसे कितनी घबराहट ज़ाहिर होती है! अलफ़ाज़[1] और उनकी तरतीब[2] ऐसी है कि आदमी जल्द पढ़ने पर मजबूर है जिससे पता चलता है कि इस शख़्सको अपनेमें वह तग़य्युरात[3] महसूस[4] होना शुरू हो गये जो एक मर्तबा पहिले दीवानगीका पेशख़ेमा[5] बन चुके हैं····दूसरे मिसरेमें लफ़्ज़ धूम ऐसी जगह वाक़अ[6] है कि मालूम होता है, ढोल-ताशे, बाजे बज रहे हैं, बहारका लश्कर जूक़ दर जूक़[7] उमड़ा चला आ रहा है और इस ग़रीबका ख़िरमने-सब्रो-होश[8] ताराज[9] किये देता है।"

कुछ और उदाहरण लें:—

यारो मुझे मुआफ़ करो, मैं नशेमें हूँ,
अब दो तो जाम[10] ख़ाली ही दो, मैं नशेमें हूँ।

शेर पढ़नेसे ऐसा मालूम होता है कि ठीक नशेकी हालत है। नशेका वातावरण ही बन गया है।

आलम आलम इश्क़ो जूनूँ है दुनिया दुनिया तहमत है।
दरिया दरिया रोता हूँ मैं सेहरा सेहरा[11] वहशत[12] है॥

और भी:—

आँखोंमें जी मेरा है, उधर देखता नहीं,
मरता हूँ मैं तो हाय रे सर्फ़ा[13] निगाहका।

१. लफ़्ज़ (शब्द) का बहुवचन। २. क्रम। ३. परिवर्तन। ४. अनुभव। ५. पूर्व लक्षण। ६. स्थित। ७. भीड़ पर भीड़। ८. धीरज और चेतनाके खलिहान पर। ९. विनष्ट। १०. प्याला। ११. जंगल, रेगिस्तान। १२. पागलपन। १३. गुज़ारना, व्यय होना।

गागरमें सागर :

यह मीरकी अपनी विशेषता है। हिन्दीमें जैसे बिहारी अपने छोटे दोहोंमें एक दुनिया चित्रित कर जाते हैं, दोहे—'जो देखनको छोटे लगें घाव करें गम्भीर'; उसी प्रकार मीरके छोटे-छोटे शेरोंमें एक दुनिया छिपी हुई है। शब्द थोड़े और भाव अधिक। जैसे उसके दिलमें एक बेक़रार समुद्र लहरें मार रहा है वैसे ही उसके शेरोंमें भी भावोंका एक घनीभूत संसार है। इनकी इस विशेषताकी चर्चा करते हुए अल्लामा तबातबाई लिखते हैं :—

"चन्द लफ़्ज़ोंमें मानिए कसीर[१]का अदा करना ईजाज़[२] नहीं, ऐजाज़[३] समझिए—दानेकी गिरहमें खिरमन[४], गुंचे[५]की मुट्ठीमें गुलशनका[६] समा जाना तो देखिए।"

सचमुच ही मीरने एक दानामें अन्न-भाण्डार और एक मुकुलमें पुष्पोद्यान भर दिया है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

लुत्फ़[६]पर उसके हमनशीं[७] मत जा,
कभू हमपर भी मेह्रबानी थी।

या

मर्गे मजनूँसे अक़्ल गुम है मीर
क्या दिवानेने मौत पाई है!

× ×

मेरे तग़य्युरे हाल[८] पर मत जा
इत्तिफ़ाक़ात हैं ज़मानेके।

× ×

१. बहुत। २. संक्षिप्तीकरण। ३. चमत्कार। ४. खलिहान। ४. मुकुल। ५. पुष्पोद्यान। ६. कृपा। ७. साथी। ८. अवस्थान्तर।

कहा मैंने कितना है गुलका सबात[1],
कलीने यह सुनकर तबस्सुम[2] किया।

× ×

मत तुरबते[3] मीरको मिटाओ,
रहने दो ग़रीबका निशाँ तो।

रचनाकी क्रमबद्धता :

फिर मीर रचनाके विभिन्न अंगोंमें जो क्रमबद्धता और सामञ्जस्य रखते हैं वह भी उनकी बड़ी विशेषता है। इसके सिवा जिस रचनामें कर्ता, कर्म, सम्बन्ध, क्रिया इत्यादि क्रमसे आवें, जिस क्रमसे प्रायः हम उन्हें बोलते हैं, वह रचना विशेषतः ग़ज़लमें श्रेष्ठ है। क्योंकि ग़ज़ल, वस्तुतः दो प्रेमियों, प्रेमी और प्रियतम, का वार्तालाप है। जो उसमें वार्तालाप की यह स्वाभाविकता जितना ही रख सकता है वह उतना ही बड़ा ग़ज़लगो है। देखिए :—

मीर इन नीमबाज़ आँखोंमें,
सारी मस्ती शराबकी-सी है।

× ×

मीर साहब रुला गये सबको
कल वह तशरीफ़ याँ भी लाये थे।

× ×

सिरहाने मीरके आहिस्ता बोलो,
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।

१. अस्तित्व। २. मुसकान। ३. क़ब्र, समाधि।

बिल्कुल यह मालूम होता है जैसे बातचीत हो रही है। रोज़के वही थोड़ेसे शब्द हैं जिन्हें हम बोलते हैं पर उनमें क्या असर पैदा हो जाता है। बातोंका यह वातावरण, सदा, अपनी ग़ज़लोंमें रखनेकी चेष्टा वह करते हैं, बल्कि उन्होंने प्रायः अपनी ग़ज़लोंको "बातें" ही कहा है:—

बातें हमारी याद रहें फिर बातें ऐसी न सुनिएगा।
पढ़ते किसूको सुनिएगा तो देर तलक सिर धुनिएगा।
पढ़ते फिरेंगे गलियोंमें इन रेख़्तोंको लोग,
मुद्दत रहेंगी याद यह बातें हमारियाँ।

वार्तालापका वास्तविक वातावरण उत्पन्न करनेके लिए यह बातचीतमें प्रयुक्त सम्बोधनोंका भी उपयोग ख़ूब करते हैं, जैसे मियाँ, भाई, साहब, मीरजी, ज़ालिम, प्यारे इत्यादि।

मुहाविरोंका प्रयोग :

मुहाविरोंके प्रयोगमें 'मीर' की सफलताको कोई न पासका। बस—थोड़ा बहुत ग़ालिब सफल हुए हैं। 'दाग़'ने अन्तिम युगमें मुहाविरोंको काव्यमें बिठाया पर उनमें कृत्रिमताका वातावरण है। मीरकी ख़ूबी यह है कि वह मुहाविरेके लिए मुहाविरेका प्रयोग नहीं करते बल्कि आपसकी बातचीतको प्रभावोत्पादक बनानेके लिए उनका प्रयोग करते हैं—यहाँ तक कि यह मालूम ही नहीं पड़ता कि वह मुहाविरेका प्रयोग कर रहे हैं। मौलाना मोहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ने ठीक ही लिखा है:—

"वह दिलके ख़्यालातको, जो कि सबकी तबीयतोंके मुताबिक़ हैं, मुहाविरेका रंग देकर बातों-बातोंमें अदा कर जाते हैं।"

देखिए:—

अब तो जाते हैं बुतक़देसे मीर,
फिर मिलेंगे अगर ख़ुदा लाया।

× ×

दिल वह नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके,
पछताओगे, सुनो हो, यह बस्ती उजाड़कर ।

× ×

बेहोशी सी आती है तुझे उसकी गलीमें
गर हो सके ऐ मीर ! तो इस राह न जा तू ।

× ×

क्या हाल हो गया है तेरे ग़ममें मीरका,
देखा गया न हमसे तो टुक इस जवाँकी ओर ।

× ×

वाइज़े नाक़िसकी बातोंपर कोई जाता है मीर,
आओ मैख़ाने चलो तुम किसके कहने पर गये ।

व्यंग्य :

व्यंग्य काव्य-कलाका श्रेष्ठ अंग है। मीरका व्यंग्य भी एक विशेष प्रकारका है। उसमें बड़ी स्वाभाविकता है और उनके कहनेमें जो गहरा दर्द होता है उसीमें से प्रच्छन्न व्यंग्यकी किरणें अपने-आप फूट पड़ती हैं। डा० फारुक़ीने लिखा है:—

"उर्दू ग़ज़लमें तंज़[१] की मिसालें[२] 'ग़ालिब' और 'मोमिन'के यहाँ भी मिलती हैं। ग़ालिबके तंज़में शोख़ी है, दिल बरश्तगी[३] नहीं। मोमिनके यहाँ वह ज़ख़्मे तेग़[४] है·········मीरके तंज़में धीमापन है, हलकी-हलकी टीस है। इसकी मिसाल उस नश्तरकी-सी है जिसकी धार निहायत बारीक और तेज़ हो।"

१. व्यंग्य। २. उदाहरण। ३. दिलकी जलन। ४. तलवारका घाव।

उसकी ईफ़ाए-अहद[1] तक न जिये,
उम्रने हमसे बेवफ़ाई की।

यह नहीं कहते कि उसने अपने वादेको पूरा नहीं किया। या बेवफ़ाई की। कहते हैं:—"उम्रने हमारे साथ बेवफ़ाई की कि उसके वादेकी पूर्ति तक हम जी ही न पाये।" कैसा छिपा गहरा, व्यंग्य है।

दिल कि दीदारका क़ातिलके बहुत भूका था,
इस सितमकुश्तासे एक ज़ख़्म भी खाया न गया।

मेरा दिल क़ातिलके दर्शनोंका बहुत भूखा था पर अत्याचार-पीड़ित इस बेचारेसे एक ज़ख्म भी खाया न गया।

यहाँ दिलकी दुर्बलता, उसकी भूख और खानेको लेकर कैसा व्यंग्य है। 'ज़ख्म खाना' मुहाविरेको भी ख़ूब निभाया है।

शिकवए आबला[2] अभीसे मीर,
है पियारे हनोज़[3] दिल्ली दूर।

अरे मीर, तुझे अभीसे छाले पड़नेकी शिकायत है। प्यारे! अभी तो दिल्ली दूर है।

इसमें भी व्यंग्यके साथ 'दिल्ली दूर' है मुहाविरेको किस ख़ूबीके साथ निबाहा है।

एक शेर देखिए—

होगा किसी दीवारके सायेके तले मीर,
क्या काम मोहब्बतसे है उस आरामतलबको।

डॉ० मौलवी अब्दुल हक़ इस शेरपर मुग्ध हैं। लिखते हैं:—"इस शेरका हुस्न[4] शरह[5] और बयानसे बाहर है। 'आरामतलब' का लफ़्ज़

---

१. प्रण-पालन। २. छाले पड़नेकी शिकायत। ३. अब भी। ४. सौन्दर्य। ५. व्याख्या।

इसकी जान है।''''''एक शख्स जो मोहब्बतके कारन ऐशो-आरामपर लात मारके और घरबार छोड़कर, बेयार व बेख़ानुमां, आवारा व सरगरदाँ, महबूब[1] की दीवारके नीचे पड़ा है उसे ताना दिया जाता है कि आरामतलब है और ऐसे आरामतलबको मोहब्बतसे क्या काम ? जब यह आरामतलबी है तो क़यास[2] करना चाहिए कि मोहब्बतकी मुसीबत क्या होगी ?''

उपमाएँ और रूपक :

मीर अलंकारवादी नहीं हैं। वह अलंकारोंका प्रयोग कम ही करते हैं। वह उन लोगोंमें से हैं जो सौन्दर्यको कृत्रिम उपकरणोंसे सजाये बिना, उसके स्वाभाविक सम्मोहनके भक्त हैं। जहाँ वे अलंकारों—मुख्यत: उपमा रूपक उत्प्रेक्षा आदि—का प्रयोग करते हैं वहाँ यों करते हैं कि निगाह स्वाभाविक सौन्दर्यकी तरफ़, खुदादाद हुस्नकी ओर, जाती है, इन गहनोंकी तरफ़ नहीं। ये अलंकार उनके यहाँ, सौन्दर्यका अंग बनकर रह जाते हैं। फिर ये अलंकार अपनेमें भी बहुत सीधे-सादे हैं जैसे फूलपर ओसकी बूँदे होती हैं। इन अलंकारोंके कारण शेरोंमें कोई उलझाव पैदा नहीं होता बल्कि वे और चमक उठते हैं।

उसके गये पे दिलकी ख़राबी न पूछिए,
जैसे किसीका कोई नगर हो लुटा हुआ।

सीधी-सादी उपमा है पर कितनी ठीक बैठती है।

शामहीसे कुछ बुझा-सा रहता है
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिसका।

दुखिया दिलको ग़रीबका टिमटिमाता दीपक कहकर मीरने कहनेके ढंगकी सादगीमें इस रूपकको ऐसा जड़ दिया है जैसे अँगूठीमें नगीना हो।

१. प्रियतम। २. अनमान।

इनके छोटे सीधे-सादे शेर तो गजबके हैं:—

खिलना कम-कम कलीने सीखा है,
उसकी आँखोंकी नीमख़्वाबीसे।

× ×

नाज़ाकी उसके लबकी क्या कहिए,
पंखड़ी एक गुलाब की-सी है।

बिना अलंकारके भी शब्दोंकी योजनासे चित्रकारी वा अलंकरणका उदाहरण देखिए:—

ज़िन्दांमें भी शोरिश[1] न गयी अपने जुनूँकी,
अब संग[2] मुदावा[3] है इस अशुफ़्तासरी[4] का।

'असर' लखनवी इस शेर पर मुग्ध होकर लिखते हैं:—"इस शेरमें लफ़्ज़ संग ऐसी जगह वाक़अ[5] है कि मालूम होता है एक पाबज़ंजीर[6] दीवानेने, जो हाथमें पत्थर लिये हुए है, पहिला मिसरा पढ़ा और दाँत भीचके आँखें बन्द करके पत्थरसे सिर फोड़ लिया और लहूमें नहा गया, हालाँकि शेरमें इन अमूर[7] का ज़िक्र नहीं।"

संगीतात्मकता:

काव्य और संगीतका सम्बन्ध गहरा है। जिस काव्यमें जितनी ही संगीतमयता होती है उसका प्रभाव उतना ही ज़्यादा होता है। चूँकि ग़ज़ल भी एक प्रकारका गीति-काव्य (लीरिक) है इसलिए उसमें संगीतात्मकता बहुत आवश्यक है। मीरमें काफ़ी संगीतात्मकता है। इसके अनेक स्रोत हैं जैसे कभी उपयुक्त ध्वन्यात्मक शब्दोंको गूँथकर, कभी

---

१. हंगामा। २. पत्थर (जिससे दीवाना अपनेको या दूसरोंको मारता है) ३. चिकित्सा, इलाज़। ४. पागल दिमाग़ी। ५. स्थित। ६. शृंखलाबद्ध (पाँवमें)। ७. कार्यों, बातों, विषयों।

प्रवाह एवं तीव्रगति-प्रधान छन्दोंका प्रयोग करके, कभी तुकान्तकी पुनरुक्ति द्वारा।

नमूने देखिए:—

कुछ मौज़ हवा पेचाँ ऐ मीर नज़र आई।
शायद कि बहार आई, जंजीर नज़र आई।

छन्द-विधान द्वारा संगीतात्मकताके उदाहरण लीजिए:—

सब्र कहाँ जो तुमको कहिए लगके गलेसे सो जाओ।
बोलो न बोलो बैठो न बैठो खड़े-खड़े टुक हो जाओ।

× ×

जब मिलनेका सवाल करूँ हूँ ज़ुल्फोरुख़ दिखलाते हो।
बरसों मुझको यूँ ही गुज़रे सुबह व शाम बताते हो।

× ×

तू भी रबाते कुहनसे सूफ़ी सैरको चल टुक सब्ज़ोंकी,
अब्रे सियह[1] क़िबला[2] से आकर झूम पड़ा मैख़ानों पर

× ×

करो तवक्कुल[3] कि आशक़ीमें न यों करोगे तो क्या करोगे ?
अलम[4] जो यह है तो दर्दमन्दो कहाँ तलक तुम दवा करोगे ?

यह छोटी बहरकी ग़ज़ल देखिए, मालूम होता है, दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा है:—

फ़क़ीराना आये सदा कर चले।
मियाँ, खुश रहो हम दुआ कर चले।

१. काला बादल। २. काबा। ३. भगवान्के भरोसे अपनेको छोड़ देना। ४. दुःख।

कोई नाउमीदाना करते निगाह,
सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले,
परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत तुझे,
नज़रमें सबोंकी ख़ुदा कर चले।

× ×

इस अहद[1] में इलाही मुहब्बतको क्या हुआ,
छोड़ा वफ़ाको उनने मुहब्बतको क्या हुआ ?
उम्मीदवार वादए दीदार मर चले,
आते ही आते यारो क़यामतको क्या हुआ ?

× ×

तुकोंकी पुनरुक्ति द्वारा संगीतात्मकताका एक उदाहरण नीचे देता हूँ:—

मौसिम है निकले शाखोंसे पत्ते हरे-हरे।
पौधे चमनमें फूलोंसे देखे भरे-भरे।
आगे किसूके क्या करें दस्ते तमअ[2] दराज़[3],
वह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे।
गुलशनमें आग लग रही थी रँगे गुलसे मीर,
बुलबुल पुकारी देखके साहब परे-परे।

फ़ारसी उक्तियोंका उपयोग :

इन्होंने फ़ारसी उक्तियोंका जगह-जगह प्रयोग करके उर्दू भाषाके प्रयोग-क्षेत्रको विस्तृत किया है। इनके पहले इनके गुरु 'आरज़ू' ने फ़ारसी

१. युग। २. लोभपूर्ण हाथ। ३. फैलाना।

तरकीबों और शब्दोंका काफ़ी प्रयोग किया था। मीरने बचपनमें उनके संसर्गका ख़ूब लाभ उठाया था, इसलिए इनकी भाषा और प्रारम्भिक रचना-प्रणालीपर उनका बहुत असर दिखाई पड़ता है। वैसे फ़ारसी उक्तियोंका थोड़ा-बहुत प्रयोग पुराने उर्दू कवियोंमें से अधिकांशने किया है। मोमिन और ग़ालिबने इस ओर काफ़ी ध्यान दिया है पर मीरकी विशेषता यही है कि उन्होंने केवल उन्हीं उक्तियोंको लिया है जो उर्दूके रचना-विधानमें फ़िट हो जाती हैं। फ़ारसी शब्दों एवं तरक़ीबोंके प्रयोगमें यह निश्चित रूपसे अपने गुरु, जिनसे बादमें दिल खट्टा हो गया, ख़ाँ आरज़ू के ऋणी हैं क्योंकि इन्होंने ऐसे अनेक शब्दोंका प्रयोग किया है जिनका चलन उठ गया है पर ख़ाँ आरज़ूके कोश 'चिराग़े हिदायत'में वे ज्योंके त्यों मिलते हैं, (जब अन्य कोशोंमें अप्राप्य हैं)।

बहर-हाल फ़ारसी तरकीबोंका अच्छा प्रयोग मीरमें मिलता है—

सरनशीने रहे मैख़ाना हूँ, मैं क्या जानूँ,
रस्मे मस्जिदके तईं शेख़ कि आया न गया।

× ×

हंगामा गर्मकुन जो दिले नासबूर।
पैदा हरएक नालासे शोरे नशूर था।

फ़ारसी मुहाविरों पर उर्दू बन्द लगाकर इन्होंने नया आविष्कार किया है। फ़ारसी मुहाविरोंके अनुवाद भी इनकी रचनामें पाये जाते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए।

'खुशमनमें आयद' यह फ़ारसीका एक मुहाविरा है। इसका अर्थ होता है, 'मुझे भला नहीं लगता।' मीर साहब इसी मुहाविरेको उर्दूके साँचेमें यों ढालते हैं:—

नाकामी[1] सदहसरत[2] ख़ुश लगती नहीं वर्ना,
अब जीसे गुज़र जाना कुछ काम नहीं रखता ।

इसी प्रकार 'नमूद करदन' फ़ारसीका एक फ़िक़रा है । इसका अर्थ है 'प्रकट करना' । मीर लिखते हैं:—

नमूद[3] करके वहीं बहरेग़म[4] में बैठ गया,
कहो तो मीर भी एक बुलबुला था पानीका ।

अनेक स्थानों पर इनमें फ़ारसी कवियोंके काव्यकी छाया भी दिखाई पड़ती है । कहीं-कहीं तो दोनों एकदम टकरा गये हैं । उदाहरण लीजिए:—

किसी कविका फ़ारसी शेर है:—

बगिर्दे तुरबतम अमश्ब हुजूम बुलबुल बूद ।
मगर चिराग़े मज़ारम ज़रोग़ने गुल बूद ।

मीर साहबने भी वही बात कही है मगर ख़ूब कही है:—

जाय रोग़न दिया करे है इश्क़,
ख़ूने बुलबुल चिराग़में गुलके ।

बेदिलका एक फ़ारसी शेर है:—

ज़िन्दगी बरगर्दनम उफ़्ताद बेदिल चारानेस्त,
शाद-बायद ज़ीस्तन नाशाद बायद ज़ीस्तन ।

मीर साहब कहते हैं:—

गोशागीरी अपने बसमें है न है आवारगी,
क्या करें यों मीर साहब, बन्दगी बेचारगी ।

१. असफलता । २. बहुत (सौ) अफसोस है । ३. प्रकट । ४. दुःख-सागर ।

'सादी' का शेर है:—

दोस्तां मनअ कुनिन्दम कि चरा दिल बुतो दादम,
बायद अव्वल बतू गुफ़्तन कि चुनीं ख़ूब चराई।

मीर कहते हैं:—

चाहनेका हम पै यह ख़ूबाँ जो धरते हैं गुनाह,
इनसे भी पूछो कोई तुम इतने क्यों प्यारे हुए।

इन्होंने इस क्षेत्रमें भी अपने ऊपर कुछ नियम और बन्धन बना लिये हैं, ऐसा नहीं कि ग़ालिबकी भाँति जो मनमें आया लिख मारा।

भारतीय वातावरण और देशज शब्दोंका प्रयोग :

ख़ुद फ़ारसीके कवि और लेखक होकर भी 'मीर'ने खुल कर देशज शब्दोंका प्रयोग किया है जिससे भारतीयताका स्पर्श और वातावरण इनके काव्यमें मिलता है। साँझ, समय, विश्राम, योगी, विस्तार, निदान, अन्धाधुंध, राम-कहानी, गूदड़, चोट्टे, स्वभाव, ठिठुरा गयी, अच्छर (अक्षर) इत्यादि अनेकानेक शब्द ऐसे मज़ेसे इनकी ज़ुबानमें खप गये हैं कि क्या कहें। दुःख यही है कि बादमें यह प्रवृत्ति उर्दू काव्यमें कम होती गयी; फ़ारसी और अरबीका प्रभाव बढ़ता गया जिससे उर्दूमें एक विदेशी वातावरण पैदा हुआ और वह अन्य भारतीय भाषाओंसे दूर होती गयी। पिछले २५–३० वर्षोंमें गीत लिखने वाले कवियों तथा फ़िराक़ जैसे उर्दू शायरों ने इसे फिर भारतीय वातावरणमें लानेका प्रयत्न किया है। मीरके प्रयोग देखिए:—

दिन आजका भी साँझ हुआ इन्तज़ारमें।

× ×

इस समयमें देखने हमको बहुत आया करो॥

× ×

क्या बात थी कि जिसका यह विस्तार हो गया।

× ×

सुवहे पीरी शाम होने आई मीर,

तू न चेता यां बहुत दिन कम रहा।

अँधाधुन्ध रोते हैं आँखोंसे ख़ूँ।

× ×

अच्छर हैं तो इश्क़के दो ही लेकिन है बिस्तार बहुत।

यह सिर्फ़ कुछ शब्दोंके प्रयोगकी ही बात नहीं है। इनकी दृष्टिमें भी गहराई एवं विशालता थी। हिन्दू-मुसलमानके भेदसे वह परे थे। उनमें सूफ़ियों और संतोंका रंग था। वह दैरो-हरमकी पाबन्दियोंसे परे प्रेममें डूबे हुए थे और अकबराबाद और दिल्लीकी ज़मीनके प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। इन चीज़ोंने उनके काव्यको भारतीय रूप दे दिया है।

काव्य-दृष्टि :

मैं बार-बार लिख चुका हूँ कि व्यथानुभूति इनके समस्त काव्यकी जान है। वह शायरीको कोई पेशा नहीं मानते थे वरं एक 'संस्कृत-कला' मानते थे और उनका कहना था कि जब तक इंसानमें दिलका दर्द पैदा नहीं होता तब तक उसका इधर निगाह करना भी जुर्म है। उर्दू काव्य-को यह दर्दसे भरी दृष्टि देकर 'मीर'ने उसे निहाल कर दिया है। पर इतना ही बस नहीं है, उन्होंने भाषाकी स्वाभाविक गति और उसकी प्राकृतिक प्रेरणाओंको भी ग्रहण किया है। इसीलिए वे ऐसे ही शब्द चुनते हैं जिनपर तैरते हुए उनके भाव दिलोंमें प्रवेश कर जायँ। फ़ारूक़ी के शब्दोंमें "यह अशआर नहीं, शर्बतके घूँट हैं; ग़ज़लें नहीं, मीठी-मीठी बातें हैं। वह लफ़्ज़को बेजान और बेरूह चीज़ नहीं समझते थे।" उनका ऐसा प्रयोग करते हैं जैसे शब्द वहींके लिए बनाया गया हो।

तसव्वुफ़का रंग :

इन्हें हम सूफ़ी तो नहीं कह सकते पर इनपर इनके पिता, चचा एवं दूसरे दरवेशोंके सत्संगसे तसव्वुफ़का गहरा प्रभाव पड़ा है। दर अस्ल यह प्रेमके कवि हैं। जो संस्कार इन्हें पिता, चचा इत्यादिसे मिले उसके कारण यह विलासिताके रूपमें बिकनेवाले बाजारू प्रेमसे दूर रहे पर यह भी सच है कि इनका प्रेम ईश्वरीय प्रेम उतना नहीं जितना मानवीय है। बल्कि इनका मानवीय प्रेम ही ईश्वरीय प्रेमकी कोटि तक पहुँच गया है। जैसे :—

परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत तुझे,
नज़रमें सबोंकी ख़ुदा कर चले।

तुम्हारी इतनी उपासना की है कि सबकी दृष्टिमें तुम्हें ही ईश्वर बना दिया है।

प्रेमका रंग इनपर इतना गहरा है कि हर जगह उसे ही देखते हैं :—

इश्क़ ही इश्क़ है जहाँ देखो,
सारे आलममें भर रहा है इश्क़।
इश्क़ माशूक़ इश्क़ आशिक़ है,
यानी अपना ही मुब्तला है इश्क़।

× ×

कहीं बन्दा कहीं ख़ुदा है इश्क़।

× ×

आरज़ू इश्क़ मुद्दआ है इश्क़।

× ×

मुहब्बत ही इस कारख़ानेमें है।
मुहब्बत ही सब कुछ ज़मानेमें है।

तसव्वुफ़का मूलाधार सर्वग्राही प्रेम ही है—वह प्रेम जिसमें द्वन्द्व (दुईका भाव) उठ जाता है; शत्रु-मित्रका भेद-भाव दूर हो जाता है। उर्फ़ीका यह कथन कि उसकी निगाहमें 'परवाना चिराग़ हरमोदेर नदानद' (शलभ और दीपक, मन्दिर, मस्जिदमें भेद नहीं) मीरमें इसका हलका रंग है :—

मज़हबसे मेरे क्या तुझे, मेरा दयार और।
मैं और, यार और, मेरा कारबार और।

× ×

किसको कहते हैं नहीं मैं जानता इस्लामो कुफ़्,
देर हो या काबा मतलब मुझको तेरे दरसे है।

इसके अतिरिक्त इनके काव्यमें तसव्वुफ़की गहराईके भी अनेक रंग मिलते हैं। यह 'लाहूत' (आराध्यमें विलीन होनेकी अवस्था) का रंग देखिए :—

बेख़ुदी ले गयी कहाँ हमको
देरसे इन्तज़ार है अपना।

× ×

ख़बर कुछ तो आई है उस बेख़बर तक।

हृदयकी पूजा चल रही है। इसमें ज्ञात होता है कि सब खज़ाना इसी दिलमें छिपा है। इस दिलकी आग अगर प्रज्वलित कर दीं जाय तो इस विद्युत्का एक कण सौ कोहे तूरके बराबर हो सकता है। कहते हैं :—

गाफ़िल थे हम अहवाले दिले खस्तासे अपने,
वह गंज[1] इसी कुंजे ख़राबामें निहाँ[2] था।

१. खजाना। २. छिपा।

आतिश[1] बुलन्द[2] दिलकी न थी वर्ना ऐ कलीम[3] !
यक शोला[4] बर्क़[5] ख़िरमने सद[6] कोहे तूर[7] था।

× ×

तरीक़े इश्क़में है रहनुमा[8] दिल।
पयम्बर[9] दिल है क़िबला[10] दिल ख़ुदा दिल।

इस रहस्यात्मकताको देखिए :—

अपने ख़याल हीमें गुज़रती है अपनी उम्र
पर कुछ न पूछो समझे नहीं जाते हमसे हम।

उनके और हमारे बीच यह जीवन ही एक परदा है। 'हम' न हों तो फिर इस लज्जावरणकी क्या ज़रूरत ?

हस्ती[11] अपनी है बीचमें पर्दा,
हम न होवें तो फिर हिजाब[12] कहाँ ?

× ×

तत्त्व-ज्ञान और जीवन-दृष्टि :

मीरने तेज़ीसे दुनियामें होने वाले परिवर्तनोंको देखा। इससे जीवनकी अस्थिरता एवं संसारकी असारता उनके दिल पर जम गयी। वह समझते

१. आग। २. ऊँची। ३. ईश्वरसे बातें करनेवाला (हज़रत मूसा)। ४. लपट। ५. विद्युत्। ६. सौ। ७. शाम देशका एक पर्वत जहाँ हज़रत मूसाको ईश्वरीय ज्योति दिखाई पड़ी थी। ८. मार्गदर्शक। ९. संदेश-वाहक। १०. काबा। ११. अस्तित्व। १२. परदा, आड़, लज्जा।

हैं कि दुनियामें चल-चलाव लगा है; यहाँ थोड़ा विश्राम है,—चंद दिन रहना है। यह जीवन मंज़िल नहीं, राह है।

यह मंजिल नहीं, बेख़बर ! राह है।

फूलकी कली जैसे क्षण भरके लिए मुसकराती है, एक बिजली चमक कर रह जाती है, वैसे ही यह जीवन क्षणस्थायी है—जल बुद्बुदके समान। यह विलासिताकी दुनिया मृगतृष्णा है।

सैरकी हमने हर कहीं प्यारे।
फिर जो देखा तो कुछ नहीं प्यारे।

अभिलाषाओंकी भूमि कभी हरी नहीं होती; इसलिए उनके बीज बोना बन्द कर :

सब्ज़[1] होती ही नहीं यह सरज़मीं[2],
तुख़्मे ख़्वाहिश[3] दिलमें तू बोता है क्या ?

मृत्युके बारेमें कहते हैं :—

मर्ग एक माँदगीका वक़्फ़ा है,
यानी आगे चलेंगे दम लेकर।

विविध विशेषताएँ :—

मीरके जीवन एवं काव्यमें अनेक प्रकारकी विशेषताएँ हैं।

१. यह धर्मसे फ़कीर या दरवेश नहीं थे पर दिलकी रुझानसे फ़क़ीर ही थे। २. फ़क़ीर होते हुए भी मस्त रहते थे और किसीके आगे हाथ फैलाना पाप समझते थे। कहते हैं :—

१. हरी। २. भूमिखण्ड। ३. अभिलाषाके बीज।

आगे किसीके क्या करें दस्ते तमअ दराज़,
वह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे।

अत्यन्त स्वाभिमानी थे, किसीके आगे सिर न झुकाते थे। खुद फ़ाक़ा-मस्त थे पर साहस यह कि बड़ीसे बड़ी चीज़को सहज भावसे ठुकरा सकते थे। आबेहयात (अमृत) के लिए तिरस्कारपूर्वक कहते हैं :—

आबेहयात[१] वही न जिसपर खिज्रो[२] सिकन्दर मरते थे।
ख़ाकसे हमने भरा वह चश्मा[३], यह भी हमारी हिम्मत थी।

३. वह नियतिवादी थे। यह मानते थे कि नियति अपने पूर्वनिर्दिष्ट पथ पर हमें चलाती है, इसलिए दुःख-सुखको अनासक्त होकर ग्रहण करना चाहिए। ४. फिर उनका कथन यह भी है कि हम दुःखी हों या सुखी, हमें किसीका दिल न दुखाना चाहिए और ऐसा काम कर जाना चाहिए कि लोग याद करें। किसीके दिलमें जगह करनेको यह मानवका महान् गौरव मानते थे। कहते हैं :—

काबा पहुँचा तो क्या हुआ ऐ शेख़ !
सई[४] कर टुक पहुँच किसी दिलको।

५. वह विशालहृदय, विशाल सहानुभूतियोंके प्राणी थे। साम्प्रदायिक बन्धनोंको तुच्छताकी दृष्टिसे देखते थे। ६. किसीके बुराई करने पर भी भलाई करनेकी ही आकांक्षा रखनी चाहिए :—

कोई गाली भी दे तो कह भला भाई भला होगा।

१. अमृत। २. खिज्र = एक पैग़म्बर जिनके बारेमें प्रसिद्ध है कि इन्होंने अमृत पिया है और अमर हैं। भूले-भटकोंको राह दिखाया करते हैं। ३. स्रोत। ४. श्रम।

७. मनुष्यको सर्वोपरि मानते थे। ८. ख़ुदा और बन्देमें थोड़ा ही अन्तर मानते थे :—

सरापा[1] आरज़ू होनेने बन्दा कर दिया हमको,
वगर्ना हम ख़ुदा थे गर दिले बेमुद्दआ होते।

ऊपरसे नीचे तक अभिलाषाकी मूर्ति होनेके कारण ही हम बन्दा हो गये। अगर हमारा हृदय अनासक्त, निरभिलाष होता तो हमीं ख़ुदा होते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका जीवन और उनका काव्य एक ही स्रोतसे निकलकर बहा है।

१. ऊपरसे नीचे तक।

मीर-काव्यके सिद्धान्त एवं विषय

•

मीरके काव्य-सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त थे। वह मानते थे कि एक उच्चकोटिके कविका अपने लिए कुछ ऐसे नियम और सिद्धान्त बाँध लेना आवश्यक है जिनके द्वारा उसका काव्य दूसरे कवियोंके काव्यसे भिन्न पड़े। इस सम्बन्धमें वह निम्नलिखित विचारोंके समर्थक थे।

१. काव्य-रचना शिष्ट एवं संस्कारी व्यक्तियोंका कार्य है। मीर मानते थे कि काव्य-रचनाके लिए मनुष्यके अन्दर उच्च संस्कार होने चाहिएँ। उनकी दृष्टिसे यह काम शरीफ़ोंका है; ओछी तबीयत वालोंको इस रास्ते चलना ही न चाहिए। अपनी एक मसनवीमें कहते हैं :—

सोहबतें जब थीं तो यह फ़न्ने शरीफ़
कस्ब[१] करते जिनकी तबऐं थीं लतीफ़
थे ममीज़[२] वो दरमियाँ इंसाफ़ था
ख़ारो खस[३] से क्या यह उर्सा[४] साफ़ था
दख़्ल इस फ़नमें न था इजलाफ़[५] को
कुछ बताते भी थे सो अशराफ़[६] को
थे जो उस अध्यायमें उस्तादेफ़न[७]
नाक़िसों[८] से वे न करते थे सख़ुन[९]

१. पेशा। २. विवेचक, विवेकवान्। ३. कुश-कर्कट। ४. मैदान, क्षेत्र। ५. निम्न कोटि। ६. शिष्ट। ७. काव्यगुरु। ८. तुच्छ। ९. बात।

हम तलक भी थी वही रस्मे क़दीम[१]।
यानी जिनके होते थे ज़ेहने सलीम[२]।
प्यार करते थे उन्हें उस्तादे फ़न।
उनके होते रहबरे राहे सख़ुन[३]।
ज़ुल्फ़ वाँ ज़िनहार पाते थे न बार।
शायरी काहे का था उनका शुआर[४]।
नुक्ता परदाज़ी[५] से इजलाफ़ोंको क्या ?
शेरसे बज़्ज़ाज़ों नद्दाफ़ों[६] को क्या ?

साफ़ कहते हैं कि जब सभा-संगत होती थी तब यह शिष्ट लोगोंकी कला थी। इस पेशेमें वही आते थे जिनकी तबीयत हाज़िर होती थी। वे लोग विवेकी थे; उनके बीच न्याय था। उस समय यह मैदान, यह क्षेत्र कुश-काँटे से साफ़ था। निम्नकोटिके लोगोंका इसमें प्रवेश ही न हो पाता था। गुरु-जन बताते भी थे तो शिष्ट-सभ्य लोगोंको ही बताते थे। उस ज़मानेमें इस कलाके आचार्य तुच्छ लोगोंसे बात न करते थे। हमारे ज़माने तक भी वह प्राचीन परम्परा चली आ रही थी। अर्थात् जिनकी प्रज्ञा परिष्कृत होती थी उन्हें ही काव्य-कलाके आचार्य प्यार करते थे और उनके काव्य-मार्गके पथ-दर्शक बनते थे। तुच्छ लोगोंकी इस ओर गुज़र न थी। काव्य-एवं उच्चकल्पनासे बज़ाज़ों एवं धुनियोंको क्या मतलब ?''

स्पष्ट ही वह अपने समयकी रुद्ध होकर भी लोगोंके हृदयमें घुसी सामन्ती विचारधाराके प्रतिनिधि थे। आजके युगमें ऐसे विचार आश्चर्य-जनक और प्रतिगामी प्रतीत होते हैं पर यह भी सच है कि काव्य-रचना को कारख़ानोंकी तरह जो भी उसमें आवे उसका कार्यक्षेत्र नहीं बनाया जा

१. प्राचीन परम्परा। २. परिष्कृत प्रज्ञा। ३, काव्य-मार्गके पथदर्शक। ४. कार्य। ५. अर्थगांभीर्य। ६. धुनियों।

सकता। इसके लिए कल्पनाकी उड़ान, गहरी सूझ, सतहके अन्दर देखने वाली आँखों और दर्दभरे दिलकी ज़रूरत पड़ती है।

२. **बौद्धिक योग्यताकी आवश्यकता**:—दूसरी चीज़, जो उनके विचारसे काव्य-रचनाके लिए आवश्यक है बौद्धिक योग्यता है। बौद्धिक योग्यतासे मीरका अभिप्राय ज्ञान, सूझबूझ और कला-सम्बन्धी जानकारीसे है। जब तक एक ओर विशद जानकारी और दूसरी ओर उसको कल्पनाके पंखोंपर उड़ानेकी तैयारी न होगी तब तक श्रेष्ठ काव्यका जन्म ही नहीं हो सकता।

३. **भाषा**—मीर मानते हैं कि शेरमें भाषा और रोज़मर्रा बिल्कुल स्पष्ट एवं सरल होना चाहिए। प्रवाह, रवानी, धारामें किसी भी मूल्यपर कमी न आने देनी चाहिए। मँजी साफ़ ज़बान हो। अपनी ज़बानको वह प्रमाण मानते थे और इसके सम्बन्धमें जगह-जगह गर्व-पूर्वक ज़िक्र किया है:—

गुफ़्तगू[1] रेख़्तेमें हमसे न कर।
यह हमारी ज़बान है प्यारे।

उपदेश देते हैं, सलाह देते हैं:—

हुस्न[2] तो है ही करो लुत्फ़े ज़बाँ भी पैदा,
मीरको देखो कि सब लोग भला कहते हैं।

× ×

देखो तो किस रवानी[3] से कहते हैं शेर मीर,
दुर[4] से हज़ार चन्द है उनके सख़ुनमें आब[5]।

अर्थात् प्यारे, यह हमारी ज़बान है। इसमें हमसे क्या बात करता

---

१. बात-चीत। २. सौन्दर्य। ३. प्रवाह, गति। ४. मोती। ५. पानी, चमक।

है ? तुझमें सौन्दर्य तो है पर भाषाका आनन्द, भाषाकी सुषमा भी तो पैदा कर; उसीके कारण तो सब लोग 'मीर' को भला कहते हैं। ज़रा देखो, किस गति और प्रवाहके साथ मीर शेर कहते हैं। उनके काव्यमें मोतीसे भी ज़्यादा 'पानी' है।

४. **वैलक्षण्य**—काव्यमें कहनेका कोई विशेष ढंग—अन्दाज़े बयाँ—और कोई विलक्षणता होनी चाहिए।

ज़ुल्फ़-सा पेचदार है हर शेर,
है सख़ुन मीरका अजब ढबका।

× ×

शेर मेरे हैं सब ख़वास पसन्द[1],
पर मुझे गुफ़्तगू अवाम[2]से है।

५. **फ़ारसी तरक़ीबोंकी सीमा**—उनके विचारसे शेरमें वही तरक़ीबें लाना जायज़[3] है जो ज़बान पर बार[4] न हो।' यानी विजातीय फ़ारसी उक्तियोंको, जो हमारी भाषामें खप न सकें और उसपर बोझ बन कर रह जायँ, प्रयुक्त न करना चाहिए। उनका यह भी कहना है कि इसका मर्म विवेकी कवि ही समझ सकते हैं।

६. **ऐहामके प्रति अरुचि**—उस समयकी शायरीमें ऐहाम[5]का बड़ा ज़ोर था पर मीर उसे अधिक महत्त्व न देते थे। अपने काव्यके विषयमें कहते हुए प्रकारान्तरसे व्यंग करते हैं:—

१. विशेष लोगोंको प्रिय। २. जन-साधारणके प्रति वार्ता। ३. उचित, विहित। ४. बोझ। ५. ऐहाम—काव्य-शिल्पका वह रूप है जिसमें कवि श्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग करता है—एक निकट अर्थबोधक, एक दूरागत अर्थबोधक। लगता है निकटकी बात कह रहा है पर दरअस्ल दूरकी बात होती है।

क्या जाने दिलको खींचे हैं क्यों शेर मीरके,
कुछ तर्ज़ ऐसी भी नहीं ऐहाम भी नहीं।

७. **घृणाकी भावनाका त्याग**——काव्यमें घृणाकी भावना कहीं न आनी चाहिए।

८. **मुहाविरोंका उचित प्रयोग**——मुहाविरोंका उचित प्रयोग तो करना ही चाहिए, साथ ही उनमें परिवर्तन भी नहीं करना चाहिए——यह कविकी असमर्थताका सूचक है। इसका उदाहरण देते हुए मीर सज्जाद के निम्नलिखित शेर पर उन्होंने आपत्ति की है:——

मेरा जला हुआ दिल मिज़गां[1] के कब है लायक़,
इस आबलेको क्यों तुम कांँटोंमें ऐंचते हो?

मुहाविरा है तुम काँटोंमें क्यों घसीटते हो, मीर साहबने उसे बदल दिया है। वह कहते हैं कि मेरा जला हुआ दिल दृगंचल, पलकों, बरौनियों के लायक़ कहाँ है। इस फफोलेको तुम काँटोंमें क्यों घसीटते हो पर मुहाविरा छंदके चौकठेमें फिट नहीं होता था इसलिए उन्होंने उसे बदल दिया। यही उनका, काव्यका दोष है।

९. **काव्यकी बाह्य सज्जा**——मीरने काव्यकी बाह्य सज्जा पर एक सीमा तक ही ज़ोर दिया है। बहुत ज़्यादा अलंकरणसे जैसे नारी बनी हुई-सी लगती है वैसे ही काव्य भी उससे बोझिल हो जाता है; चल नहीं पाता, उसकी गति रुकती है और स्वाभाविक सौन्दर्यमें शिथिलता आती है।

१०. **भावार्द्रता**——शेर जज़बाते दिल——हृदयके भावों——का आईना होना चाहिए। जो कुछ कहा जाय वह श्रोताके दिलमें पैठ जाना चाहिए जैसे आत्मा और शरीर एकमें गुँथे हुए हैं वैसे ही शेरमें भावार्द्रता होनी

---

१. दृगंचल, बरौनी।

चाहिए। वही आत्मा है। अन्दरका रस, अन्दरकी बात, प्राणोंका स्वर काव्यमें होना चाहिए। काव्य अन्तःवेदनाका पर्दा मात्र है:—

किया था रेख़ता पर्दा सख़ुनका,
सो ठहरा है यही अब फ़न हमारा।

× ×

इस परदेमें ग़मे दिल कहता है मीर अपना,
क्या शेरो शायरी है यारो शुआरे आशिक़?

× ×

मुझको शायर न कहो मीर कि साहब मैंने,
दर्दोग़म कितने किये जमा तो दीवान किया?

× ×

बे सोज़े दिल किन्होंने कहा रेख़ता तो क्या?

११. गुलो बुलबुलकी सीमा तोड़ो––उनका विचार है कि शायरीको सिर्फ़ गुल व बुलबुलके अफ़सानों[1] तक महदूद[2] न होना चाहिए बल्कि वह उससे बहुत वसीअ[3] चीज़ है। इसी बिना पर उन्होंने 'नकातुश्शुअरा' में यह कहकर आपत्ति की है—"हरचंद उर्सए सख़ुन ओ हमीं दर लफ्ज़हाए गुल व बुलबुल तमाम अस्त। बिसियार अमा बरंगीनी मी गुफ़्त।"[4]

काव्य-विषय

मीरका काव्य प्रमुखतः हार्दिक वेदना, विरह और रोदनका काव्य है पर इसके साथ ही उसमें ज़िन्दगीकी उच्चताका राग भी है। वेदना उन्हें

१. क़िस्सों, कथाओं। २. सीमित। ३. विस्तृत। ४. 'आसी' कुल्लियातके भूमिका भागमें।

नष्ट नहीं करती, जीवन-मार्ग पर चलनेकी शक्ति देती है। उनके चित्रोंका क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रमुखतः उनके काव्यमें निम्नलिखित विषयोंका वर्णन हैः—

१. सौन्दर्य एवं प्रेमकी विविध अवस्थाएँ तथा मानवी एवं ईश्वरीय प्रेमकी घटनाएँ।
२. कामनाएँ और उनका तत्त्वचिन्तन।
३. वचन-वैलक्षण्य।
४. कष्टों-दुःखोंकी तीव्र अनुभूतियाँ और उनकी अभिव्यक्ति।
५. प्रेमल व्यंग।
६. उच्च कल्पनाशील उड़ान।
७. हास्य।
८. संसारकी अस्थिरता।

काव्यकी विशेषताओंका वर्णन पहिले ही किया जा चुका है। पर निम्नलिखित बातें उसमें विशेष रूपसे पाई जाती हैंः—

१. भाषाकी सरलता एवं स्वच्छता।
२. रोज़मर्रा और मुहाविरोंकी सफ़ाई।
३. शब्दोंमें संगीतात्मकता और गति।
४. व्यापक ज्ञान।
५. फ़ारसी उक्तियोंका सुन्दर प्रयोग।
६. सूक्ष्म रूपक उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ।
७. स्पष्टता।
८. छन्दोंकी विविधता।

मीर-काव्य : कुछ विशेषताएँ

●

उर्दू काव्यमें एकसे एक शायर हुए हैं पर 'मीर' का स्थान आज तक किसीको प्राप्त नहीं हुआ। उर्दू साहित्यका कोई इतिहास, कोई सग्रह, कोई आलोचना ऐसी नहीं है जो 'मीर' की कविताके प्रति गहरी प्रशंसासे रिक्त हो। काव्यानुरागियोंने उन्हें "ख़ुदाये सख़ुन" (काव्यके ईश्वर) कहा और छोटे-बड़े सबने उनके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि दी। उस्ताद 'ज़ौक़' ने लिखा :—

बहुप्रशंसित मीर-काव्य

न हुआ, पर न हुआ 'मीर'का अन्दाज़ नसीब ,
'ज़ौक' यारोंने बहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा।

और उर्दूके महाकवि 'ग़ालिब'ने कहा:—

अपना भी यह अक़ीदा[१] है बक़ौले नासिख़,
आप बेबहरा[२] है जो मोतक़िदे[३] मीर नहीं।

अर्थात् नासिख़की तरह मेरा भी विश्वास है कि जो मीरकी प्रतिभाका क़ायल नहीं वह अज्ञान है, अशिक्षित है, मूर्ख है।

आधुनिक उर्दू कवियोंने भी, इसी प्रकार, 'मीर' की प्रशंसा की है। देखिए:—

१. विश्वास। २. अज्ञान। ३. श्रद्धालु।

शेर मेरे भी हैं पुर-दर्द वलेकिन 'हसरत',
'मीर' का शेवए-गुफ़्तार कहाँसे लाऊँ ?

—हसरत मोहानी

मैं हूँ क्या चीज़ जो इस तर्ज़ पे जाऊँ 'अकबर',
नासिख़ो ज़ौक़ भी जब चल न सके 'मीर'के साथ।

—अकबर

बड़ी मुश्किलसे तक़लीदे जनाबे मीर होती है।

—नूह नारवी

इनकी कविताकी इतनी धूम थी कि लोग उसे उपहारकी भाँति एक शहरसे दूसरे शहर, अपने यार-दोस्तों और सम्बन्धियोंको भेजते थे। मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ने 'आबेहयात'में लिखा है:—"क़द्रदानीने इनके कलामको जवाहिर और मोतियोंकी निगाहों देखा और नामको फूलोंकी महक बनाकर उड़ाया। हिन्दुस्तानमें यह बात इन्हींको नसीब हुई है कि मुसाफ़िर ग़ज़लोंको तोहफ़ेके तौरपर शहर-से-शहरमें ले जाते थे।" न केवल उत्तर भारत बल्कि दक्षिण तक इनकी कविता पहुँच गयी थी।

स्वभावतः उन्हें अपनी ज़बान और अपनी कवितापर अभिमान था। ये उनके जीवनका अंग बन गयी थीं। अपनी जवानीमें वह अफ़वाहकी तरह प्रसिद्ध हो गये थे। जिधरसे निकलते लोग उनका अनुसरण करते थे। वह खुद लिखते हैं:—

प्रसिद्धि

यह 'मीर' सितमकुश्ता[1] किसू वक़्त जवाँ था,
अन्दाज़े सख़ुनका सबबे-शोरो-फ़ुग़ाँ था।

१. अन्यायसे कटा हुआ।

जादूकी पुड़ी परचये अबयात[1] था उसका,
मुँह तकते ग़ज़ल पढ़ते अजब सेहरे बयाँ[2] था।
जिस राहसे वह दिलज़दह दिल्लीमें निकलता,
साथ उसके क़यामतका सा हंगामा रवाँ[3] था।

बड़े ज़ोशसे पढ़ते थे; दिलमें दर्द था, उसके कारण तबीयतमें एक अजब रवानी थी:—

मीर दरिया है, सुने शेर ज़बानी उसकी,
अल्ला अल्ला रे तबीयतकी रवानी उसकी।
एक है अहदमें अपने वह परागन्दा मिज़ाज[4],
अपनी आँखोंमें न आया कोई सानी[5] उसकी।
मर्सिये दिलके कई कहके दिये लोगोंको,
शहर दिल्लीमें है सब पास निशानी उसकी।

फिर दिल्ली ही क्यों दक्षिणमें भी इनके काव्यकी धूम थी:—

सरसब्ज़ मुल्के हिन्दमें ऐसा हुआ कि 'मीर',
यह रेख़्ता लिखा हुआ तेरा दकन गया।

× ×

कुछ हिन्द ही में मीर नहीं लोग जेबचाक,
है मेरे रेख़्तोंका दिवाना दकन तमाम।

इनकी ग़ज़लें महफ़िलोंमें सुनकर लोग झूमते थे और फ़क़ीरोंकी कुटियोंमें वे प्रतिध्वनित होती थीं:—

१. शेरोंका पर्चा। २. जिसके बयानमें जादू हो। ३. जारी। ४. अस्तव्यस्तमना। ५. जोड़।

मतरिब[1] से ग़ज़ल मीरकी कल मैंने पढ़ाई,
अल्ला रे असर सबके तईं रफ़्तगी[2] आई।
जिस शेरपर समाअ था कल खानक़ाह[3] में,
वह आज मैं सुना तो है मेरा कहा हुआ।

इन बातोंके कारण इनका स्वाभिमान बढ़ता गया। संस्कृत कवियोंकी भाँति इनकी गर्वोक्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं:—

रेख़ता रुतबेका पहुँचाया हुआ उसका है,
मोतक़िद कौन नहीं 'मीर'की उस्तादीका।

× ×

जो देखो मेरे शेरे तरकी तरफ़,
तो मायल[4] न हो फिर गुहर[5] की तरफ़।

× ×

पढ़ते फिरेंगे गलियोंमें इन रेख़तोंको लोग,
मुद्दत रहेंगी याद ये बातें हमारियाँ।
रेख़ता ख़ूब ही कहता है जो इन्साफ़ करो,
चाहिए अहले सख़ुन 'मीर'को उस्ताद करें।
न रक्खो कान नज़्मे शायराने हाल[6] पर इतने
चलो टुक मीरको सुनने कि मोतीसे पिरोता है।

× ×

१. गायक। २. बेहोशी। ३. फ़कीरों, दरवेशोंका आश्रम। ४. आकर्षित। ५. मोती। ६. आजके कवियोंकी कविता न सुनो।

दिल किस तरह न खींचें अशआर[1] रेख़्तेके,
बेहतर किया है मैंने इस ऐबको हुनरसे।

रेख़ताके निर्माणमें इनका बड़ा हाथ है:—

रेख़ता काहे को था इस रुतबए आला[2] में मीर,
जो ज़मीं निकली उसे ता आस्मां मैं ले गया।

काव्य-रचनाको वह मानवका श्रेष्ठ गुण मानते थे। कहते हैं:—

ऐ मीर शेर कहना क्या है कमाले इंसाँ,
यह भी ख़याल-सा कुछ ख़ातिरमें आ गया है।

अपनी ज़बान पर इनको नाज़ था; उसे यह प्रमाण मानते थे:—

अव्वल तो मैं सनद हूँ फिर यह मेरी ज़ुबाँ है।

× ×

यह हमारी ज़ुबान है प्यारे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने ही समयमें यह इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि समाजके हर वर्गके लोग इनकी कविता सुननेको उत्सुक रहते थे।

भाषाकी जादूगरी

क्या कारण है, इस लोकप्रियताका? इनके समयमें भी बड़े-बड़े उर्दू शायर थे, ख़ूब कहते थे; रूपक और अतिशयोक्तिसे भरी सूक्तियाँ कहनेवालोंकी कमी न थी। पर मीरकी ज़बान किसीको नसीब न हुई। कोई ऐसी अद्भुत बात भी नहीं कहते थे फिर भी लोग सुनते थे और सिर धुनते थे। लोग भी कहते थे और ख़ुद मीर भी कहते हैं कि पता नहीं मीरके शेर क्यों दिलको खींचते हैं:—

१. शेरका बहुवचन। २. उच्चपद।

क्या जानूँ दिलको खींचे हैं क्यों शेर मीरके ,
कुछ ऐसी तर्ज़ भी नहीं ऐहाम भी नहीं ।

सबसे पहिली बात जो इनके काव्यमें है, इनकी भाषाकी सादगी है। यों कहते हैं, मानों बात कर रहे हैं। और यही चीज़ है जो ग़ज़लको ग़ज़ल रखती है। फिर भाषा भावोंके सर्वथा अनुरूप है। ज़बान और उससे अदा होनेवाली दर्दभरी भावना यों मिल गयी हैं जैसे रंग और पानी एकमें मिला दिये गये हों कि फिर उनको अलग करना मुश्किल हो। इस तरह यह सीधे-सादे शब्दोंमें गहरी, दिलको हिला देनेवाली, ग़ज़लकी बातें कर जाते हैं:—

यह जो चश्मे पुरआब हैं दोनों ।
एक ख़ाना ख़राब हैं दोनों ।

× ×

मैं जो बोला तो बोले यह आवाज़
उसी ख़ानाख़राब की-सी है ।

दोनों शेर दिलसे टकराते हैं। सुननेवालेके मुँहसे एक आह निकल जाती हैं। मन करुणासे आर्द्र हो जाता है। पर विश्लेषण करनेपर इनमें कोई विचित्रता नहीं मालूम पड़ती। न इनमें विषयकी नवीनता है, न कोई अद्‌भुत कल्पना है, न कोई विशिष्ट जीवन-दर्शन है; फिर भी सब मिलाकर इनका एक अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है। दिल तिलमिला उठते हैं।

इनकी ज़बान इनकी अपनी है। इन्होंने उसमें भारतीय वातावरणको ऐसा मिला दिया है कि शब्दोंका प्रभाव दुगुना हो गया है। इसीलिए वह सलाह भी देते हैं:—

हुस्न तो है ही करो लुत्फ़े ज़बाँ भी पैदा ,
मीरको देखो कि सब लोग भला कहते हैं ।

भाषाकी सादगी तो गज़बकी है, इसलिए उसमें एक कुमारोत्वका सौन्दर्य और पवित्र आकर्षण है:—

शामसे कुछ बुझा-सा रहता है,
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस[1] का।

× ×

करो फ़िक्र मुझ दिवाने की।
धूम है फिर बहार[2] आनेकी।

× ×

कहते हो इत्तिहाद[3] है हमको?
हाँ, कहो एतमाद[4] है हमको।
आह किस तरह रोइए कम कम,
शौक़ हदसे जियाद है हमको।

× ×

अबके जुनूँ[5] में फ़ासला शायद न कुछ रहे,
दामनके चाक और गरेबाँ[6] के चाकमें।

× ×

दिल किस क़दर शिकस्ता[7] हुआ था कि रात मीर,
आई जो बात लब[8] पे सो फ़रियाद हो गयी।

× ×

कहते तो हो यूँ कहते यूँ कहते जो वह आता,
यह कहनेकी बातें हैं? कुछ भी न कहा जाता।

१. ग़रीब, अकिञ्चन। २. वसन्त। ३. मेलजोल, मैत्री। ४. विश्वास। ५. उन्माद। ६. गले। ७. टूटा हुआ, भग्न, खंडित। ८. ओठ।

इस प्रकार इनकी सादी अलंकार-विहीन भाषामें वही आकर्षण है जो किशोरिकामें होती है—उस किशोरीमें जिसमें बचपनकी सादगी है और उस सादगीमें रह-रहकर झाँकती एक शोख़ी, जो चुप है पर न जाने कितनी अभिव्यक्तियाँ उसकी चुप्पीपर निछावर हैं।

× × ×

भावानुभूतिकी गहराइयोंसे उठनेवाली आवाज़

इनके काव्यकी दूसरी विशेषता इनकी दर्दमन्दी है। मतलब यह कि जो कुछ इन्होंने लिखा है वह कल्पनाकी वस्तु नहीं है, इनका बार-बार का भुगता हुआ है। प्रेम लिखा है तो प्रेम किया भी है और प्रेम किया है तो इस सीमा तक किया है कि उसपर अपनेको लुटा दिया है, एक समर्पणकी गहराई जो उर्दू शायरोंमें मुश्किलसे मिलती है। वह कविता लिखते बादमें हैं, अनुभव पहिले करते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन, जीवनव्यापी वेदना ही उनके काव्यकी भूमिका है। इसीलिए उन लोगोंको जो बिना दर्दका स्वाद चखे काव्य-रचनाकी ओर प्रवृत्त होते हैं, वह महत्त्व नहीं देते। 'बेसोज़े दिल किन्होंने कहा रेख़ता तो क्या ?' बिना दिल जलाये रेख़ता लिखना बेकार है। उन्होंने कहा भी है—

जब ज़मज़मा[1] करती है सदा[2] चुभती है दिलमें,
बुलबुलसे कोई सीख ले अन्दाज़ सख़ुनका।

जब बुलबुल बिंध जाती है, वह तड़पकर गा उठती है तभी उसकी आवाज़ दिलमें चुभती है। यह कविताका ढंग उसीसे सीखना चाहिए। कविता लिखनेके पूर्व 'मीर'ने दुःखोंसे भरा लम्बा रास्ता तय किया है; उम्र ही बिता दी है। कहते हैं :—

१. गान। २. बोली, आवाज़।

किस-किस तरहसे मीरने काटा है उम्रको,
अब आख़िर-आख़िर आनके यह रेख़ता कहा।

दफ़्तर लिखे हैं मीरने दिलके अलम[1] के यह,
यां अपने तौरो तर्ज़[2] में वह फर्द[3] हो गया।

× ×

मुझको शायर न कहो मीर कि साहब मैंने,
दर्दो-ग़म कितने किये जमा सो दीवान किया।

मतलब यह कि सच्चे काव्यके लिए आत्मानुभूति ज़रूरी शर्त्त है। मीरका सारा काव्य ही एक दर्दकी तस्वीर बन गया है क्योंकि यह वेदना-रस उनके जीवनकी पोर-पोरमें भिदा हुआ है। यही रस जब काव्यमें उतरता है तो मानो दिलकी चीख़ ही उसमें उतर आती है :—

हर वरक़ हर सफ़हामें इक शेर शोर अंगेज़ है।

यह दर्द उनके काव्यमें सर्वत्र है पर उनकी ग़ज़लोंमें तो जैसे वही वह है। इसलिए इस मैदानमें आज तक कोई इनकी बराबरी न कर सका। उर्दू में तो इतना दर्द और इतना सोज़ और कहीं देखनेको नहीं मिलता। इस वेदनाने उर्दू ग़ज़लको अनुभूतिकी वह गहराई दी जो उसे दोबारा नसीब नहीं हुई। काव्य क्या है हृदय-व्यथाकी एक ऐसी अग्निशाला है जिसकी आग कभी बुझने वाली नहीं। यही दर्द है जो सुननेवालोंको रुला देता है :—'दर्दे सख़ुनने मेरे सभोंको रुला दिया।' इनका प्रत्येक शेर एक आँसू है; हर मिसरा एक रक्त-बिन्दु है; हर शब्द एक आह है।

१. दुःख। २. रंग-ढंग। ३. यकता, अद्वितीय।

अपने जीवनमें मीर अपनी ही वेदनाके साधक नहीं हैं; उन्होंने भयंकर स्वप्नकी भाँति बदलते हुए ज़मानेकी बरबादी देखी है। राजाको रंक और रंकको राजा होते देखा है; शराफ़त-को पनाह माँगते और क़मीनापन और गुण्डा-गीरीको सिंहासन पर बैठते देखा है; उन्होंने भूखसे तड़पते बच्चे देखे हैं; प्याससे दम तोड़ती कलियोंको देखा है। डरे, सहमे बच्चे, जिनकी कच्चे दूध-सी आँखोंमें मौत और भयकी छाया है, उन्होंने देखे हैं; इंसानको दोस्त बनकर छुरा भोंकते उन्होंने देखा है; तड़पती, रोती, प्यासी, त्रस्त, चीख़ती दिल्लीको उन्होंने देखा है; इस तरह सम्पूर्ण युगको व्यथाके भयानक होलिका-दाहमें जलते देखकर उसकी व्यथानुभूतिको भी इन्होंने अपने दामनमें बाँध लिया है। इस प्रकार युग-वेदना और आत्म-वेदना दोनों मिलकर एक हो गयी हैं। जग-बीती और आप-बीतीके तूफ़ानमें इनका दिल उमड़कर शेरमें उँड़ेल दिया गया है। देखिए :—

युग-वेदना और आत्म-वेदनाका मिलन

दिल न बाहम मिले तो हिजरां[1] है,
हम वे रहते हैं गो कि पास ही पास।
मीर वहशी[2] का दिल है बेताक़त,
चलता-फिरता है पर उदास-उदास।
नाउमेदी भी हद्द रखती है,
जीता कब तक रहेगा कोई निरास।

× ×

१. विरह। २. पागल।

रहे ज़ेरे दीवार[1] हम मीर बरसों
न पूछा कभी ख़ाक उफ़्तादगाँ[2] को

× ×

और भी देखिए :—

दिल न पहुँचा गोशए दामाँ[3] तलक,
क़तरए-ख़ूँ था मज़ः[4] पर जम रहा।

× ×

हिजराने-यार एक मुसीबत है हमनशीं[5],
मरनेके हालसे कोई कब तक जिया करे।

× ×

कोई नहीं जहाँमें जो अन्दोहगीं[6] नहीं,
इस ग़मकदे[7]में आह दिले ख़ुश कहीं नहीं।

× ×

आग थे इब्तिदाए[8] इश्क़में हम,
अब जो ख़ाक हैं इन्तिहा[9] है यह।

× ×

इस गुलशने-दुनियामें शिगुफ़्ता[10] न हुआ मैं,
हूँ ग़ुंचए अफ़सुर्दा[11] कि मरदूदे सबा[12] हूँ।

१. दीवारके नीचे, दीवारकी छायामें। २. विपदामें पड़े हुए। ३. दामनके, आँचलके किनारे। ४. दृगंचल, पलक। ५. साथी। ६. दुःखी। ७. दुःखागार। ८. आरम्भ। ९. अन्त। १०. प्रफुल्लित। ११. मुरझाई कली। १२. प्रभातीका मारा हुआ।

अपने एक फ़ारसी शेरमें भी कहते हैं:—

हैफ़ दर शोरः ज़ारे आलम मीर
सब्ज़ नागुश्ता सोख़्त दानए मा ।

प्रेम और दुनियाके दुःखोंने इनके जीवनमें आनन्द और उत्फुल्लता के झोंके कभी आने न दिये । पर इस मिटे हुए दिलमें भी भावनाका सागर लहराता है । मिटकर भी वह मिटते नहीं हैं; बल्कि इस विनाशमें एक नवजीवनका प्रकाश है । उन्होंने पाकर खोया है पर खोकर पाया भी है । एक नशा है जो उनकी ज़िन्दगी पर छा गया है:—

उम्र भर हम रहे शराबी-से ,
दिले पुरख़ूँकी एक गुलाबीसे ।

मर-मर कर भी वह जिये हैं:—

क्या करूँ शरह[१] खिस्ताजानी[२] की
मैंने मर मरके ज़िन्दगानी की ।

ऐसा नहीं कि वह हँसना चाहते नहीं; वह भी हँसने, दुनियाके मजोंमें शामिल होनेकी इच्छा रखते हैं पर दिलकी बेबसीको क्या करें; आँखोंको क्या करें जिनपर वश नहीं रह गया है:—

हँसता ही मैं फिरूँ जो मेरा कुछ हो इख़्तियार[3]
पर क्या करूँ मैं दीदए-बेइख़्तियार[४] को

इस तरह दुःखोंमें डूबी इनकी ज़िन्दगीने इनके काव्यको करुणासे ओत-प्रोत कर दिया है । पर इनके काव्यका सबसे बड़ा सौन्दर्य प्रेमकी

१. टीका, भावों । २. हृदय-भग्नता । ३. वश । ४. बेबस आँखें ।

वह चित्रकारी है जो उसमें सर्वत्र मिलती है। प्रेमकी कुञ्जगलियोंकी एक-एक इंच भूमि इनकी जानी-पहचानी है। प्रेमकी कोई अवस्था ऐसी

प्रेमकी सौ-सौ भंगिमाओंकी चित्रकारी

नहीं, जिसके सुन्दर चित्र इनके यहाँ न मिलते हों। प्रेमकी अगणित भंगिमाएँ यहाँ मचलती हैं; नाटकके न जाने कितने दृश्य यहाँ उभरते हैं; लालसाएँ उठती हैं, दिलकी तिलमिलाहटें नाचती हैं, समर्पणका शीश झुकता है। प्रेमकी सूक्ष्म भावनाओंकी ऐसी मुसव्विरी, ऐसी चित्रकारी उर्दू काव्यमें दुर्लभ है। उसमें अनुभूतिकी कूचियोंसे भरा रंग है, केवल कल्पनाकी परछाइयाँ नहीं।

प्रेमके आरम्भमें प्रेमीकी अजीब अवस्था होती है। देखना चाहता है पर सामने आते ही आँखें झुक जाती हैं; लज्जासे बोल नहीं फूटते। नाम सुननेपर एक बेचैनी-सी होती है। बोलता किसीसे है, देखता किसीकी ओर है। दिलमें आता है मिलनेपर यह कहूँगा वह कहूँगा पर कहा कुछ नहीं जाता। इन भावोंके चित्र मीरमें भरे पड़े हैं। देखिए :—

लेते ही नाम उसका सोतेसे चौंक उट्ठे,
है ख़ैर मीर साहब कुछ तुमने ख़्वाब देखा।

(पूर्वानुराग)

और यह हालत देखिए:—

कहता था किसूसे कुछ तकता था किसूका मुँह,
कल मीर खड़ा था याँ सच है कि दिवाना था।

(विभ्रम)

प्रेमीकी लज्जाका वर्णन करते हैं:—

मीरसे पूछा जो मैं आशिक़ हो तुम,
होके कुछ चुपके-से शरमाये बहुत।

(लज्जानुराग)

× ×

समझे थे हम तो मीरको आशिक़ उसी घड़ी,
जब सुनके तेरा नाम वह बेताब-सा हुआ।

प्रेम चुपके-चुपके बढ़ता है; उसकी जड़ें हृदयकी गहराईमें प्रविष्ट होती हैं। आग अन्दर-अन्दर जलती है; विरह कलेजा मथता है; बीमारकी-

दिलका यह दर्द

सी हालत हो जाती है। बदन पीला, शरीर ढीला, चेहरेपर दीवानगीका आलम, बेचैनियोंमें गिरफ़्तार, अन्दर दिलको जैसे कोई मल रहा है। प्रेमके ऐसे अनेक चित्र मीर देते हैं:—

हम तौरे इश्क़से तो वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन,
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है।

× ×

छाती जला करे है सोज़े-दरूँ बलासे,
एक आग-सी रहे है क्या जानिए कि क्या है?

कहते हैं, मालूम नहीं प्रेम क्या होता है, कैसा होता है पर इतना जानता हूँ कि सीनेके अन्दर जैसे कोई दिलको मला करता है। फिर आगे कहते हैं कि भीतरकी जलनसे छाती जलती रहती है। एक आग-सी लगी मालूम होती है पर यह नहीं जानता कि वह क्या है? अज्ञात पूर्वानुरागका कैसा सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक निरूपण है।

धीरे-धीरे प्रेमका रंग गहरा होता है। अब अन्दाज़ होने लगा है कि कहीं यह प्रेम तो नहीं है:—

गर इश्क़ नहीं है तो यह क्या है भला मुझको,
जी ख़ुद बख़ुद ऐ हमदम काहेको खपा जाता?

× ×

किस तरहसे मानिए यारो कि यह आशिक़ नहीं,
रंग उड़ा जाता है टुक चेहरा तो देखो मीरका।

ताड़नेवाले ताड़ने लगे हैं। कहनेवाले कहने लगे हैं कि भई, क्या बात है? यह तुम्हारी हालत क्या है? तुम्हें हुआ क्या है? यह मुरझाया-मुरझाया चेहरा, यह झुकी तस्वीर, यह बदरंगी, यह दुर्बल शरीर! क्या हो गया है:—

क़ामत ख़मीदा[1] रंग शिकस्ता[2] बदन नज़ार[3],
तेरा तो मीर ग़ममें अजब हाल हो गया।

× ×

कुछ ज़र्द-ज़र्द[4] चेहरा कुछ लाग़री[5] बदनमें,
क्या इश्क़में हुआ है ऐ मीर! हाल तेरा?

लोग कहते हैं, आजकल सबसे जुदा रहते हो, एकान्तमें फिरते हो, जान पड़ता है, तुम्हारा दिल कहीं अटक गया है। और मीर हैं कि क्या जवाब दें। लोग आपसमें भी बातें करते हैं कि किसीकी जुदाईका ग़म इतना है कि मुँह पीला पड़ गया है। यह क्या जवाब दें। आँखोंमें आँसू भर लाते हैं। लोग कहते हैं, बार-बार आँखोंमें आँसू न भरो वर्ना तुम्हारा प्रेमका भेद खुल जायगा। इन्हीं भावोंको देखिए :—

यह क्या बात है मीरजी?

फिरते हो मीर साहब सबसे जुदे-जुदे तुम,
शायद कहीं तुम्हारा दिल इन दिनों लगा है।

× ×

१. झुका आकार, झुकी देह। २. बिखरा रंग। ३. क्षीण। ४. पीला। ५. दुर्बलता, क्षीणता।

किससे जुदा हुए हैं कि ऐसे हैं दर्दमन्द,
मुँह मीरजीका आज निहायत ही ज़र्द है।

× ×

मीरजी ! राज़ेइश्क़[1] होगा फ़ाश[2]
चश्म हर लहज़ा[3] मत पुरआब[4] करो।

× ×

आशिक़ है या मरीज़ है पूछो तो मीरसे,
पाता हूँ ज़र्द रोज़-बरोज़ इस जवाँको मैं।

सवालपर सवाल होते हैं, चर्चे होते हैं, और मीर हैं कि मुँह बन्द है। क्या जवाब दें पर कबतक चुप रहें, कबतक मुँह बन्द रख सकते हैं; आखिर दो शब्द कहते हैं:—

जवाब देते हैं !

अब तो दिलको न ताब है न क़रार,
यादे अय्याम[5] जब तहम्मुल[6] था।

× ×

कुछ नहीं सूझता हमें उस बिन,
शौक़ने हमको बेहवास किया।

शुरू-शुरूमें एक प्रकारका धीरज था, सन्तोष था, अब तो दिलमें ज़रा भी चैन नहीं है। हाय ! हमें उसके बिना कुछ नहीं सूझ पड़ता; उत्कण्ठा इतनी बढ़ गयी है कि मेरा होश-हवास गुम है। जानता हूँ कि रोनेसे डूब जाऊँगा, घुल रहा हूँ पर मेरे दोस्त ! क्या करूँ, इतना कम-

१. प्रेम-रहस्य। २. प्रकट। ३. प्रतिक्षण। ४. तर, अश्रुपूर्ण। ५. यादके दिनों। ६. सहिष्णुता, धीरज।

ज़ोर हो गया हूँ कि धीरज नहीं रह गया है; याद आते ही आँसू निकल पड़ते हैं। बोलो क्या करूँ :—

बेताक़ती सकूँ नहीं रखती है हमनशीं,
रोनेने हर घड़ीके मुझे तो डुबो दिया।

और कभी-कभी प्रियतमके सामने भी कुछ टूटे-फूटे बोल लेते हैं :—

जब नाम तेरा लीजिए तब चश्म भर आवे,
इस ज़िन्दगी करनेको कहाँ से जिगर आवे।
हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया,
तो दिल सितमज़दहको मैंने थाम-थाम लिया।

तुम्हारा नाम लेते ही आँखें भर आती हैं; तब ज़िन्दगी बितानेको मैं कहाँसे कलेजा लाऊँ ? इतना ही क्या कम है कि जब कोई हमारे आगे तुम्हारा नाम लेता है तो मैं अपने इस दुखिया दिलको थाम-थाम लेता हूँ। (यहाँ थाम-थाम शब्दने भाषामें एक दर्द और संजीदगी पैदा कर दी है, जो पकड़ लेना कहनेसे नहीं आ सकती थी।)।

कलेजा थाम लेता हूँ !

पर उधर उनकी शरारत देखिए। यहाँ विरहमें यह हाल है, चेहरा पीला पड़ गया है और वह हँसके कहते हैं कि अब तो तुम्हारा रंग कुछ निखर चला है :—

यह छेड़ देख, हँसके रुख़ेज़र्द पै मेरे,
कहते हैं, मीर ! रंग तो अब कुछ निखर चला।

और वह त्योरियाँ चढ़ाते जाते हैं। इस पर मीरने क्या ख़ूब कहा है :—

हम ख़स्तादिल हैं तुझसे भी नाज़ुक मिज़ाजतर,
त्योरी चढ़ाई तूने कि याँ जी निकल गया।

× ×

लोग समझाते हैं, व्यर्थ घुल रहे हो, फ़िज़ूल जान दे रहे हो। मीर भी दिलको समझाते हैं पर इश्कका मनोवैज्ञानिक पक्ष यह है कि वह दबानेसे और बढ़ता है, समझानेसे और उभरता है। तुम समझाते हो, उसकी बेचैनी बढ़ती है; तुम कहते हो और कलेजा मुँहको आता है। सहानुभूति प्रदर्शनमें दर्द दर्द पर चोट करता है; और रोना आता है, जितना समझाते हैं, उतना ही मन टूट-कर घुल-घुल जाता है। दिल पत्थर करना चाहते हैं पर पानी हुआ जाता है; बाँध मजबूत करना चाहते हैं पर टूटा जाता है :—

यह दर्द जो समझानेसे बढ़ता है

कहनेसे मीर और भी होता है मुज़तरब[1]
समझाऊँ कबतक इस दिले ख़ाना ख़राबको।

और मीर भी कहते हैं कि प्रेमकी इस पीड़ामें, इस बेचैनीमें मैं क्या कहूँ, बात करता हूँ कि कलेजा मुँह तक आता है।

और हज़रत बार-बार सोचते हैं कि अब उसके यहाँ न जाऊँगा पर बेचैनी उभड़ती है और बार-बार उसके दरवाज़े पर जाते हैं। बार-बार उधर ही पाँव उठते हैं :—

बार-बार उसके दर पे जाता हूँ,
हालत अब इज़तिराबकी-सी है।
चला न उठके वहीं चुपके-चुपके तू फिर मीर,
अभी तो उसकी गलीसे पुकार लाया हूँ।

× ×

---

१. बेचैन।

प्रायः प्रेमी सोचता है कि मिलने पर यह कहूँगा वह कहूँगा। उनके सामने दिल निकालकर रख दूँगा। उनकी शिकायत करूँगा कि मेरे साथ क्यों इतनी निष्ठुरता करते हो, यह तुम्हारी क्या आदत है :—मतलब हज़ार बातें करूँगा पर सामने जाते ही सब बातें भूल जाती हैं, कुछ बोला नहीं जाता। इसी भावको 'मीर' कहते हैं :—

मिलनमें वाणीका मौन

जीमें था उससे मिलिए तो क्या-क्या न कहिए मीर,
पर जब मिले तो रह गये नाचार देखकर।

× ×

कभी-कभी ऐसा होता है कि लाख दिलको मारते हैं, भावोंको बाँधते हैं, ओठ दबाते हैं पर प्यार प्रकट हो ही जाता है। न चाहते हुए भी एकाध शब्द प्यारके निकल ही जाते हैं। इसीको कहा है :—

हर चंद मैंने शौक़को पेनहाँ[१] किया वले[२],
एक आध हर्फ़ प्यारका मुँहसे निकल गया।

पर लाख रुदन हो, व्यथा हो, जब तक कहनेके ढंगमें एक शोख़ी, एक अदा, एक विशेष भंगिमा न हो तब तक कविकी कला निखरती नहीं। बातें दुनियामें वही होती हैं, कोई शायर नई बात नहीं कहता, पर नये ढंगसे कहता है; निराली तर्ज़े बयाँ होती है। मीरकी तारीफ़ यह है कि उनमें गहराई भी है और पकड़ भी है, अन्तःसौन्दर्य भी है और कहनेका निरालापन भी है। अन्तः और बाह्य सौन्दर्य-राशिका सामञ्जस्य है। ठंडी आह निकलना एक मुहाविरा है, पर ठण्ठी आहके मज़मूनमें मीरने बातपर बात पैदा की है :—

बयानकी शोख़ी और रूपके चित्र

१. प्रच्छन्न। २. किन्तु फिर भी।

आशिक़ हैं हम तो मीरके भी ज़ब्ते इश्क़के,
दिल जल गया था और नफ़स[1] लब पे सर्द था।

मीरजीके प्रेमपर नियंत्रणके हम प्रशंसक हैं। दिल तो जल गया था पर ओठपर ठण्डी साँस निकल रही थी।

ओठोंके सौन्दर्यपर चूमनेकी इच्छा होती है पर बिना इच्छा प्रकट किये इच्छा प्रकट कर दी है; बिना कहे सवाल करके उसे कह दिया है, किस शोख़ीके साथ—

लाले ख़मोश[2] अपने देखो हो आरसीमें
फिर पूछते हो हँसकर मुझ बेनवा[3] की ख़ाहिश ?

अपने ख़ामोश लालोंको (लालिमाके कारण लालसे ओठकी उपमा दी जाती है) आईनेमें देख रहे हो, फिर भी मुझ ग़रीबसे मेरी इच्छा पूछते हो ?

आड़ लेकर, सवाल करके अपनी मुराद कहनेका यह अनोखा ढंग है।

× × ×

मीरका सौन्दर्य-वर्णन

आँखें देखती हैं और दिल चुरा लिया जाता है; या दिल उधर दौड़ता है और आँखोंको रोना और दुःख उठाना पड़ता है। दोनोंमें क्या सही है !

ये आँखें या वह दिल ?

दिल आँखको दोष देता है; आँखें दिलको दोषी बताती हैं और इन दोनोंके झगड़ेमें प्रेमी मारा जाता है और इस भावको मीरने क्या खूब अदा किया है:—

१. श्वास। २. मौन। ३. ग़रीब, अकिंचन।

कहता है दिल कि आँखने मुझको किया ख़राब,
कहती है आँख यह कि मुझे दिलने खो दिया।
लगता नहीं पता कि सही कौन-सी है बात,
दोनोंने मिलके 'मीर' हमें तो डुबो दिया।

'मीर' ने हर रंगमें दुनिया देखी है; प्रियतमकी हर अदासे वह परिचित हैं। अन्तर्मनके चित्र तो उनमें ख़ूब हैं ही पर बाह्य सौन्दर्यकी

सुबह करते हैं रात करते हैं

एक-एक अदा भी उन्हें मालूम है। उनकी महती कल्पकतामें, उनके तख़य्युलमें इतना विस्तार है कि कोई चीज़ उनकी पैनी आँखोंसे बच नहीं पाई। किस शोख़ीके साथ माशूक़के मुख और बालोंका वर्णन किया है। मिलनकी रात्रि है। प्रेमी कहता है हमारे भाग जगे हैं। एक पहर रात है तब वह आये हैं। पर मुँहको खोल देते हैं, तो सुबह हो जाती है। फिर मुँहको बालोंमें छिपा कर पूछते हैं, भला अब कितनी रात है? क्या शरारतभरा सौन्दर्य-वर्णन है!

थी सुबह जो मुँहको खोल देता,
हरचन्द कि तब थी एक पहर रात।
फिर ज़ुल्फ़ोंमें मुँह छिपाके बोला,
अब होवेगी मीर किस क़दर रात?

शरीर-यष्टिका सौन्दर्य :

मीरने सौन्दर्यके हर क्षेत्रको लिया है। शरीर-यष्टिकी लचकको देखके कहते हैं:—

इन गुलरुख़ोंकी क़ामत लहके है यूँ हवामें,
जिस रंगसे लचकती फूलोंकी डालियाँ हैं।

× ×

शौक़े क़ामतमें तेरे ऐ नौनिहाल,
गुलकी शाख़ें लेती हैं अँगड़ाइयाँ !

आँख और ओठ :

अधखुली, अधमुँदी आँखोंका सौन्दर्य और मस्ती कल्पनाकी नहीं, देखनेकी वस्तु है। धीरे-धीरे बन्द आँखोंका खुलना ! जैसे कलीने यह धीरे-धीरे खिलना उसीसे सीखा है। फिर उनमें शराबकी मस्ती भरी है:—

मीर इन नीमबाज़[1] आँखोंमें,
सारी मस्ती शराब की-सी है।
खिलना कम-कम कलीने सीखा है,
उसकी आँखोंकी नीमख़ाबी से।

और ओठोंको क्या कहें ? कोई इन्हें याकूत कहता है कोई लाल और कोई गुलाबकी पंखड़ी कहता है :—

है तसन्नो[2] कि लाल हैं वे लब,
यानी एक बात-सी बनाई है।

दूसरा मिसरा क्या ख़ूब है। बात बनाना मुहाविरेको क्या निभाया है और मज़ा यह कि बात बनाना भी ओठोंका ही काम है !

नाज़की[3] उसके लबकी क्या कहिए,
पंखड़ी एक गुलाब की-सी है।

× ×

[या]क़ूत कोई उनको कहे है कोई गुलबर्ग[4]
[ट]क होंठ हिला तू भी कि एक बात ठहर जाय।

---

१. अधखुली। २. बनावट (बनावटी बात है)। ३. पतलापन, क्षीणता। ४. गुलाबकी पँखड़ी।

यहाँ भी 'एक बात ठहर जानेका' खूब निर्वाह किया है।

मुखकी बनावट :

क्या .खूबी उसके मुँहकी ऐ .गुंचः[१] नक़ल करिए,
तू तो न बोल ज़ालिम बू आती है देहाँ[२] से।

"ऐ कली, तू उसके मुख-सौन्दर्यकी नक़ल क्यों करती है। तू चुप रह, न बोल, तेरे मुँहसे बू आती है।"

कलीकी सुगन्धको किस मुहाविरेमें ढालकर उसे नीचा दिखाया है!

कपोल :

कपोल सूर्यकी तरह चमक रहे हैं, तब इन्हें घूंघटमें, पर्देमें, नक़ाबमें छिपानेसे क्या लाभ है; वे छिपते तो हैं नहीं। जब हम उन्हें देखते हैं तो मन करता है कि आँखोंको उनमें गड़ा दें:—

है तकल्लुफ़ नक़ाब, वे रुख़सार[३],
क्या छिपें आफ़ताब[४] हैं दोनों।

× ×

रुख़सार उसके हाय रे, जब देखते हैं हम,
आता है जीमें आँखोंको इनमें गिड़ोइए।

बाल :

लग निकली है किसूकी मगर बिखरी .जुल्फ़से,
आनेमें बादे सुबह[५] को याँ एक दिमाग़ है।

(सुरभित) प्रभातीमें एक अहंकार है, जान पड़ता है वह किसीकी बिखरी ज़ुल्फ़ोंसे लगकर आई है।

---

१. कली, मुकुल। २. मुँह, देहन। ३. कपोल, गाल। ४. सूर्य। ५. प्रभातकी वायु।

तेरे बालोंके वस्फ़[1] में मेरे,
शेर सब पेचदार होते हैं।

तेरे बाल इतने पेचदार हैं कि उनकी प्रशंसामें मैं जो शेर कहता हूँ वह (शेर ही) पेचदार हो जाता है।

आवेगी एक बला तेरे सर सुन कि ऐ सबा[2],
ज़ुल्फ़े-सियह[3] का उसके अगर तार जायगा।

ऐ प्रभाती वायु! ज़रा सावधान होकर बहा कर वर्ना यदि किसी दिन उसके काले बालोंसे पाला पड़ जायगा तो तेरे सिर एक बला आ जायगी।

मीर हर-एक मौज[4] में है ज़ुल्फ़ ही का-सा दिमाग़,
जबसे वह दरियापे आके बाल अपने धो गया।

मीर साहब कहते हैं कि जबसे मेरा प्रियतम नदीके किनारे आकर अपने बाल धो गया तबसे प्रत्येक तरंगमें ज़ुल्फ़का-सा ही दिमाग़ देखनेमें आता है—तबसे प्रत्येक तरंगमें ज़ुल्फ़की ही भाँति उतार-चढ़ाव देख रहा हूँ। कंघी की हुई ज़ुल्फ़ोंमें तरंगकी भाँति ही उतार-चढ़ाव होता है, इसी बातको लेकर यह शेर कहा है।

कानके मोती :

लेते करवट हिल गये जो कानके मोती तेरे,
शर्मसे सरवर[5] गरेबाँ सुबहके तारे हुए।

करवट लेनेसे, अँगड़ाई लेनेसे जो तेरे कानके मोती हिले तो शर्मसे सुबहके तारोंने गरेबाँमें मुँह छिपा लिया।

१. गुण, प्रशंसा। २. प्रभाती। ३. काली अलकें। ४. तरंग, लहर ५. अधिकारी।

सुबहके तारोंका टिमटिमाना और मोतीका हिलना दोनोंमें कैसा साम्य है।

चाल :

हर नक़्शे पा[1] है शोख़ तेरा रश्के यासमन[2],
कम गोशए चमन[3] से तेरा रहगुज़र नहीं।

ऐ शोख़ ! तेरा प्रत्येक चरण-चिह्न नवमल्लिकाको लज्जित करने वाला है। तेरा चलना पुष्पोद्यान-खण्डसे कुछ कम नहीं है। जहाँ-जहाँ तू चलता है चमन खिलते जाते हैं।

यों हम मीरमें सौन्दर्यके एकसे एक चित्र पाते हैं। उन्होंने एक श्रेष्ठ कुलकी कुमारीके प्रति आत्मसमर्पण किया था। उनके प्रेममें कहीं अश्लीलता, निकृष्टता नहीं है, हाँ जलन है, गर्मी है। फ़ारूक़ीने ठीक ही लिखा

बिखरे हुए मोती

है कि "उन्होंने अपनी तस्वीरोंमें जिन क़दरों[4] को उभारा है वह वही हैं जो शरीफ़, मोतवस्सित[5] घरानोंमें पाई जाती हैं। उनमें तमन्नाका इज़हार[6], सरशार तजुर्बों[7] का निखार, चाहने और चाहे जानेकी आरज़ू है। एक दिलरुबा[8] असलियत[9] है, एक कार आगही है जो तजुरबातकी वादी[10] में सीनेके बल चलनेसे आती है। इनकी मोहब्बत असली और हक़ीक़ी है···इसमें जो सच्चाई; पाकीज़गी[11] और ज़ब्त[12] है वह आम-शायरोंकी दस्तरस[13] से बाहर है।★

संसारमें एकसे एक सुन्दर मूर्तियाँ हैं पर हृदय न जाने क्यों एक विशेषकी ओर ही आकर्षित होता है। मीर भी कहते हैं :—

---

१. चरण-चिह्न। २. चमेलीकी ईर्ष्याके योग्य। ३. पुष्पोद्यानका एक कोना, खण्ड। ४. मूल्यों। ५. मध्यम। ६. अभिव्यक्ति। ७. अनुभव। ८. चित्ताकर्षक। ९. वास्तविकता, सत्य। १०. घाटी। ११. पवित्रता। १२. नियन्त्रण। १३. पहुँच। ★ मीर तक़ी मीर पृष्ठ ३३८–३३९।

फूले गुल शम्सो-क़मर[1] सारे ही थे,
पर हमें इनमें तुम्हीं भाये बहुत।

वहाँ गुलाबके फूल, सूरज और चाँद सभी थे पर उनमें तुम्हीं मुझे बहुत भाये।

आर्ज़ूओंकी एक दुनिया उनके सीनेमें बसी हुई है। देखिए :—

मौसिमे अब्र[2] हो, सुबू[3] भी हो,
गुल हो, गुलशन[4] हो और तू भी हो।

यहाँ 'तू भी हो' ने एक विशिष्टता उत्पन्न कर दी है।

गर्चे कब देखते हो, पर देखो,
आरज़ू है कि तुम इधर देखो।

कितनी विवशता भरी विनती है। तुम मेरी तरफ़ देखते ही कब हो, पर चाहता हूँ कि देखो। मेरी वाञ्छा है कि तुम इधर देखते !

वह और शायरोंकी तरह प्रियतमसे कोई अनुचित कामना कभी नहीं प्रकट करते; प्रेमकी ऊँचाईका सदा ध्यान रखते हैं। यदि प्रियतमकी निष्ठुरताकी चर्चा भी करते हैं तो उसका भार अपने ऊपर उठा लेते हैं। यह है उनका समर्पण :—

उसके ईफ़ाए-अहद[5] तक न जिये,
उम्रने हमसे बेवफ़ाई की।

मर गये पर उसने वादा पूरा न किया। मीर साहब इसी बातको अपनी तर्ज़ पर कहते हैं कि उम्र ही बेवफ़ा निकली कि उसके प्रण-पालन तक हम न जी सके।

१. सूर्य-चाँद। २. बादलका मौसिम, वर्षाके दिन। ३. मधु-घट। ४. पुष्पोद्यान। ५. प्रण-पूर्ति।

हाले-बद गुफ़्तनी नहीं अपना,
तुमने पूछा तो मेह्रबानी की।

अपना बुरा हाल हम कहना नहीं चाहते; तुमने पूछा यह तुम्हारी कृपा है।

प्रतीक्षामें आँखें लगी हैं, इस भावको मीरने गहरी अनुभूतियोंके रंगमें चित्रित किया है :—

बालीं[1] पै मेरी आकर टुक देख शौक़े दीदार,
सारे बदनका जी अब आँखोंमें आ रहा है।

ज़रा छतपर आकर मेरी दर्शनोत्कण्ठा तो देखो; सम्पूर्ण शरीरसे प्राण निकलकर आँखोंमें आ बसा है। कैसी सर्वग्राही दर्शनोत्कण्ठा है।

हर समय मिलनकी इन्कारीसे त्रस्त होकर कहते हैं :—

दिन नहीं, रात नहीं, सुबह नहीं, शाम नहीं,
वक़्त मिलनेका मगर दाख़िले-अय्याम[2] नहीं।

दिनको—नहीं, रातको—नहीं, सुबहको—नहीं, शामको—नहीं, शायद मिलनेका समय दिवसकी अवधिमें है ही नहीं।

आँखें क्यों चुराते हैं ?

इधर यह बात है, उधर आँखें छिपाकर वह कभी-कभी देख भी लेते हैं और जब आँखें मिल जाती हैं तो उन्हें झुका लेते हैं, जैसे चोरी पकड़ ली गयी हो। क्या उनमें मेरे प्रति कोई लगावट, कोई दर्द, कोई झुकाव नहीं है ? यदि नहीं है तो ऐसा होता क्यों है :—

१. छत। २. दिनोंमें शामिल।

वह दर्द दिल नहीं तो क्यों देखते ही मुझको ,
पलकें झुकालियां हैं, आँखें चुरालियां हैं ।

प्रेम कोई अपराध तो नहीं है पर दुनियामें अक्सर अपराध मान लिया जाता है । मीर कहते हैं कि तुम मालिक हो, मुझे मारना चाहो तो मार डालो पर दासने सिवा प्रेम करनेके और कोई पाप तो नहीं किया है:—

साहब हो मार डालो मुझे तुम वगर्ना कुछ ,
जुज़ आशक़ी गुनाह नहीं है ग़ुलामका ।

मीर अपने शिष्टाचारको कभी नहीं छोड़ते । प्रियतमसे जो कुछ कहना है बड़ी विनयसे कहते हैं । उनकी इच्छाओंकी अभिव्यक्तिमें, आरज़ूके इज़हारमें भी बड़ी ग़रीबी है, बड़ी सरलता है,—मानो उसमें भी वेदना कभी उनसे अलिप्त नहीं रहती:—

गर्चे कब देखते हो पर देखो ,
आरज़ू है कि तुम इधर देखो ।

'सायल' का एक शेर भी कुछ इसी तर्ज़पर है:—

दिल तो यह चाहता है ख़स्ता जिगरको देखो ,
आगे तुम्हारी मरज़ी चाहे जिधरको देखो ।

पर मीरका पहला मिसरा इतने दर्द, इतनी निराशा और हसरतमें डूबा हुआ है कि उसने उसे अनुभूतिकी वेदनाका स्वर प्रदान किया है ।

कब देखते हो मेरी ओर ?

वह अब तकके निराशा भरे अनुभवकी कथा कहता है और उसके प्रकाशमें ही अपनी अभिलाषा प्रकट करता है; इस अभिलाषामें भी जैसे वह आश्वस्त नहीं कि वह देखेंगे क्योंकि 'कब देखते हो ?'

विरहकी वेदना बहुत बढ़ गयी है; अब जीवनकी कोई आशा नहीं ।

चलचलाव लगा है। वह आये हैं। देखते हैं और शायद यह सोचकर कि ऐसा तो अक्सर होता रहता है, चलनेको तैयार होते हैं;—शायद उन्हें मालूम नहीं पड़ता कि आख़िरी वक़्त है और हम भी यात्रापर निकलने ही वाले हैं।

ज़रा बैठो, हम भी चलते हैं!

ज़रा रुक जाओ। यह मेरी अन्तिम वेला है। ज़रा मेरे पास बैठो; जल्दबाज़ी न करो, सब्र करो, ज़रा धीरज धरो, हम भी तुम्हारे साथ ही चलते हैं (मतलब यह है कि उधर तुम चलते हो, इधर मैं भी दम तोड़-कर चलता हूँ।)

दमे-आख़िर है, बैठ जा, मत जा,
सब्र कर टुक, कि हम भी चलते हैं।

कैसी बेबसी, निराशा और दिल-शिकनीका आलम है। मज़ा यह कि इसमें भी अपनी वही अकड़ और शान है:—

चले हम अगर तुमको इकराह[1] है,
फ़क़ीरोंकी अल्लाह अल्लाह है।

एक जगह कहते हैं कि तुमने अपने दिलसे तो हमें भुला दिया, निकाल दिया पर अपनेको मेरे दिलसे निकाल दो, मेरे दिलसे भुला दो तब समझूँ:—

तुमने जो अपने दिलसे भुलाया हमें तो क्या
अपने तईं तो दिलसे हमारे भुलाइए।

सूरदासका निम्न पद याद आ जाता है—

'हिरदै तें जब जाहुगे, मर्द बदौंगो तोहिं।'

१. एतराज़, नापसंदी।

मीरकी दुनिया दर्दकी दुनिया है और इस दुनियाका वह अद्वितीय कवि है। 'फिराक़' गोरखपुरीकी बात ठीक है कि मीर बड़ा ग़ज़लगो है और ग़ालिब बड़ा फनकार (कलाकार) है। पर मीरको पढ़कर कलेजा हिल जाता है, जब ग़ालिबको पढ़कर उसकी उड़ानकी प्रशंसा करनी पड़ती है। सबसे बड़ी बात मीरके साथ यह है कि मीरका दर्द हमें मारता नहीं, वह ज़िन्दगीको उभारता है। वह विष नहीं है, मारक नहीं है; वह बेहोशीमें भी एक अजब होश पैदा करता है। वह दु:खमें भी इन्सानकी महत्ता और श्रेष्ठताको कभी नहीं भूलता। मानवता पर उसको सहज गर्व है:—

यह दर्द ज़िन्दगीको उभारता है

मत सहल हमें जानो फिरता है फ़लक बरसों,
तब ख़ाकके परदेसे इन्सान निकलते हैं!

ज़िन्दगी काँटोंसे भरी है; मुसीबतोंसे घिरी है; अनिश्चितताओंसे उलझी है, और दिलकी नगरी है कि बार-बार लुटी है, हम देखते रहे हैं और वह लुट गयी है।

दिलकी वीरानीका क्या मज़्कूर है,
यह नगर सौ मर्त्तबा लूटा गया।

मीरको बुलबुलेकी तरह मिटना ही है। प्रभाती वायु भी इश्क़के पागलोंका निशान पूछनेपर एक मुट्ठी धूल उड़ा देती है (कि यह है निशान उनका)—

नमूद[1] करके वहीं बहरे-ग़म[2] में बैठ गया,
कहे तो मीर भी एक बुलबुला था पानीका।

× ×

१. व्यक्त, दृष्ट। २. दु:ख-सागर।

आवारगाने इश्क़का पूछा जो मैं निशाँ ,
मुश्ते-ग़ुबार[1] लेके सबा[2] ने उड़ा दिया ।

संसारके कठोर पथपर चलते हुए वह बराबर अनुभव करते रहे हैं कि–

ज़मीं सख़्त है आसमाँ दूर है ।

पर चलना, सिर ऊँचा करके चलना उन्होंने कभी न छोड़ा । अपने मूल्योंमें उनका विश्वास कभी न डिगा, इसीलिए और लोग जिस बोझको उठा न पाये, या जो लोगोंको बहुत भारी प्रतीत हुआ, उसे वह उठा सके ।

सबपै जिस बार[3] ने गिरानी की ,
उसको यह नातवाँ[4] उठा लाया ।

निराशाओंने इनमें अपनी राहपर चलनेकी आशा दी है; अपनी दुखी हुई ज़िन्दगीने इन्हें युग-वेदनाको अपनानेकी चेतना दी है इसीलिए इनकी वेदनामें इतनी तरलता और इतनी गहराई है । यह बोलते क्या हैं मानो तड़पकर इनका दिल ही निकल रहा है । शायद इसीको ख्याल-कर कहा भी है:—

अल्ला रे अन्दलीबें[5]की आवाज़े-दिलख़राश[6] ,
जी ही निकल गया जो कहा उनने हाय गुल !

कितना दर्द है, क्या तस्वीर है, क्या भाषा है, क्या कला है, क्या गहराई है । बिल्कुल जैसा वह कहते हैं:—'दुनिया सिमट आई है मेरे दीदएतरमें ।' वेदना हर शब्दके झरोकेसे झाँकती है और यह प्रभाव बिना गहरी निज अनुभूतियोंके सम्भव नहीं:—

दर्दे-दिल मा ग़मे-दुनिया, ग़मे-माशूक़ शवद ,
बादह गर ख़ाम बुवद पुख़्ता कुनद शीशए मा ।

---

१. एक मुट्ठी धूल । २. प्रभाती । ३. बोझ, भार । ४. दुर्बल, अशक्त । ५. बुलबुल । ६. हृदय-भग्नकारी, दिल चीरनेवाली ।

मीर : जीवन और काव्य

ज्ञातव्य बातें

१. मीर-काव्यकी संक्षिप्त-समीक्षा

मीरके काव्यकी जड़ें जीवनकी वास्तविकताकी मिट्टीमें दूर तक फैली हुई हैं। वह तूफ़ानोंमें पले, आँधियोंसे गुज़रे थे। दुनियाका ऊँच-नीच उन्होंने देखा था। उनकी आँखोंके आगे सिंहासन टूटते थे, राजा भिखारी और भिखारी राजा बन जाते थे। स्वार्थके लिए मनुष्य पशु हो जाता था। ख़ुद उन्होंने ज़मानेकी चोटें सही थीं, जगह-जगह फिरे थे। गरीबीके मज़े चखे थे। हर तरहकी कठिनाइयाँ सहन की थीं। फिर उनके पास एक ऐसा दिल था जिसमें प्रेमकी वेदना और तड़प थी, जिसमें कल्पना और अनुभूति थी, जिसमें सपने थे, जिसमें जीवनके प्रति गहरी निष्ठा थी। इसके साथ उनमें सूफ़ियों और दरवेशोंके पैतृक संस्कार थे—वे संस्कार जिसने इनको दर्दमन्दी दी पर किसी वैभवके आगे न झुकनेकी वृत्ति भी दी। मीरके जीवनकी यह एक बड़ी विशेषता है कि कठिनाइयोंके बीच, ग़रीबीके बीच, चलते हुए भी उन्होंने कभी सिर नहीं झुकाया; मानवताके मूल्योंको कभी नहीं छोड़ा। सौन्दर्योपासनाने, प्रेमने उन्हें जीवनकी सुकुमार वृत्तियों का सूक्ष्म ज्ञान दिया।

इसलिए इनका काव्य जीवनके उत्स रूपमें प्रकट हुआ है। उसमें सौन्दर्य एवं प्रेमसे लिपटे जीवनकी मुसकराहट है और ज़िन्दगीकी असफल संवेदनाओंका रोदन है। उनका प्रेम हवाई, काल्पनिक, आसमानी नहीं है; वह मानवीय है—वह इसी दुनियाका है; उसमें जीवनके रक्तकी तड़प और प्रवाह है पर उसमें कर्दम नहीं है, नग्नता नहीं है। उस एक दिलकी

धड़कनमें हज़ार-हज़ार दिल धड़कते हैं; उस व्यक्तिमें समष्टिका स्वर है; वह बोलते कुछसे हैं पर सुनाते लक्ष-लक्ष सामान्य जनको हैं।

इसीलिए उनके काव्यमें इतनी सादगी, इतनी वेदना, इतनी तड़प और फिर भी जीवनके प्रति इतनी निष्ठा है कि युगपर युग बीतते गये हैं पर आज भी वह उर्दू काव्यमें 'खुदाये सखुन'की उपाधिसे पुकारे जाते हैं। उन्होंने खुद लिखा है कि मेरे काव्योद्यानमें गुलाब-पुष्प नहीं, कलेजेके टुकड़े फैले हुए हैं :—

गुलचीं समझके चुनियो कि गुलशनमें मीरके,
लख़्ते जिगर पड़े हैं नहीं बर्गहाए गुल।

या

हमको शायर न कहो मीर कि साहब हमने,
दर्दो-ग़म कितने किये जमा तो दीवान किया।

इस प्रकार इनकी सम्पूर्ण रचनापर इनके व्यक्तित्वकी गहरी छाप है। वह इनके जीवनका ही प्रतिबिम्ब है। कवियोंकी रंगीन उक्तियाँ, विचारोंकी सूझ, अतिशयोक्तिके मज़े बहुतोंको मालूम हैं, जगत्के साहित्यमें उनका बाहुल्य है। क्षणिक आकर्षणका उद्दाम प्रवाह भी हम आये दिन अपनी आँखोंसे देखा करते हैं किन्तु अपनी असफलताओंमें स्नेहकी जीवन-व्यापी दृढ़ता बहुत कम कवियोंमें दिखाई देती है; मीर ऐसे ही कवि हैं। चंचलता, सांसारिक विलासकी चमक-दमक, की कहीं कोई रेखा उनमें नहीं है। जो मुसीबत और ग़म, जो दर्दमन्दी, जो सोज़ गुदाज़ साथ लाये थे उसीका दुखड़ा सुनाते हुए चले गये, जो आज तक आँखवाले दिलोंमें असर और विदग्ध हृदयोंमें दर्द पैदा करते हैं। ऐसे विषय अन्य शायरोंके लिए काल्पनिक थे, जब इनपर वे गुज़र चुके थे। इनका आशिक़ाना-क़लाम (प्रेम-काव्य) वेदना, निराशा एवं असफलताकी आँखोंसे टपके हुए आँसुओं-का एक हसरतसे भरा हुआ मरहम है जो वियोगकी डिबियामें बन्द पड़ा

हुआ है। निष्ठुर प्रियतम द्वारा दिलपर दिये गये नश्तरके लिए यह मरहम बहुत कारगर है।

मीर साहबकी भाषा परिमार्जित और रचना साफ़ है। वर्णन इतना स्वाभाविक है जैसे बातें करते हैं और इसी बातने उनकी गजलोंको आदर्श नमूना बना दिया है क्योंकि ग़ज़ल है ही दो प्रेमियोंकी बातचीत। दिलके भावोंको, मुहाविरेका रंग देकर, बातों-बातोंमें अदा कर देते हैं। भाषामें ग़ज़बका ज़ोर है। इनकी कविताका सबसे बड़ा गुण सादगी और स्वाभाविकता है। पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता है मानो आँखोंके आगे कोई प्रभावशाली नाटक खेला जा रहा है। जहाँ वियोगका वर्णन करने लगेंगे, रुलाकर छोड़ेंगे। वही सीधी-सादी बात है किन्तु ढंग ऐसा है कि दिलमें सीधे जाकर चुभती है।

इनकी रचनाके बारेमें बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर एक बात स्पष्ट है कि उसमें अन्तर्वृत्तियोंकी प्रधानता है; उन्होंने शब्दों, सजावट, अलंकरणकी अपेक्षा अनुभूति एवं भाव-पक्षको अधिक महत्त्व दिया है। भाषा स्वयं भावोंका अनुसरण करती है। इनका कलाम साफ़ कह रहा है कि जिस दिलसे निकलकर आया हूँ, वह दुःख-दर्दका पुतला ही नहीं निराशा, हसरत और वेदनाका जनाज़ा था। सदैव एक रंगमें रँगे रहते थे। जो दिलपर बीतती थी उसे ही बिना बनावट, सीधे-सादे शब्दोंमें कह देते, जिसका सुननेवालोंपर जादूका-सा असर होता था।

इनका काव्य-विस्तार भी बहुत है। ६-६ दीवान तो ग़ज़लोंके ही हैं। इनकी गज़लें भी अनेक बहरों (छन्दों) में हैं। सभीमें मधुरता और वेदना है परन्तु छोटी बहरोंकी ग़ज़लोंमें और भी कुछ है। उनमें गहरी चुभन है, उनकी चितवन दिलोंमें सीधे पैठती है। फर्माइशी ग़ज़लें उतनी अच्छी नहीं हैं; उनमें वह प्रभाव नहीं दिखाई देता। यह स्वाभाविक है और इसका कारण स्पष्ट है। जो रचना कविके हृदयसे न निकले, वह दूसरोंके दिलोंमें क्या गुदगुदी पैदा करेगी ?

फारसी मुहाविरोंपर उर्दू बन्द लगाकर इन्होंने नया आविष्कार किया है। फ़ारसी मुहाविरोंके अनुवाद भी इनकी रचनामें देखे जाते हैं। कुछ उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

'खुशमनमे आयद' फ़ारसीका एक मुहाविरा है। इनका अर्थ होता है, 'मुझे भला नहीं लगता।' मीर साहब इसी मुहाविरेको उर्दूके साँचेमें यों ढालते हैं :—

नाकामिये[1] सद-हसरत[2] ख़ुश लगती नहीं वरना
अब जीसे गुज़र जाना कुछ काम नहीं रखता।

'नमूद करदन' फ़ारसीका एक फ़िक़रा है। इसका अर्थ है 'प्रकट करना।' मीर लिखते हैं :—

नमूद[3] करके वहीं बहरेग़म[4]में बैठ गया,
कहे तो मीर भी एक बुलबुला था पानीका।

इसी तरहके और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इनकी ऐसी रचना अच्छी है। इनमेंसे कुछ प्रसिद्ध और प्रचलित भी हैं किन्तु साधारणतया लोगोंने इन्हें भलीभाँति नहीं अपनाया।

कहीं-कहीं कुछ ऐसे फ़ारसी मुहाविरोंका आधार लेकर इन्होंने शेर कहे हैं जिन्हें पीछे लोगोंने छोड़ दिया। 'नज आमदन' अर्थात् शर्मिन्दा होना एक मुहाविरा था। इसकी छाया-मात्र लेकर ख़ूब कहा है :—

ख़ुलनेमें तेरे मुँहके, कली फाड़े गरेबाँ[5],
आगे तेरे रुख़सार[6]के गुलबर्ग[7] तर आवे।

कहीं-कहीं आपको जोश भी आ गया है। ऐसी जगह आपने ख़ूब

---

१. असफलता। २. बहुत अफ़सोस है। ३. प्रकट। ४. दुःख-सागर। ५. गला, कुर्तेका वह भाग जो गर्दनके पास होता है। ६. कपोल। ७. गुलाबकी पंखड़ी।

दूनकी हाँकी है, परन्तु उनकी ऐसी रचना भी मज़ेसे खाली नहीं। एक शेर देखिए:—

हरचन्द नातवाँ[1] हैं पर आ गया जो दिलमें,
देंगे मिला ज़मींसे तेरा फ़लक[2] कुलावा।

अनेक स्थानोंपर इन्होंने शब्दोंके विकृत रूपको भी स्थान दिया है। उदाहरण लीजिए:—

मैं बेक़रार ख़ाकमें कबतक मिला करूँ,
कुछ मिलने या न मिलनेका तो भी क़रार कर।

इसमें क़रार शब्द इक़रार (प्रतिज्ञा, वचन, शर्त) का बिगड़ा हुआ रूप है। इन्होंने अनेक प्रचलित हिन्दी शब्दोंका प्रयोग किया है; नासिख़ और आतिशकी तरह उन्हें चुन-चुनकर बहिष्कृत नहीं किया। निम्नलिखित हिन्दी शब्द इनकी कवितामें मिलते हैं:—

ठौर, दोष, समय, पर्वत, विश्राम, अच्छर, विस्तार, मूँद, ध्यान, नगर, साँझ, ढब, उदास, मुखड़ा, जोग, तजना, संसार, सुमरन, भस्म, अचरज, हंकार, राम-कहानी, मेंह, निदान, अंधाधुंध, गूदड़ इत्यादि।

उस समय उर्दू जनताके अधिक नज़दीक थी। इसमें हमारी ज़मीन बोलती थी। वलीने तो इसका बड़ा ख़्याल रखा था। उस समय उर्दू सचमुच हरियानाकी बेटी मालूम होती थी पर बादके कवियोंने उसे अरबी-फ़ारसी वस्त्रालंकारोंसे ऐसा सजाया कि वह शहरी और नक़ली हो गयी और उसकी कल्पनाएँ इस सरज़मीनमें नहीं ईरान और अरबमें पनपने लगीं।

मीरने स्वतंत्रतापूर्वक सैकड़ों हिन्दी शब्दोंका प्रयोग किया। उन्होंने भाषापर कोई बन्धन स्वीकार न किये, और अपनी भाषा बनाई। कहा ही

१. दुर्बल। २. आकाश।

करते थे कि उर्दू जामा मस्जिदकी सीढ़ियोंपर नाक रगड़नेसे, न कि फ़ारसी अरबी पढ़नेसे, आती है। व्याकरण भी इनका अपना ही है। सैर, जराहत, जान, गुलगश्त स्त्रीलिंग हैं पर इन्होंने पुल्लिगवत् प्रयोग किये हैं; इसी प्रकार हश्र, ख़ाब, गुलज़ार, नश्तर पुल्लिग हैं जो इनके यहाँ स्त्रीलिंग हो गये हैं। हिन्दी एवं फ़ारसी शब्दोंको मिलाकर नये विशेषण बना लिये हैं। जैसे शीरींवचन। 'मेरा'की जगह 'मुझ'का प्रयोग किया है। जैसे मुझ इश्क़ अर्थात् मेरा इश्क़। जहाँ आज एकवचनका प्रयोग होता है वहाँ प्रायः बहुवचनका प्रयोग किया है। जैसे रातें हमारियाँ (हमारीकी जगह), बातें तुम्हारियाँ (तुम्हारीकी जगह) विशेषणोंको तो अब भी दिल्ली और लखनऊमें कभी-कभी बहुवचनान्त बोलते हैं, जैसे मीठियाँ रेउड़ियाँ पर मीरने क्रियाओंका भी बहुवचनान्त प्रयोग किया है। जैसे—

> कहीं दिलकी लागैं लगीं छुटतियाँ हैं।
> और भी बातें न मानियाँ, आँखें तरसतियाँ हैं,
> बातें बहुत बनाइयाँ थीं, काहे को लड़तियाँ–
> झगड़तियाँ हो।

इत्यादि अनेक उदाहरण मिलते हैं।

अनेक स्थानोंपर सकर्मक क्रियाओंमें जहाँ 'ने' का प्रयोग होता है, 'ने' ग़ायब है। जैसे मैं काम किया, हम उसे देखा। यह दक्षिणका प्रभाव है। 'देखता रहता हूँ' की जगह 'देख रहता हूँ', टूट गया की जगह 'टूटा गया' इत्यादि रूप इनकी कवितामें पाये जाते हैं। उस वक़्त दिल्लीमें किसीका किसू, क़भीका कभू रूप प्रचलित था; मीरने इन्हीं रूपोंमें उनका प्रयोग किया है।

व्याकरण-दोष मीरके समकालिक अन्य कवियोंमें भी पाये जाते हैं। सौदाको देखिए:—

कहा तबीब[1]ने अहवाल[2] देखकर मेरा,
कि सख़्त जान है सौदा का आह क्या कीजै ।
हर संगमें शरार[3] है तेरे ज़हूरका,
मूसा नहीं जो सैर करूँ कोहे तूरका ।

ऐसा जान पड़ता है कि उस समय ये प्रयोग प्रचलित रहे होंगे और व्याकरण-सम्मत समझे जाते रहे होंगे ।

मीरने उर्दूको उर्दू रखनेकी कोशिश की; हिन्दकी बेटी समझ उसकी परवरिश की; इस ज़मीनके वातावरणसे भाव और शब्द लिये । यदि उर्दूवाले आज भी उनकी देनको समझ सकते तो इस देशकी राष्ट्रभाषासे उसका सम्बन्ध न टूटता और उसमें जो विदेशीपन, जो विजातीय तत्त्व आ गये हैं उन्हें सुधारा जा सकता । ख़ुसरो, वली, मीरने जो रास्ता दिखाया था, उसे हम भूल गये हैं; नतीजा यह है कि उर्दूके क्रियापद तो सब हिन्दीके हैं पर शब्द नब्बे प्रतिशत अरबी-फ़ारसीके । जैसे पाँव इस ज़मीन के हों और एक विदेशी सिरकी क़लम लगा दी गयी हो ।

२. अन्य कवियोंसे तुलना

कवियोंकी तुलना करना कोई अच्छी परम्परा नहीं । मानव-हृदयकी अनुभूतियाँ प्रायः मिल जाती हैं; कभी-कभी किसी कविके पूर्व-कथित भाव में परवर्त्ती कविको संशोधनकी अपेक्षा मालूम होती है । कभी दूसरी भाषा के भाव जो स्मृतिमें हैं आ जाते हैं । मीरने ही हाफ़िज़, सादी इत्यादि फ़ारसी कवियोंसे अनेक भाव लिये हैं । इसलिए मैं इस पहलूको नहीं लेता पर कवियोंकी प्रकृति तथा उनकी अभिव्यक्तिमें जो अन्तर होता है, उस दृष्टिसे तुलनाकी दो-चार बातें लिखूँगा । मीर अपने ढंगके एक ही कवि हैं; कोई उनका अनुकरण कर नहीं पाया है ।

---

१. चिकित्सक । २. अवस्था, हालत । ३. चिनगारी, अग्नि ।

मीर और सौदा :—मीरके समकालिक कवियोंमें सौदा सबसे प्रसिद्ध थे। यह जोड़ी उर्दू साहित्यमें लासानी है। दोनों अपनी ज़मीन पर निराले हैं। दोनोंके साँचे अलग हैं। एक रोता है; दूसरा हँसता है। एकके हृदयसे यदि कसक भरी आह निकलती है तो दूसरेके मुँहसे आनन्दके फ़व्वारे छूटते हैं। मीरके यहाँ सादगी है, करुणा है; सौदाके यहाँ वैभव है, आन-बान है। इसीलिए मीर ग़ज़लके बादशाह हैं; सौदा क़सीदे★के। जान पड़ता है, सौदाके सामने भी ये झगड़े थे। वह स्वयं कहते हैं :—

लोग कहते हैं कि सौदाका क़सीदा है ख़ूब,
उनकी ख़िदमतमें लिये मैं यह ग़ज़ल जाऊँगा।

अर्थात् लोग कहते हैं कि सौदाका क़सीदा ही अच्छा होता है; उनके सामने मैं आज यह ग़ज़ल पेश करूँगा (कि देखो यह किससे कम है ?)।

हकीमक़ुदरत उल्लाखाँ क़ासिम अपने तज़किरेमें लिखते हैं :—

"ज़ोम बाज़े आँकि सरआमद शुअराय फ़साहत आमा मिर्ज़ा मोहम्मद रफ़ीअ सौदा दर ग़ज़लगोई बूए न रसीद: अमाहक़ आनस्त कि "हर गुले रा रगो बूए दीगरस्त।" मिर्ज़ा दरियाएस्त वेकराँ व मीर नहरेस्त अज़ीमुश्शान। दर मालूमाते क़वायद 'मीर' रा बर मिर्ज़ा बरतर अस्त, व दर कूवत शायरी मिर्ज़ा रा बर 'मीर' सरवरी।"

सच बात तो यह है कि ग़ज़ल, क़सीदे और मस्नवीके क्षेत्र अलग-अलग हैं। जिस प्रकार क़सीदेके लिए विषयोत्कृष्टता, शब्द-योजना और सज्जाकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार ग़ज़लके लिए प्रेमी-युगलके विचारोंका स्वाभाविक प्रवाह, मिलन-सुखकी एवं वियोग-दुःखके अनुभव एवं संवेदनशीलताकी आवश्यकता होती है। मीर साहबकी प्रवृत्ति वेदनामयी,

★क़सीदा = फ़ारसी तथा उर्दूमें कविताके उस अंगको कहते हैं जिसमें कवि किसी महान् पुरुष अथवा उत्तम वस्तुका प्रशंसात्मक वर्णन करता है।

तीव्र संवेदनशीला थी और हृदय हसरतोंसे भरा हुआ था, उसमें गर्मी थी। इसलिए वह ग़ज़ल क्षेत्रके अधिपति बन गये। उनकी भाषा सरल और स्पष्ट है। वर्णन ऐसा है मानो प्रियतम (माशूक़) और प्रेमी (आशिक़) दोनों आमने-सामने बैठे बातें कर रहे हैं।

'सौदा' की प्रकृति इसके विपरीत थी। वे सांसारिक प्राणी थे। उनका झुकाव आन-बान भोग-विलासकी ओर ज़्यादा था। उनमें गंभीरता न थी, चंचलता थी। उनकी रचनाकी पंक्ति-पंक्तिसे यह प्रकट होता है मानो उनका हृदय उमंगोंमें उठा जा रहा है। उनके हृदयमें जोश है, तबीयत चुलबुली है, कहनेका ढंग जानते हैं। जो चीज़ उठाते हैं, उसे शब्दोंसे, अलंकारोंसे ख़ूब सजाकर लोगोंके सम्मुख रख छोड़ते हैं। रूप एवं सज्जाका जादू उनके पास है।

मीर साहब चुलबुले नहीं, गंभीर हैं। उनका हृदय-सागर निस्तब्ध है। वह अनुभव रखते हैं। उनकी दृष्टि है, स्वप्न है और नयनोंमें एक हलका विनोद है जो कहता है—तू कालचक्रको नहीं जानता; मैं उसके करिश्मे देख चुका हूँ। वह कल्पनाको अनुभवकी स्वाभाविकता पर ठुकरा देते हैं।

दोनोंपर उपयुक्त सम्मति :—एक दिन 'मीर' और 'सौदा'की रचनाओंके विषयमें दो व्यक्तियोंमें विवाद हो गया। दोनों ख़्वाजा बासित के शिष्य थे। उन्हींके पास जाकर प्रार्थना की कि आप फ़ैसला कर दीजिए। उन्होंने कहा—"दोनों प्रतिभाशाली कवि हैं किन्तु अन्तर इतना है कि 'मीर' साहबका कलाम 'आह' है और मिर्ज़ा साहब (सौदा) का कलाम 'वाह' है। उदाहरणमें उन्होंने 'मीर' का निम्नांकित शेर पढ़ा :—

सिरहाने 'मीर' के आहिस्ता बोलो,
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।

पश्चात् मिर्ज़ाका शेर पढ़ा :—

'सौदा'की जो बालीं[1] पै गया शोरे क़यामत[2],
ख़ुद्दामे-अदब[3] बोले, अभी आँख लगी है।

पहलेमें बेचारगी, दूसरेमें क्या शान है! ख़ाजा साहबकी यह भाव-भरी आलोचना बहुत उपयुक्त है।

× × ×

मीरके दो शेर हैं:—

हमारे आगे तेरा जब किसीने नाम लिया,
तो दिल सितमज़दहको हमने थाम-थाम लिया।
क़सम जो खाइए तो तालए-ज़ुलेखाकी,
अज़ीज़ मिस्रका भी साहब एक ग़ुलाम किया।

सौदाके भी इसीसे मिलते-जुलते शेर हैं :—

चमनमें सुबह जो उस जंगजूका नाम लिया,
सबाने तेग़का मौजे-रवाँ से काम लिया।
कमाल बन्दगीए-इश्क़ है ख़ुदावन्दी,
कि एक ज़नने महे-मिस्र-सा ग़ुलाम किया।

देखिए, दोनोंके भाव एक-दूसरेसे कितने लड़ गये हैं। दोनोंके प्रथम शेर देखिए। मीर कहते हैं कि "हमारे सामने जब किसीने तेरा नाम लिया तो मैंने अपने पीड़ित हृदयको थाम-थाम लिया" कि कहीं वह फट न जाय। सौदा कहते हैं कि "चमन (उद्यान) में प्रातःकाल जो उस लड़ाकेका नाम लिया तो (नाम लेते ही) सबा (प्रभाती वायु) ने

१. सिरहाना, तकिया, छत। २. प्रलयका नाद। ३. साहित्य-सेवक।

चलती तरंगोंसे तलवारका काम लेना शुरू कर दिया" (अर्थात् उसकी स्मृति आते ही, वियोगके कारण, प्रभाती शीतल वायु भी कृपाणके समान चुभने लगी ।)

दोनोंके कहनेका अपना-अपना ढंग है पर सौदाके शेरमें उतनी स्वाभाविकता, उतनी सादगी, उतनी विदग्धता नहीं है जितनी 'मीर' के शेरमें है । 'हमारे आगे तेरा जब किसीने नाम लिया' (तो क्या हुआ ?) 'दिल सितमज़दहको हमने थाम-थाम लिया ।' कितनी वेदना है ! सीधे तीर-सी लगती है । कहनेका ढंग ऐसा है मानो मीर साहब अपने प्रियतमके पास बैठे आप-बीती कह रहे हैं । दूसरे चरणने तो ग़ज़ब ढा दिया है । 'दिल सितमज़दहको हमने थाम-थाम लिया ।' थाम-थाम लेना ! कितना स्वाभाविक है ! थामको दोहराकर कविने कमाल पैदा कर दिया है ।

सौदाने बड़ी छलाँग मारी है पर कल्पनाका ज़ोर कहाँ तक जायगा ? विशेषत: प्रेमके मामलेमें । ऐसा कौन प्रेमी होगा जिसे प्रियतमके वियोगमें प्रभाती वायु दु:खदायिनी न प्रतीत हो ? यह मामूली-सी बात है जिसे सब जानते हैं और शुरूसे अबतक कहते आये हैं । सौदाने भी उसी आशय पर एक दीवार खड़ी की है । दिमाग़ी ख़ूराक सौदामें भले ही हो पर हृदय को सहलानेवाला रस उसमें नहीं है ।

× ×

चमनमें गुलने जो कल दावए-जमाल किया,
जमाले-यारने मुँह उसका ख़ूब लाल किया ।

—मीर

बराबरीका तेरी, गुलने जब ख़याल किया
सबाने मार थपेड़ा मुँह उसका लाल किया ।

—सौदा

मीरके शेरका आशय है कि "कल उद्यानमें गुल (गुलका रंग लाल माना गया है) ने जो अपनी सुन्दरताका दावा किया तो प्रियतमके सौन्दर्यने (अपनी स्मृति दिलाकर शर्मसे) उसका मुँह लाल कर दिया !" सौदा कहते हैं कि "तेरी बराबरी करनेका गुलने ज्योंही विचार किया त्योंही सबा (प्रभाती वायु) ने थपेड़ोंसे उसका मुँह लाल कर दिया।"

दोनों शेरोंमें विलक्षणता है। सौदाका शेर बहुत अच्छा हुआ है, उसमें बड़ी शोख़ी है पर मीर गंभीर हैं; वे उतावले नहीं। उनका जोश इस दर्जे का नहीं कि थप्पड़ों और थपेड़ोंकी नौबत आती। उनके मौनमें एक संजीदगी है जो चुप होकर भी बोलती है।

× ×

गिला मैं जिससे करूँ तेरी बेवफ़ाईका,
जहाँमें नाम न ले फिर वह आशनाईका।

—मीर

गिला लिखूँ मैं अगर तेरी बेवफ़ाईका,
लहूमें ग़र्क़ सफ़ीना[1] हो आशनाईका।

—सौदा

देखिए, मीरमें निराशाकी कितनी गहरी छाया है। वह निराश हो अपने प्रियतमसे कहते हैं :—"ज़रा सोचो, तुम मुझपर कितना ज़ुल्म करते हो, मुझे कितना सताते हो ? इससे तो तुम्हारे ही यश पर धब्बा लगता है न ? मैं जिसे भी तुम्हारी निष्ठुरताकी कहानी सुनाऊँगा वह फिर संसार में प्रेमका नाम न लेगा।"

सौदा साहब लिखनेकी धमकी देते हैं—जब आप बेवफ़ाईका गिला लिखेंगे तो जो होना होगा, होगा; मीरके यहाँ तो सिर्फ़ कहने-सुनने मात्रसे विरक्ति हो रही है।

---

१. नौका।

मीर और ख़ाजा मीर दर्द :—मीरके समकालिक कवियोंमें मीर दर्द ही ऐसे हैं, जिसमें 'मीर'के काव्यके अनेक गुण पाये जाते हैं। डा० अब्दुल हक़ने लिखा है—"यूँ तो मीर साहबके तमाम नामवर हमासिरों[1]के कलाममें सादगी, सफ़ाई और रोज़मर्रेकी पाबन्दी पाई जाती हैं लेकिन महज़ सलासत[2] और ज़बानकी फ़साहत[3] काम नहीं आ सकती जब तक कि ज़बानमें ताज़गी, अदाए-मतलबमें शिगुफ़्तगी[4] और ख़्यालमें बुलन्दी व जिद्दत[5] न हो। मीर साहबके कलाममें यह सब .ख़ूबियाँ एक जा[6] जमा हैं और फिर उसपर दर्द और तासीर .ख़ुदादाद[7] मालूम होती है। इसी वजहसे वह अपने तमाम हमासिरोंमें मुमताज़[8] और उर्दू शायरोंमें ख़ास दर्जा रखते हैं और उनकी इस मुमताज़ ख़सूसियत[9]को अब तक कोई नहीं पहुँचा है। अलबत्ता ख़ाजामीर दर्द एक ऐसे शायर हैं जिन्होंने सलासत व फ़साहते ज़बानके साथ इख़लाकी मज़ामीन[10] और सूफ़ियाना ख़्यालात की चाशनी दी है और कलाममें दर्द पैदा किया है। बयानमें जिद्दत और ताज़गी भी पाई जाती है जिसमें वह मीर साहबके लगभग पहुँच जाते हैं लेकिन बयानमें वह घुलावट नहीं जो मीर साहबके हाँ है····न सादगीके साथ वह सोज़ो-गुदाज़ है और न तख़य्युल[11] की वह शान है जो शायरी की जान है। ख़सूसन बयानका वह अनोखा अन्दाज़ जिसमें एक ख़ास नज़ाकत होती है नज़र नहीं आता। मीर साहबका बड़ा कमाल इसी में हैं।"

मीर और अनीस : जलन, दुःख और तड़पनके बयानमें अनीस उर्दू साहित्यमें बेजोड़ हैं। मर्सियेके बादशाह हैं। फ़साहतमें उनका स्थान बहुत ऊँचा है पर वह भी मीरके बराबर नहीं पहुँचते। मीरमें जो सरलता

१. समकालिक। २. प्रसाद गुण, सरलता। ३. लाटिका, कोमलता, ख़ुशबयानी। ४. प्रफुल्लता। ५. नवीनता। ६. स्थान। ७. ईश्वरदत्त। ८. विशिष्ट। ९. विशेषता। १०. नैतिक विषय। ११. कल्पना।

और अकृत्रिमता है वह अनीसमें नहीं। उनमें कुछ तकल्लुफ़ है। अब्दुलहक़ साहब लिखते हैं:—"मीर इससे बिल्कुल बरी है। वह ख़ुद सोज़ोग़मका पुतला है और उसका शेर सोज़ोग़मकी सही और सच्ची तस्वीर है जिसमें तकल्लुफ़का नाम नहीं। अनीसके हाँ ख़्यालके मुक़ाबिलेमें अलफ़ाज़[1] की बहुतायत है और ख़्यालसे पहिले लफ़्ज़ पर नज़र पड़ती है लेकिन मीरके अशआर[2] में अलफ़ाज़ ख़्यालके साथ इस तरह लिपटे हुए हैं कि पढ़नेवाला महो[3] हो जाता है और इस लफ़्ज़े-ख़्यालसे अलग नज़र नहीं आता। मीर अनीसके हाँ धूमधाम और बुलन्द-आहंगी[4] है, मीरके हाँ सकून और ख़ामोशी है और उसके शेर चुपके-चुपके ख़ुद बख़ुद दिलमें असर करते चले जाते हैं जिसकी मिसाल उस नश्तरकी-सी है जिसकी धार निहायत बारीक और तेज़ है उसका असर उसी वक़्त मालूम होता है जब वह दिल पर जाकर खटकता है। अनीस रुलाते हैं, मीर ख़ुद रोता है। यह आप बीती है और वह जगबीती।"

मीर, जुरअत और सौदा:—मीरके भावोंकी छाया अनेक उर्दू कवियोंकी रचनाओंमें दिखाई पड़ती है। यदि उन सबका तुलनात्मक वर्णन किया जाय तो एक बड़ा ग्रंथ तैयार हो जायगा। यहाँ मैं दो एक उदाहरण दूँगा :—

अब करके फ़रामोश[5] तो नाशाद करोगे,
पर हम जो न होंगे तो बहुत याद करोगे।

—मीर

है किसका जिगर जिसपे यह बेदाद करोगे,
लो हम तुम्हें दिल देते हैं क्या याद करोगे?

—जुरअत

---

१. लफ़्ज़ (शब्द) का बहुवचन रूप। २. शेरका बहुवचन। ३. तल्लीन। ४. उच्च ध्वनि। ५. विस्मृत।

जिस रोज़ किसी औरपे बेदाद करोगे,
यह याद रहे हमको बहुत याद करोगे।

—सौदा

तीनों शेरोंके अर्थ साफ़ हैं और सबमें 'मीर'की भावना, किंचित् परिवर्तनके साथ, विराजमान है। सौदाके लिए तो भावापहरणका कलंक लगाया ही नहीं जा सकता क्योंकि वह मीरके समकालिक थे पर 'जुरअत' महाशयके शेरमें 'मीर' साफ़ झलक रहे हैं।

'सौदा' के शेरमें अजीब लुत्फ़ है पर मीरके दूसरे पदने उसमें एक ऐसा अनुभूतिका वातावरण पैदा कर दिया है जिससे वह दिलमें चुभकर रह जाता है।

मुद्दई मुझको खड़े साफ़ बुरा कहते हैं,
चुपके तुम सुनते हो बैठे, इसे क्या कहते हैं ?

—मीर

तूने सौदाके तईं क़त्ल किया कहते हैं,
यह अगर सच है तो ज़ालिम इसे क्या कहते हैं ?

—सौदा

आईना रुख़को तेरे अहले सफ़ा कहते हैं,
उसमें दिल अटके है मेरा इसे क्या कहते हैं ?

—जुरअत

तीनों कवियोंके भावोंमें कोसोंका अन्तर है, हाँ ज़मीन एक है। मिसरेका अन्तिम प्रश्नवाक्य सबने अपनाकर पूर्त्तियाँ की हैं। सौदाके शेरमें कुछ विशेषता नहीं है। वह पूछते हैं कि 'तूने सौदाको क़त्ल किया है, ऐसा लोग कह रहे हैं। अगर यह सच है तो ऐ ज़ालिम ! यह क्या है ?'— पहिले तो अभी बात ही शुबहेमें है, 'अगर सच है' ने क़त्लको संदिग्ध

बना दिया है, फिर जो क़त्ल है वही पूछता है, यह बेतुकी बात है। बिना जुर्म साबित हुए ही आपने 'ज़ालिम'की उपाधि भी दे डाली। शेर बहुत साधारण है। हाँ, दूसरे दोनोंमें कुछ विचित्रता है।

मीर अपने प्रियतमसे पूछते हैं:–"देखो, तुम्हारे सामने ही मेरे विरोधी मुझको स्पष्ट बुरा-भला कहते हैं, मेरा अपमान करते हैं और तुम चुपचाप बैठे-बैठे सुनते रहते हो, उसका प्रतिवाद करनेकी तनिक चेष्टा नहीं करते। बोलो, यह क्या है ?" (यही तुम्हारा प्रेम है) भाषा कितनी सादी है; बिल्कुल बातचीतकी ज़बान है। एक शब्द फ़ालतू नहीं। मुलायम और रोती हुई ज़बान है।

जुरअत तो इस समय दूसरी ही दुनियामें हैं। उनका कहना है कि "स्वच्छताके पारखी तेरे मुख-मण्डलको आईना (दर्पण) कहते हैं तब दर्पण–जैसी चिकनी चीज़ पर भी मेरा दिल क्यों अटक रहा है ?" (चिकनी चीज़ पर फिसलना चाहिए, अटकना नहीं।)

एक ज़मीन पर अनेक कवियोंके अनेक शेर मिलते हैं—

बुरक़ेको उठा चेहरेसे वह बुत अगर आये,
अल्लाहकी क़ुदरतका तमाशा नज़र आये।

—मीर

हरगिज़ न मुरादे दिले[1]-माशूक़ बर[2] आये,
यारब ! न शबे-वस्ल[3] के पीछे सेहर[4] आये।

—मसहफ़ी

उस पर्दानशींसे कोई किस तरह बर आये,
जो ख़ाबमें भी आये तो मुँह ढाककर आये।

—जुरअत

१. हृदयकी इच्छा। २. पूर्ण होना। ३. मिलन-रजनी। ४. प्रभात।

फ़िरदौस[1] में ज़िक्र उस लबेशीरीं[2] का गर आये,
पानी देहने[3] चश्मए-कौसर[4] में भर आये।

—ज़ौक

'मीर' ने प्रियतमके सौन्दर्यको भगवद्‌विभूति बताकर उसे बहुत ऊँचा उठा दिया है।

३. मीरके कवि मित्र

बहुत-से लोग समझते हैं कि मीरकी तुनुकमिज़ाजी और स्वाभिमानके कारण, उनके मित्र रहे ही न होंगे पर ऐसी बात नहीं। जैसे हृदयहीन, अभिमानी और असंस्कृत लोगोंके प्रति वह आँख उठाकर न देखते थे, उन्हें मुँह न लगाते थे वैसे ही सहृदय, काव्य-रसिक व्यक्तियों तथा श्रेष्ठ कवियोंके प्रति उनमें स्नेह और सम्मानका भाव भी था। उनके कई ऐसे मित्र थे जो स्वयं अच्छे कवि थे और जिनके साथ मीरकी खूब निभती थी। (१) शर्फुद्दीन अली खाँ 'पयाम' के पुत्र नजमुद्दीन अलीखाँ 'सलाम' इनके परम मित्रोंमें थे। प्रायः दोनों साथ रहते थे। दोनोंमें काव्य-चर्चा होती, गप्पें लगतीं, साहित्य एवं संस्कृतिके अनेक पहलुओं पर बहस होती थी। (२) इनके दूसरे दोस्त श्रेष्ठ उर्दू कवि ख्वाजा मीर दर्द थे। मीर दर्दके यहाँ हर महीनेकी पंद्रह तारीखको मुशायरा हुआ करता था, उसमें मीर साहब नियमित रूपसे सम्मिलित हुआ करते थे। बादमें ख्वाजा साहबके अनुरोध पर यह मुशायरा मीरके ही मकान पर होने लगा था। (३) मीर सज्जाद—यह भी आगरा (अकबराबाद) के रहनेवाले थे पर दिल्ली (शाहजहानाबाद) रहने लगे थे। इनके यहाँ भी मुशायरे हुआ करते थे और मीर उनमें जाते थे। मीर इन्हें मानते थे। (४)

१. स्वर्ग। २. मधुराधर। ३. जिह्वा। ४ स्वर्गस्थ अमृतकुण्ड विशेष।

मीर विलायत अलीखाँ, (५) अशरफ़ अलीखाँ 'फुगाँ', (६) मोहम्मद इस्माइल 'बेताब', (७) इनाम उल्लाख़ाँ 'यक़ीन', (८) मियाँ शहाबुद्दीन 'साक़िब', (९) सय्यद अब्दुलवली 'अज़लत', (१०) मीर अब्दुलहई 'ताबाँ', (११) हसन अली 'शौक़', (१२) 'क़ायम' चाँदपुरी, (१३) फ़ज़ल-अली 'दाना', (१४) मीर हसन, (१५) हिदायत उल्ला 'हिदायत्त', (१६) मोहम्मद आरिफ़ 'आरिफ़', (१७) 'बेदार', (१८) लाला टेकचन्द 'बहार', (१९) मीर अब्दुल रसूल 'निसार', (२०) मोहम्मद अमानुल्ला 'ग़रीब', (२१) ज़ियाउद्दीन 'ज़िया', (२२) मियाँ इब्राहीम, (२३) मीर घासी मीर अली नक़ी (इनके यहाँ भी मुशायरा होता था)।

४. मीरके शिष्य

मीरका यश यद्यपि दूर-दूर तक फैला किन्तु उनके जैसे महाकविके शिष्योंकी संख्या इनी-गिनी थी। वह जल्द किसीको शिष्य न बनाते थे। मन्नतको इन्कार कर दिया, सआदत यार ख़ाँ 'रंगी' से कह दिया तीर-तलवार चलाना सीखिए, शायरी जिगरसोज़ीका काम है, उसमें न पड़िए। नासिख़के साथ भी यही हुआ। पत्थरका कलेजा और फ़ौलादका दिल वाला ही उनके साथ निभ सकता था। इन बातोंका विचार करते हुए कोई आश्चर्य नहीं कि उनके शिष्योंकी संख्या बहुत कम है। कई तो इनसे उत्साह दान न पा दूसरोंके पास चले गये और उनके शिष्य हो गये। उनकी पुस्तक 'नकातुश्शुअरा' से ज्ञात होता है कि उनके निम्नलिखित शिष्य थे:—

१. मीर अब्दुलरसूल 'निसार'—अकबराबादसे ही दिल्ली आये थे। मीर लिखते हैं:—"मेरे मश्विरेसे शेर कहते हैं।....बहुत आरास्ता-पैरास्ता, संजीदा और समझदार हैं। मैं इनके तौर-तरीक़से बहुत ख़ुश हूँ।"

काव्यका उदाहरण—

जो है याक़ूब यूसुफ़ देखना मंज़ूर आँखोंसे,
तो इतना फूटकर मत रो कि जाये नूर[1] आँखोंसे।

२. **मोहम्मद मोहसिन 'मोहसिन'**—"मीर'के भतीजे थे। काव्यका उदाहरण—

क्या जानिए वह शोख़ किधर है किधर नहीं,
हमको तो तन-बदनकी भी अपनी ख़बर नहीं।

३. **वृन्दावन 'राक़िम'**—पहिले 'मीर' के शिष्य थे, बादमें 'सौदा'के पास चले गये। काव्यका उदाहरण—

ऐ बाग़बाँ! नहीं तेरे गुलशनसे कुछ ग़रज़,
मुझको क़सम है छेड़ूँ अगर बर्गोबर कहीं।
इतना ही चाहता हूँ कि मैं और अन्दलीब[2],
आपसमें दर्देदिल कहें टुक बैठकर कहीं।

४. **मियाँ जग्गन**—काव्यका एक ही उदाहरण, नकातुश्शुअरामें मिलता है:—

इस दिल मरीज़े इश्क़को आज़ार ही भला,
चंगा हो तो सितम है, यह बीमार ही भला।

५. **तजल्ली**—मीर मोहम्मद हुसेन नाम था। बेगम बाग़, चाँदनी चौक, दिल्लीमें रहते थे। मीरके भाँजे और दामाद थे। काव्यका उदारण—

मेरी वफ़ापे तुझे रोज़ शक़ था ऐ ज़ालिम!
य' सर यह तेग़ है, ले अब तो एतबार आया।

१. प्रकाश। २. बुलबुल।

६. **जान**—जानअली नाम था। काव्यका उदाहरण—

जिक्र उस ज़ुल्फ़की दराज़ीका,
सुबहसे ताबशाम होता है।

७. **शकेबा**—शेख़ ग़ुलाम हुसेन। काव्यका उदाहरण—

नीम बिस्मिल उसने गर छोड़ा शकेबा[1] ग़म नहीं,
पर यह ग़म है एतबारे दस्ते क़ातिल उठ गया।

८. **लुत्फ़**—मिर्ज़ाअली नाम। हैदराबादकी तरफ़के रहनेवाले थे। काव्यका उदाहरण—

बढ़ाया क़िस्सए संबुल सबाने हद लेकिन,
फ़िसाना ज़ुल्फ़का तेरे बहुत दराज़ रहा।

९. **मजनूँ**—राय भीमनाथके पुत्र थे, साधुप्रकृति, नंगे सिर, सनकी, अपनेमें लीन-से रहनेवाले। काव्यका उदाहरण—

जिससे जी चाहे मिलो तुम, न किसीसे पूछो,
मुझसे क्या पूछते हो, अपने ही जीसे पूछो।

१०. **मिर्ज़ा**—आक़ा मिर्ज़ा नाम था। काव्यका उदाहरण—

बालोंसे जब वह फिर गया, ग़शसे खुली तब आँख,
मुझ नारसाके तालए-ख़ाबीदा[2] देखना।

इनके अतिरिक्त रासिख़, बेगम, नज़रने भी शिष्यता ग्रहण की थी। अपनी पुस्तक 'इन्तख़ाब मस्नवियाते मीर' में स्व० सर शाह मुहम्मद सुलेमानने निम्नलिखित नाम भी दिये हैं :—

सख़ुन, इश्क़, आर्ज़ू, अब्रू।

१. सब्र करनेवाला। २. सुप्त भाग्य।

५. मीरके कुछ विरोधी

मीरके तीक्ष्ण स्वभावके कारण, तथा द्वेष-वश भी, 'मीर' के कई विरोधी हो गये थे। इनमें दो-तीन प्रमुख हैं। १. **खाक़सार**—इन्होंने मीर के तज़किरे 'नकातुश्शुअरा' के उत्तरमें एक तज़किरा लिखा था। मीरने भी इनके काव्यपर आपत्तियाँ की हैं। जान पड़ता है, दोनोंको दोनोंसे चिढ़ थी। १. **'आजिज़'**—यह भी मीरके विरोधी थे और मीरने भी उनके कलामपर आक्षेप किये हैं। ३. **बक़ा**—यह 'मीर' और सौदा दोनों के विरोधी थे। एक बार मीरके लिए कहा—

पगड़ी अपनी सँभालिएगा मीर,
और बस्ती नहीं, य' दिल्ली है।

एक बार मीर और सौदा दोनोंपर फब्तियाँ कसीं—

मीर व मिर्ज़ाकी शेरखानीने
बस कि आलममें धूम डाली थी।
खोल दीवान दोनों साहबके,
ऐ 'बक़ा' हमने जो ज़ियारत की।
कुछ न पाया सिवाय इसके सख़ुन
एक तू-तू कहे है एक ही-ही।

मीर और सौदा एक दूसरेकी इज्ज़त भी करते थे और बीच-बीचमें परस्पर आक्षेप करनेसे भी नहीं चूकते थे।

६. मीरकालिक काव्य-गोष्ठियाँ

मुशायरेकी परम्परा भारतीय है। उर्दू मुशायरेका आरम्भ दिल्लीमें हुआ। खाँ आरज़ू इसके प्रारम्भकर्ता थे। उनके यहाँ काव्य-गोष्ठी हुआ करती थी जिसमें सौदा, मीर, दर्द, जुर्रत इत्यादि सम्मिलित हुआ करते

थे। 'आज़ाद' के 'आबेहयात' से पता चलता है कि एक बार इस मुशायरे में सौदाने यह शेर पढ़ा—

आलूदए-क़तराते-अर्क़[1] देख जबीं[2] को।
अख़्तर[3] पड़े झाँके हैं फ़लक[4] पर से ज़मींको।

वस्तुतः यह फ़ारसीके कवि क़दसीके निम्नलिखित शेरका भावापहरण मात्र था—

आलूदए-क़तराते-अर्क़ दीदः जबीं रा।
अख़्तर ज़फ़लक मीं नगर्द रूएज़मींरा।

ख़ाँ 'आर्ज़ू' ने तुरन्त कहा—

शेरे सौदा हदीसे क़दसी है,
चाहिए लिख रखें फ़लक पर मलक।

ख़ाँ आर्ज़ूका मतलब तो था कि तुमने क़दसीकी चोरी की है पर सौदाने दूसरा अर्थ लेकर समझा कि मेरी तारीफ़ कर रहे हैं, और ख़ाँ आर्ज़ूसे लिपट गये।

एक दिन मीर गोष्ठीमें नहीं थे। वह ख़ाँ आर्ज़ूके घरपर ही रहते थे। जब बाहरसे आये तो आर्ज़ूने सुनाया कि आज मिर्ज़ा सौदाने बहुत उम्दा मतला[5] पढ़ा—

चमनमें सुबह जो उस जंगजूका नाम लिया।
सबाने तेग़का आबे-रवाँसे काम लिया।

१. पसीनेकी बूँदोंसे युक्त। २. ललाट,माथा। ३. तारा। ४. आकाश। ५. एक शेर।

'मीर'ने सुनते ही यह मतला बनाकर पढ़ा—

हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया।
दिल सितमज़दहको हमने थाम-थाम लिया॥

ख़ाँ आर्ज़ू इसे सुनकर उछल पड़े और कहा—.ख़ुदा चश्मे बद[1] से महफ़ूज़[2] रखे।

ख़ाँ आर्ज़ूके यहाँकी गोष्ठी बन्द हो गयी तब मीरदर्दके यहाँ यह सिलसिला शुरू हुआ। फिर वही महफ़िल मीरके यहाँ होने लगी। मीरअली नक़ी और हाफ़िज़ अलीमके यहाँके मुशायरोंका ज़िक्र भी मीरने किया है।

धीरे-धीरे मुशायरेकी परम्परा लोकप्रिय और विकसित होती गयी और दूर-दूर तक फैल गयी। सैर, तमाशे, त्यौहार एवं उत्सवोंके अवसर पर प्रायः काव्य-गोष्ठियाँ होती थीं। इनके कारण उर्दूकी उन्नतिमें बड़ी सहायता मिली।

७. मीर द्वारा किये गये संशोधन

डा० फ़ारूक़ीने नकातुश्शुअरा के आधार पर अन्य कवियोंकी रचनामें 'मीर' द्वारा किये संशोधनोंकी चर्चा की है। मीरने उक्त ग्रन्थमें जहाँ-तहाँ लिखा है कि अगर यह शेर मेरा होता तो इस तरह लिखता या अगर अमुक शब्दकी जगह अमुक शब्द होता तो ज़्यादा अच्छा होता। इन संशोधनोंसे मीरके काव्यकी गहरी पकड़का पता चलता है।

'मजमूँ'का शेर है :—

मेरा पैग़ामे वस्ल[3] ऐ क़ासिद[4],
कहो सबसे उसे जुदा करके।

१. बुरी नज़र। २. बचाये। ३. मिलन-संदेश। ४. दूत।

मीरने 'कहो'को 'कहियो' करके शेर यों कर दिया :—

मेरा पैग़ामे वस्ल ऐ क़ासिद,
कहियो सबसे उसे जुदा करके ।

मज़मूँ :

मज़मूँका एक दूसरा शेर है जिसमें संशोधन किया गया है ।

मज़मूँ तू शुक्रकर कि तेरा नाम सुन रक़ीब[1],
ग़ुस्सेसे भूत हो गया, लेकिन जला तो है ।

संशोधन :

मज़मूँ तू शुक्रकर कि तेरा इस्म[2] सुन रक़ीब,
ग़ुस्सेसे भूत हो गया, लेकिन जला तो है ।

'यकरंग' (मुस्तफ़ाख़ाँ) का शेर है—

सच कहे जो कोई सो मारा जाय,
रास्ती हैगी दार[3] की सूरत ।

'मीर'ने 'सच'को 'हक़' कर दिया । लिखा है—"ब एतक़ाद फ़क़ीर बजाय सच हर्फ़ हक़ अव्वल अस्त ।"

'यकरंग'का एक शेर है :—

इसको मत बूझो सजन औरोंकी तरह
मुस्तफ़ाख़ाँ आशना[4] यकरंग है ।

'मीर' लिखते हैं कि अगर मेरा शेर होता तो इस तरह लिखता :—

मत तलव्वुन[5] इसमें समझें आपसा
मुस्तफ़ाख़ाँ आशना यकरंग है ।

---

१. प्रतिद्वन्द्वी । २. नाम । ३. सूली । ४. प्रेमी । ५. बदल जाना ।

मीर सज्जाद अकबराबादीका एक शेर है :—

काफ़िर बुतोंसे दाद न चाहो कि याँ कोई
मरजा सितमसे उनके तो कहते हैं हक़ हुआ।

मीरने 'काफ़िर'को 'बातिल' कर दिया।

उन्हींका एक और शेर है :—

हिज्रे शीरीं[1] में क्योंकि काटेगा
हिज्रकी यह पहाड़-सी रातें।

मीरने संशोधन किया—

किस तरह कोहकन[2] पे गुज़रेंगी,
हिज्रकी यह पहाड़-सी रातें।

संशोधनसे शेर खिल गया है।

इनाम उल्लाख़ाँ 'यक़ीन'का शेर है :—

मजनूँकी ख़ुशनसीबी करती है दाग़ मुझको,
क्या ऐश कर गया है ज़ालिम दिवानेपनमें।

'मीर'का संशोधन देखिए :—

मजनूँकी ख़ुशमआशी करती है दाग़ मुझको।

'ख़ाकसार'का शेर है—

ख़ाकसार उसकी तू आँखोंके कहे मत लगियो,
मुझको इन ख़ानाख़राबों ही ने बीमार किया।

मीरने 'बीमार किया'की जगह 'गिरफ़्तार किया' कर दिया।

इन संशोधनोंसे पता चलता है कि मीर उर्दूकी प्रकृति तथा काव्यकी मनोभूमिके कितने बड़े उस्ताद थे।

---

१. शीरीं (ईरानकी प्रसिद्ध प्रेमिका) के वियोगमें। २. पहाड़ तोड़नेवाला अर्थात् शीरींका प्रेमी फ़रहाद।

मीरकी रचनाएँ

●

मीरने पद्य और गद्य, उर्दू और फ़ारसी दोनोंमें, अपनी रचनाएँ की हैं। इनका विस्तार भी बहुत दूर तक है। पद्य-रचनाएँ तो अनेक प्रकारकी और अनेक रंगोंमें हैं। हम यहाँ उनकी संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

१. पद्य-रचनाएँ

पद्य-रचनाओंको अनेक भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। जैसे:—

क. ग़ज़ल

ख. क़सीदा

ग. मस्नवी

घ. स्फुट (रुबाई, वासोख्त, हफ़्तबन्द इत्यादि)

क. ग़ज़ल—ग़ज़ल मीरका अपना क्षेत्र है। इसके वह बादशाह हैं। इस मैदानमें उनकी बराबरीका दावा आज तक कोई न कर सका। ऐसा जान पड़ता है कि वह ग़ज़लगोईके लिए ही पैदा हुए थे। उनमें इतना दर्द, इतना सोज़ो-गुदाज़ है कि दिल रो-रोके रह जाता है। वह सीधे दिलको छूते हैं। छोटी बहरोंकी ग़ज़लें तो अत्यन्त उच्चकोटिकी हैं। इनमें उनके आँसू ही शेर बन गये है। डा० फ़ारूक़ीने ठीक ही लिखा है कि हर मिसरा ख़ूनकी बूँद है और दिल प्रेम-पीड़ाकी अग्निशाला है। शब्दोंमें वह घुलावट है कि 'दिल बताशा-सा घुला जाता है जी।' इनकी ग़ज़लें अपनी सफ़ाई और बाँकपनके लिए उर्दू साहित्यमें प्रसिद्ध हैं। विचारोंका अनोखा तारतम्य, कहनेका ढंग और वेदनाकी अनुभूतिने इनकी ग़ज़लोंको सबसे

अलग ही रखा है। सौदा, ज़ौक, मीरदर्द, ग़ालिब कोई इन तक नहीं पहुँचता। इनका ढंग निराला है। इनकी नक़ल बहुतोंने की पर कोई वह बात पैदा न कर सका जो इनमें है।

ग़ज़लोंके छः दीवान हैं। और हर दीवानमें सैकड़ों ग़ज़लें हैं।

ख. क़सीदा—उच्च कोटिका निर्वाचन, शानदार शब्दयोजना, बन्दिशकी चुस्ती, हृदयकी चंचलता और हाज़िरजवाबी, यह सब क़सीदेके लिए आवश्यक उपादान हैं। इन बातोंकी 'मीर' में कमी थी। वह अपनी सादगी, गहरी अनुभूति, गंभीरता और बाँकपनके लिए प्रसिद्ध थे, इसीलिए इनके क़सीदे बहुत कम हैं और जो हैं उन्हें भी उच्चकोटिका नहीं कहा जा सकता। इनकी ग़ज़लों और क़सीदोंको देखनेसे साफ़-साफ़ प्रकट होता है कि ग़ज़ल और कसीदा दोनोंके क्षेत्र एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न हैं। 'क़सीदा' के बादशाह सौदा हैं। वह उनकी रंगीन तबीयतके सर्वथा अनुकूल है; जब मीरकी प्रकृति ही उसके प्रतिकूल है।

मुसाहिबों और अमीरोंकी प्रशंसामें क़सीदे न कहनेका यह भी एक कारण था कि इनकी सादगी, स्वाभिमान, इनकी सम्पूर्ण प्रकृति किसी मनुष्यकी चापलूसी एवं झूठी प्रशंसाके अनुकूल न थी। इन्हें अपनी ग़रीबी सह्य थी पर किसीके आगे झुकना मंजूर न था। खुद ही कहा है:—

मुझको दिमाग़ वस्फ़े[१] गुलो[२] यासमन[३] नहीं,
मैं जूँ नसीमेबाद[४] फरोग़े चमन[५] नहीं।
कल जाके हमने 'मीर'के दरपर सुना जवाब,
मुद्दत हुई कि याँ वह ग़रीबुलवतन[६] नहीं।

१. गुण। २. फूल, प्रायः गुलाबके अर्थमें आता है। ३. चमेली। ४. शीतल, मन्द, सुगन्ध, प्रभाती, समीर। ५. चमन प्रकाशित करनेवाला। ६. लावतन।

इसीलिए इनके क़सीदे बहुत थोड़े हैं और जो हैं भी वे शिथिल हैं। अपनी 'दीवाने-ग़ालिब' की टीकामें 'तबातबाई' ने तो यहाँ तक कहा है कि वह क़सीदा कहना जानते ही नहीं। 'तज़किरा गुलशने बेख़ार' में नवाब शेफ़्ताने भी कुछ ऐसी ही राय ज़ाहिर की है। 'शेरुलहिन्द' में ज़रूर इस क्षेत्रमें भी इनकी सफलताका किञ्चित् उल्लेख है पर वह निरर्थक है। यों तो कोई महाकवि जो कुछ भी लिखता है उसमें उसकी कुछ-न-कुछ विशेषता होती ही है। पर इतना तय है कि क़सीदे लिखने लायक़ तबीयत ही उन्होंने नहीं पाई थी, न उन्हें इस क्षेत्रमें सफलता मिली। किसीकी प्रशंसा वा निन्दामें इन्होंने जो भी लिखा, उसमें ज़ोर नहीं है, रस नहीं है, मज़ा नहीं है। इन चीज़ोंके मज़े लूटने हों तो 'सौदा'के चमनकी सैर कीजिए—वहाँ आपको निराली सजावटके दर्शन होंगे, मादक-सुगंध प्राप्त होगा और नयनानन्ददायिनी सुषमा देखनेको मिलेगी।

ग. मस्नवी:—ग़ज़लके पश्चात् सबसे अधिक सफलता मस्नवीमें ही 'मीर'को मिली है। इस सफलताकी मर्यादाके सम्बन्धमें विद्वज्जनोंमें मत-भेद है। सर शाह सुलेमानने अपनी पुस्तक 'इन्तख़ाब-मस्नवियात-मीर'में शेरुल हिन्दके प्रणेता आचार्य अब्दुलसलाम नदवीका यह मत उद्धृत किया है:—

"वह मस्नवियातके मूजिद[1] और उम्दा नमूना हैं। उनमें क़ुदरती अन्दाज़ है। उन्हींकी बदौलत मस्नवीको तरक़्क़ी हुई। मीर हसन और शौक़को उन्हींका मुक़ल्लिद[2] समझना चाहिए।"

यह कहना कि वह मस्नवीके आविष्कारक हैं, इतिहास-विरुद्ध और अप्रामाणिक है क्योंकि उनके काफ़ी पहिले दक्षिणमें मस्नवियाँ लिखी जा चुकी थीं। हाँ, मीरके कारण उत्तर भारतमें मस्नवी ज़रूर पनपी और उन्नत हुई। मीरहसन और शौक़को 'मीर' का अनुयायी वा अनुकरणकर्ता

१. आविष्कारक, ईजाद करनेवाला। २. अनुकर्त्ता, अनुयायी।

कहना भी सत्य नहीं क्योंकि मीर हसन और शौक़ दोनों पूरी तरह लखनवी रंगमें रँगे हुए हैं। मीर हसन तो बचपनसे ही लखनऊ आ गये थे और वहीं के वातावरणमें उनका मानसिक गठन हुआ तथा उनकी कविता जगी इसलिए उनपर लखनऊकी जीवनशैलीका गहरा प्रभाव है और उनकी मस्नवी 'सेहरुलबयान' उसी रंगमें डूबी हुई है। 'शौक़' पर भी उसी परम्पराका प्रभाव है; जब मीर देहलवी जीवन-धारणाओंसे अत्यधिक प्रभावित हैं; अपनी ग़ज़लोंमें भी और मस्नवियों में भी।

छोटी-बड़ी, बुरी-भली, कुल मिलाकर, इन्होंने २५ मस्नवियाँ लिखी हैं:—१. मस्नवी दर जश्ने होली, २. मस्नवी दर बयाने होली, ३. मस्नवी दर तारीफ़े सग व गर्बा, ४. मस्नवी दर बयाने बुज़, ५. मस्नवी दर बयाने मुर्गबाज़ाँ, ६. मस्नवी दर हजो ख़ाना ख़ुद, ७. मस्नवी दर हजो ख़ानए ख़ुद कि बसबब शिद्दते बाराँ खराबशुदः बूद, ८. मस्नवी दर मज़म्मत बरशगाल कि बाराँ दर इमसाल ज़्यादा शुदः बूद, ९. मस्नवी दर हज़ो नाअह्ल, १०. मस्नवी तम्बीहुलजेहाल, ११. मस्नवी अज़दरनामा, १२. मस्नवी दर मज़म्मत आईनादार, १३. मस्नवी दरहजो अकवल, १४. मस्नवी दर बयान कज़ब, १५. मस्नवी शिकारनामा; १६. मस्नवी साक़ीनामा, १७. मस्नवी शोलए इश्क़, १८. मस्नवी दरियाए इश्क़, १९. मस्नवी इश्क़िया, २०. मस्नवी मुआमिलाते इश्क़, २१. मस्नवी जोशे इश्क़, २२. मस्नवी एजाज़े इश्क़, २३. मस्नवी निसंगनामा, २४. मस्नवी ख़ाबोख्याल, २५. मस्नवी दर मज़म्मत दुनिया।

इनमें छः प्रेमाख्यान-प्रधान वा इश्क़िया मस्नवियाँ हैं, सात ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध नवाब आसफ़ उद्दौला और उनके दरबारसे है। कुछ छोटी-छोटी ऐसी हैं जो मीरके अपने जीवन वा पारिवारिक वातावरणसे सम्बन्धित हैं। एक मस्नवी अपने मुर्ग़के मर्सियेमें लिखी है। लिखते हैं "मेरा प्यारा मुर्ग़ा था। बड़ा अच्छा था। एक दिन उसपर बिल्लीने आक्रमण किया। मर्ग़ेने बडी वीरतासे सामना किया पर अन्तमें मारा गया।"

मस्नवी बिलकुल मामूली है पर पढ़नेमें मनोरंजन ज़रूर होता है। इसमेंका एक शेर है:—

झुका बसूए क़दम सर ख़रोसे बेजाँका,
ज़मींपै ताज गिरा हुदहुदे सुलेमाँका।

एक मस्नवी अपनी बिल्लीपर भी लिखी है उसमें कहते हैं कि "मेरे एक बिल्ली थी। बड़ी वफ़ादार और सन्तोषी थी। उसके बच्चे जीते न थे। एक बार पाँच बच्चे हुए और पाँचो जिये। तीन बच्चे लोग माँग ले गये। दो रहे। दोनों मादा थे। एकका नाम 'मोनी' रखा, दूसरेका 'मानी'। 'मोनी' मेरे एक दोस्तको पसन्द आई; वह ले गये। 'मानी' के स्वभावमें दीनता और सादगी बहुत थी, उसने फ़क़ीरका साथ न छोड़ा।"

एक मस्नवीमें घरकी ख़राबी और बरसातकी तकलीफ़ोंकी शिकायत है। दीन-दुःखियोंपर इस मौसिममें जो गुज़रती है उसका स्वाभाविक वर्णन है। चित्र-सा खींच दिया है। इसी प्रकार निसंगनामेमें वर्षाकी यात्राका अद्‌भुत वर्णन है।

यह ठीक है कि उनकी इश्क़िया-मस्नवियाँ अच्छी हैं क्योंकि इनमें उसी प्रेमवेदनाकी अभिव्यक्ति है जो ग़ज़लकी आत्मा है और जो मीरकी अपनी विशेषता है पर इस प्रकारकी मस्नवियोंमें सफलता प्राप्त करना अपेक्षाकृत सरल कार्य था क्योंकि फ़ारसी साहित्यमें इस प्रकारकी तथा रहस्यात्मक—रज़्मिया तथा बज़्मिया—मस्नवियोंकी लम्बी परम्परा रही है। उसमें कल्पनाकी उड़ानकी गुंजाइश रहती है। इसलिए इन मस्नवियोंकी अपेक्षा सामान्य और अन्य कवियोंके लिए अछूते विषयोंपर उन्होंने जो मस्नवियाँ लिखीं उसके लिए उनकी प्रशंसा की जाती है। इस क्षेत्रमें वह यकता हैं। प्रेमाख्यानक मस्नवियोंमें उनके प्रतिद्वन्द्वी भी हैं पर इस क्षेत्रमें वही वह हैं। इन विषयोंपर लिखना बड़ा कठिन था। इनमें यथार्थका बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

उर्दू-मस्नवीको मीरने प्रगति दी। उसे एक रूप प्रदान किया। ख़ाजा अलताफ़ हुसेन हालीने लिखा है:—

"अब तक उर्दू में जितनी इश्क़िया मस्नवियाँ हमारी नज़रसे गुज़री हैं उनमेंसे सिर्फ़ तीन शख्सोंकी मस्नवी ऐसी है जिसमें शायरीके फ़रायज़[1] कमो-बेश अदा हुए हैं। अव्वल मीरतक़ी जिन्होंने ग़ालिबन सबसे अव्वल चन्द इश्क़िया-क़िस्से उर्दू मस्नवीमें बयान किये हैं। जिस ज़मानेमें 'मीर' ने यह मस्नवियाँ लिखी हैं उस वक़्त उर्दू ज़बानमें फ़ारसीयत बहुत ग़ालिब[2] थी और मस्नवीका कोई नमूना उर्दू ज़बानमें ग़ालिबन मौजूद न था और अगर एकाध नमूना मौजूद भी हो तो उससे चन्दाँ मदद नहीं मिल सकती। इसके सिवा अगर्चे ग़ज़लको ज़बान बहुत मँज गयी थी मगर मस्नवीका रास्ता साफ़ होने तक अभी बहुत ज़माना दरकार था। इसलिए 'मीर'की मस्नवियोंमें फ़ारसी तरकीबें, फ़ारसी मुहाविरोंके तर्जुमे और ऐसे फ़ारसी अलफ़ाज़ जिनकी अब उर्दू ज़बान मुतहम्मिल[3] नहीं हो सकती, उस अन्दाज़ से, जो आजकल फसीह उर्दू का मैयार[4] है, बिला शुबहे किसी क़दर ज़्यादा पाये जाते हैं। नीज़ उर्दू ज़बानके बहुतसे अलफ़ाज़ व मुहाविरात, जो अब मतरूक[5] हो गये हैं, 'मीर'की मस्नवीमें मौजूद हैं। अगर्चे यह तमाम बातें 'मीर'की ग़ज़लमें भी कमोबेश पाई जाती हैं, मगर ग़ज़लमें इनकी खपत हो सकती है क्योंकि ग़ज़लमें अगर एक शेर भी साफ़ और उम्दा निकल आये तो सारी ग़ज़लको शान लग जाती है; वह उम्दा शेर लोगोंकी ज़बान पर चढ़ जाता है और बाक़ी पुरकुन[6] अशआरसे कुछ सरोकार नहीं रहता। लेकिन मस्नवीमें जस्ता-जस्ता[7] अशआरके साफ़ और उम्दा होनेसे काम नहीं चलता; ज़ंजीरकी एक कड़ी भी नाहमवार[8]

१. कर्तव्य, उत्तरदायित्व। २. प्रधान, प्रभुत्वमय। ३. सहनशील। ४. कसौटी। ५. परित्यक्त। ६. सामान्य, भरतीके। ७. स्फुट, यत्र-तत्र। ८. असमान।

और बेमेल होती है तो सारी ज़ंजीर आँखोंमें खटकती है। पस इन असबाब से शायद मीरकी मस्नवी आजकलके लोगोंकी निगाहमें न जँचे मगर इससे 'मीर'की शायरीमें कुछ फ़र्क़ नहीं आता। जिस वक़्त मीरने यह मस्नवी लिखी है उस वक़्त उससे बेहतर ज़बानमें मस्नवी लिखनी इमकान[1]से ख़ारिज थी।....बावजूदे कि मीरसाहबकी उम्र ग़ज़लगोईमें गुज़री है, मस्नवीमें भी बयानके इन्तज़ाम और तसल्सुल[2]को उन्होंने कहीं हाथसे जाने नहीं दिया और मतालिब[3]को बहुत ख़ूबीसे अदा किया है जैसा कि एक मश्शाक़[4] और माहिर[5] उस्ताद कर सकता है। इसके सिवा साफ़ और उम्दा शेर भी 'मीर'की मस्नवीमें बमुक़ाबिले उन अशआरके, जिनमें पुराने मुहाविरे या फ़ारसीयत ग़ालिब है, कुछ कम नहीं हैं; सदहा अशआर 'मीर'की मस्नवियोंके आजतक लोगोंके ज़बानज़द चले आते हैं।

"अगर्चे मीरकी मस्नवियोंमें क़िस्सापन बहुत कम पाया जाता है, उन्होंने चन्द सही या सहीनुमा वाक़आत बतौर हिकायतके सीधे-सादे तौर पर बयान किये हैं, न उनमें किसी शादी या तक़रीब या वक़्त और मौसिमका बयान किया गया है, न किसी बाग़ या जंगल या पहाड़की फ़िज़ा या और कोई ठाठ दिखाया गया है। मगर जितनी मीरकी इश्क़िया मस्नवियाँ हमने देखी हैं वह सब नतीजाखेज़ और आम मस्नवियोंके बरख़िलाफ़ बेशर्मी और बेहयाईकी बातोंसे मुबर्रा[6] हैं।"

जो हो इसमें सन्देह नहीं कि मीरने उर्दू ग़ज़लके साथ उर्दू मस्नवी की भी बड़ी सेवा की है। ग़ज़लोंकी तरह उनकी मस्नवियाँ भी काफ़ी लोकप्रिय हुईं। नीचे कुछ लोकप्रिय शेरोंके नमूने दिये जाते हैं:—

नै काबे नै दैरके[7] क़ाबिल,
मज़हब उनका है सैरके क़ाबिल।

× ×

१. संभावना। २. शृंखलाबद्धता। ३. अभिप्राय। ४. अभ्यस्त। ५. निष्णात। ६. रहित। ७. मन्दिर।

न एक बूए ख़ुश ही हवा हो गयी,
वह रंगीनिए बाग़ क्या हो गयी।

× ×

कहते हैं, डूबते-उछलते हैं।
डूबे ऐसे कोई निकलते हैं।

× ×

रफ़्ता-रफ़्ता हुआ हूँ सौदाई।
दूर पहुँची है मेरी रुसवाई।

× ×

आह जो हमदमी-सी करती है।
अब तो वह भी कमी-सी करती है।

× ×

होश जाता रहा निगाहके साथ।
सब्र रुख़सत हुआ एक आहके साथ।

यथार्थ चित्रः——ऊपर मैं कह चुका हूँ कि दैनिक जीवनकी बातोंके बड़े ही यथार्थ चित्र मीरने अपनी मामूली विषयोंपर लिखी मस्नवियोंमें दिये हैं। जैसे अपने मकानकी हालत बयान करते हैं:——

कहीं सूराख़ है कहीं है चाक। कहीं झड़-झड़के ढेर-सी है ख़ाक।
कहीं घूँसोंने खोद डाला है। कहीं चूहेने सिर निकाला है।
कहीं घर है किसी छछूँदरका। शोर हर कोनेमें है मच्छरका।
कहीं मकड़ीके लटके हैं जाले। कहीं झींगुरके बेमज़े नाले।
कोने टूटे हैं ताक़ फूटे हैं। पत्थर अपनी जगहसे छूटे हैं।
कड़ी तख़्ते सब ही धुएँसे सियाह। उसकी छतकी तरफ़ हमेशा निगाह।

कभी कोई सँपोलिया है फिरे। कभी छतसे हज़ारपाये गिरे।
कोई तख़्ता कहींसे टूटा है। कोई दासा कहींसे छूटा है।
दबके मरना हमेशा मद्देनज़र। घर कहाँ साफ़ मौतका है घर।

इश्क़िया-मस्नवियाँ निम्नलिखित हैं:—

१. शोलए-शौक़
२. दरियाए-इश्क़,
३. जोशे-इश्क़,
४. मुआमिलाते-इश्क़,
५. ऐजाज़े-इश्क़,
६. ख़ाबो-ख़्याल।

इनमें शोलए-शौक़ सर्वमतसे इनकी सर्वोत्कृष्ट मस्नवी है। एक सरल एवं संक्षिप्त कथा है और बड़ी मार्मिक है। इसमें परशुराम और उसकी

शोलए-शौक़

प्रेमिका तथा पत्नीकी मार्मिक प्रेम-कथा है। इसका अन्त बड़ा कारुणिक है। पता नहीं जिस कथाको आधार बनाया गया है वह कहाँ तक सच्ची है। पर परशुरामका ज़िक्र पुरानी कविता और काग़ज़-पत्रोंमें कई बार आया है जिससे जान पड़ता है कि वह पटना—अज़ीमाबाद—का निवासी था। 'शौक़' नीमवीने अपनी किताब 'यादगारे-वतन' में लिखा है कि परशुराम दरअस्ल मुसलमान था और उसका नाम मुहम्मद हसन था। वह मोहम्मदशाहके राज्यकालमें पटनेके छोटी पटनदेवी मुहल्लेमें रहता था। यह नवयुवक अच्छे शरीफ़ ख़ानदानका था। फ़ारसी और हिन्दी (भाखा) का विद्वान् था। एक दिन गंगा किनारे टहल रहा था। वहीं एक महाजनकी लड़की, जिसका नाम श्यामसुन्दरि था, स्नान कर रही थी। दोनोंकी चार आँखें हुईं और दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गये। अब मोहम्मद हसन का यह हाल कि उसके मुखड़ेके दर्शनके लिए, पागलकी भाँति, इसकी

गलीमें बार-बार चक्कर लगाता, कभी घण्टों प्रतीक्षामें घाट किनारे टहलता रहता। धीरे-धीरे प्रेम घना हुआ। पागलपन बढ़ता गया। तब उसने संस्कृतका अध्ययन आरम्भ किया। अभ्याससे उसमें अच्छा पाण्डित्य प्राप्त किया; सैकड़ों श्लोक कण्ठस्थ किये; वेद एवं रामायण पढ़ा और तब योगीके वेशमें महाजनके यहाँ आने जाने लगा। अपना नाम परशुराम रखा। महाजनके यहाँ बड़ी आव-भगत हुई; सारा घर महात्माके चरणोंमें था। कुछ दिनों बाद श्यामसुन्दरिका विवाह किसीसे निश्चित हुआ। परशुराम ही इस अवसरके लिए पण्डित नियत किये गये। ठीक शादीके दिन घरमें आग लगी। लोग अपनी-अपनी जान बचाकर भगे। श्यामसुन्दरि अपने कमरेमें बेहोश हो गिर पड़ी। परशुराम उसे गोदमें उठा घर लाये। उधर महाजनका सारा घर जलकर राख हो गया। उसे और उसके घरवालोंको विश्वास हो गया कि लड़की उसीमें जल-भुन गयी। उधर परशुरामने श्यामसुन्दरिको महाजनके पास पहुँचाना चाहा किन्तु सब रहस्य ज्ञात होने पर वह जानेको तैयार न हुई। तब विवाह करके दोनों प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।····पर एकाध वर्ष बाद परशुराम छतरके मेलेसे लौट रहा था कि नाव भँवरमें पड़कर उलट गयी। खोजनेपर यह न मिला। लोगोंने समझा डूब गया। श्यामसुन्दरिके पास समाचार पहुँचा तो उसने सिर पीट लिया और प्राण त्याग दिये। उधर परशुराम डूबा नहीं, कुछ दूर जाकर किनारे लग गया। उसे श्यामसुन्दरिकी मृत्युको ऐसी चोट लगी कि वह पागल हो गया। उधर नदी किनारे विचित्र बात दिखाई दी। आधीरातको एक तीव्र प्रकाश आकाशसे उतरता और परशुराम-परशुराम पुकारता। परशु-रामने जब यह हाल सुना तो और बेचैन हुआ; नहा-धोकर कपड़े बदले, एक काग़ज़पर कुछ लिखा, उसे सदरीकी जेबमें डाला और कुछ मित्रोंके साथ नौकासे नदीके दूसरे किनारे पहुँचा। आधीरात बीत जानेपर आकाशसे वह ज्योति उतरी, किनारों पर दौड़ी और उसका नाम लेकर पुकारने लगी। परशुरामकी विचित्र अवस्था हो गयी। बड़ी तेज़ीसे वह ज्योतिकी

ओर लपका, और मित्रोंके दौड़ते-दौड़ते यह गया, वह गया न जाने कहाँ आँखोंसे ओझल हो गया। थोड़ी देर बाद जलके ऊपर दो तीव्र ज्योतियाँ उभरीं और 'परशुराम-श्यामसुन्दरि', 'परशुराम-श्यामसुन्दरि' कहती एक दूसरेकी ओर बढ़ने लगीं। जब दोनों मिल गयीं तो भक्से बिजलीका सा प्रकाश हुआ और समस्त नदी-तल पर उजाला हो गया। फिर धीरे-धीरे वह समाप्त हो गया और फिर कभी कोई ज्योति दिखाई न दी, न परशुरामके शवका ही कहीं पता चला। सदरी जो उसने नावपर उतार दी थी उसकी जेबसे काग़ज़ निकला जिसे ख़ाजा अब्दुल्ला 'ताईद' ने अपने पत्रके साथ शाह आलमके बेटे शाहज़ादा मिर्ज़ा जवान बख़्त जहाँदार शाहको भेजा था। यह पत्र 'ताईद'के पत्रोंके एक संग्रहमें मोरके समय प्रकाशित हो गया था।

घटना सही हो या ग़लत, उसने अनेक उर्दू साहित्यकारोंको प्रेरित किया। मीर, बाक़रअली, शौक़ नीमवी—मतलब कई आदमियोंने इसपर काव्य एवं गद्य लिखे।

'दरियाए-इश्क़' बहुत लोकप्रिय हुई और अब भी है। इसमें भी प्रेम-कथा है। एक प्रेमी एक स्त्रीपर मोहित था। जब बदनामी होने लगी, छल-छन्द रचकर प्रेमीको बीच नदीमें डुबा दिया। तब प्रेमिका भी बीच धारमें 'वह कहाँ है' कहती कूद पड़ी और डूब गयी। इसी प्रकार प्रायः सभी इश्क़िया-मस्नवियाँ दुःखान्त हैं। 'ख़ाबो-ख़्याल'में इन्होंने अपने प्रेम एवं दिवानेपनका हाल लिखा है। 'जोशे-इश्क़' विचारोंकी सूक्ष्मता एवं बाँकपनसे अलंकृत है पर वह उतनी प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकी। 'मामिलाते-इश्क़' बड़ी है किन्तु उच्चकोटिकी नहीं है।

दरियाए इश्क़

सबसे बड़ी मस्नवी 'शिकारनामा' है जिसमें नवाब आसिफ़उद्दौलाके शिकार और सैरका विस्तृत वर्णन है। इसमें बीच-बीचमें ग़ज़लें भी आ

गयी हैं पर इसमें बयानकी वह सफ़ाई नहीं है जो शोलए-इश्क़ और दरियाए-इश्क़ इत्यादिमें है। इसमें फ़ारसीयत भी ज़्यादा है।

घ. रुबाइयाँ—जैसे ग़ज़ल प्रेमाभिव्यक्ति और मस्नवी कथा वा उपाख्यान के लिए उपयुक्त है वैसे ही रुबाई या चतुष्पदी तात्त्विक एवं आध्यात्मिक अनुभूतिके लिए सर्वोत्तम साधन है। फ़ारसीमें रुबाईकी परम्परा यही बताती है। उमर ख़ैयाम, फरीदउद्दीन अत्तार, अबूसईद अबुलख़ैर, सेहाबी इत्यादि इसके प्रमाण हैं। उर्दूमें इस परम्पराका पालन नहीं हुआ। 'मीर' ने भी सौ-सवा सौ रुबाइयाँ कहीं, पर वे उस ऊँचे पाये-पर न पहुँच सकीं। इस दिशामें मीरसे अधिक सफलता ख़ाजा मीरदर्दको प्राप्त हुई। आधुनिक उर्दू साहित्यमें तो रुबाईने पर्याप्त प्रगति की है।

च. मर्सिये या मृत्युगीत—इसमें मृत व्यक्तिके गुणों एवं कार्योंका स्मरण किया जाता है। उर्दूमें ज़्यादातर मर्सिये हज़रत हुसैन और उनके साथियों एवं स्वजनोंकी शहादतपर लिखे गये हैं। पहले मर्सिये अनेक छन्दोंमें लिखे जाते थे किन्तु 'ज़मीर' लखनवीने मुसद्दस (षट्पद) को ही मर्सियेके लिए विशेष छन्द बना दिया और अब उसीका रिवाज चल निकला है।

खोजसे अबतक 'मीर' के एकतालीस मर्सिये प्राप्त हुए हैं और सर-फ़राज़ कौमी प्रेस, लखनऊसे 'मरासीमीर' के नामसे प्रकाशित हुए हैं। ये मर्सिये बहुत उच्चकोटिके तो नहीं हैं पर उस ज़मानेके विचारसे, जब मर्सियागोईकी दशा अच्छी न थी, अच्छे कहे जा सकते हैं।

छ. वासोख़्त—यह पद्यका एक विशेष प्रकार है जिसमें प्रेमी अपने प्रियतमकी बेवफ़ाई, अन्याय-अत्याचार, प्रतिस्पर्द्धीके प्रति अनुचित आसक्ति तथा विरह-वेदनाकी शिकायतें करता है। इसमें एक प्रकारका उलाहना होता है तथा छिपी धमकी कि यही हाल रहा तो हमें भी सम्बन्ध त्याग कर देना पड़ेगा। फ़ारसी भाषामें वहशीने इसका आविष्कार किया परन्तु उर्दूने इस मामलेमें फ़ारसीको पछाड़ दिया और बहुत आगे बढ़ गयी।

यद्यपि दक्षिणमें मीरसे पहले ऐसी कविताएँ लिखी गयीं जिन्हें वासोख़्त कहा जा सकता है पर उत्तरमें इसे स्पष्टरूप देनेवाले मीर ही थे। 'आज़ाद' ने 'आबेहयात' में इन्हें ही वासोख़्तका आविष्कारक बताया है। मीरके कुल चार वासोख़्त मिलते हैं। दो काफ़ी अच्छे हैं। बादमें देहलीमें मोमिन तथा लखनऊमें जुर्रत, आतिश, अमानत और शौक़ने इसे बहुत ऊँचा उठाया।

इसी प्रकार मुसल्लस (त्रिपदी), मुखम्मस (पंचपदी) तथा हफ़्त-बन्द लिखकर उन्होंने नई-नई दिशाएँ उर्दूको दीं।

ज. फ़ारसी-काव्य—'मीर' ने फ़ारसीमें भी काव्य-रचना की है जिसमें चन्द रुबाइयाँ, एक अधूरी मस्नवी और ४८१ ग़ज़लें हैं। जो विशिष्टता इनके उर्दू काव्यमें है वही फ़ारसीमें भी पाई जाती है। वही दर्द, वही प्यास, वही बेचैनी, वही सोज़ोगुदाज़ फ़ारसी-रचनाओंमें भी है। उर्दूकी भाँति ही फ़ारसीमें भी इन्होंने अपनी राह खुद बनाई, किसीका अनुकरण नहीं किया।

२. गद्य-रचनाएँ

मीरने गद्यमें भी कई पुस्तकें लिखी हैं पर ये सब फ़ारसी भाषामें हैं। इनके नाम निम्नलिखित हैं:—

१. नकातुश्शुअरा,

२. फ़ैजे-मीर,

३. ज़िक्रे-मीर

नकातुश्शुअराः—उर्दू काव्य तथा समीक्षाके इतिहासमें इस पुस्तकका बड़ा महत्त्व है। इसमें उर्दूके प्राचीन कवियोंकी चर्चा है। इसे रेख़तागोईका पहिला तज़किरा कहा जाता है। मीर अपनी प्रस्तावनामें खुद कहते हैं :— "यह उर्दूका पहला तज़किरा है इसमें एक हज़ार कवियोंका हाल लिखूँगा। मगर उनको न लूँगा जिनके कलामसे दिमाग़ परीशान हो।" हाल बहुत

संक्षेपमें दिये गये हैं। जिनको लिया है उनमेंसे भी चन्द ही हैं जो आक्षेपसे बचे हैं। उर्दूसे परिचय रखनेवाले जानते हैं कि वली उर्दूका सबसे पहला प्रसिद्ध कवि है। वलीका उर्दूमें वही दर्जा है जो हमारे यहाँ चन्दका है। उस बेचारेको भी आपने शैतान बना दिया है :—"वली, शायरीस्त अज़ शैतान मशहूरतर।"

बहुतोंको उनका यह आक्षेप खला। मीरख़ाँ 'कमतरीन' इस ज़मानेमें एक पुराने शायर थे। 'मीरख़ाँ' नाम, 'कमतरीन' उपनाम। बहुत वृद्ध थे। शाह आबरू और नाजीके देखनेवालोंमेंसे थे किन्तु इस दौरमें अभी तक मौजूद थे। पुराने आदमी थे। कुछ विशेष प्रतिभा न थी पर जो बात सूझ जाती उसे अवसरका विचार किये बिना कह डालते थे। कोई उनकी ज़बानसे बचा नहीं। वेश-भूषा भी इनकी दुनियासे निराला होती थी। एक बड़ी घेरेदार पगड़ी सिरपर बाँधते थे, लम्बा-सा दुपट्टा बल देकर कमरपर लपेटते थे, एक सोटा हाथमें रखते थे। उन दिनों प्रत्येक शुक्रवारको सैदुल्लाख़ाँकी चौक (दिल्ली) पर मेला लगता था। अपनी ग़ज़लोंको परचोंपर लिख वहीं जा खड़े होते। लड़के और शौक़ीन सहृदय रसिक दाम देते और एक-एक, दो-दो परचे ख़ुशीसे ले जाते थे। उन्हें 'मीर' साहबकी उक्त टिप्पणी पर बड़ा क्रोध आया। एक पद्यमें 'मीर' साहबको ख़ूब फटकारा और अन्तमें लिखा—

"वली पर जो सख़ुन लाये उसे शैतान कहते हैं।"

बादमें फतेहअली, मीर कल्लन, क़ुदरत उल्ला क़ासिम, शफ़ीक़ औरंगाबादी इत्यादिने भी मीरके दोष-दर्शनपर आक्षेप किये हैं पर आज तक इस ग्रन्थकी इज़्ज़त और लोकप्रियता वैसीकी वैसी है।

नक़ातुश्शुअराका रचना-काल सन् १७५२ ई० है। तासीका कथन है कि मीरके तज़किरेके पूर्व कई तज़किरे मौजूद होंगे। कहा जाता है कि इमामउद्दीन, ख़ाँ आरज़ू और सौदाने भी तज़किरे लिखे थे। पर आज वे

प्राप्य नहीं हैं इसलिए उनके सम्बन्धमें कुछ कहना कठिन है। आज जो तज़किरे प्राप्त हैं उनमें यह सबसे पुराना है। उर्दूमें समीक्षाका आरम्भ इसी पुस्तकसे होता है। यह ठीक है कि उस ज़मानेकी समीक्षा आजकी समीक्षा नहीं है, हो भी नहीं सकती। उस समय लोग अपनी राय रखते थे और उसे ज़ोरोंसे प्रकट करते थे, तटस्थ वृत्ति वाली समीक्षा बहुत बाद-में आई है। इस ग्रन्थसे उस युगकी अनेक बातों तथा सामाजिक स्थितियों एवं प्रेरणाओंपर प्रकाश पड़ता है।

फ़ैज़े-मीर—फ़ारसी भाषामें लिखी एक छोटी पुस्तक है। इसके रचना-कालका कुछ पता नहीं चलता पर इसे उन्होंने अपने पुत्र फ़ैज़अलीके लिए लिखा था। इसमें दरवेशोंके पाँच क़िस्से हैं, जिनमें उनकी सिद्धियोंका आँखों-देखा हाल भी है। इस पुस्तकका महत्त्व यह है कि इससे 'मीर' के चरित्र तथा उनकी धार्मिक मान्यताओंपर प्रकाश पड़ता है। भाषा शक्तिसे भरी और सुलझी हुई है।

ज़िक्रे-मीर—मीरके जीवनको समझनेके लिए इस पुस्तकका बड़ा महत्त्व है। इसमें उन्होंने आत्म-कथा लिखी है। यद्यपि इसमें कवि एवं कविता-विषयक बातें और घटनाएँ कम हैं किन्तु तात्कालिक सामाजिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमिकी जानकारीके लिए यह पुस्तक बड़े कामकी है। फिर इससे मीरके जीवनकी उठान, उनकी मानसिक उथल-पुथल, उनकी दृढ़ता, उनके चरित्र, तूफ़ानोंमें नावकी भाँति डूबती-उतराती, फिर भी आगे बढ़ती हुई ज़िन्दगीपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उनके पारिवारिक जीवनकी भी अनेक बातें इससे मालूम होती हैं। मुहम्मदशाहकी मृत्युसे लेकर ग़ुलाम क़ादिर रुहेलाके लोमहर्षक अत्याचारों तककी ऐतिहासिक घटनाएँ विस्तार-पूर्वक इसमें मिलती हैं। मुग़लोंके उस पतन-युगमें दिल्ली तथा मराठों, सिखों, जाटों, अंग्रेज़ों और पठानोंकी प्रतिद्वन्द्विताके बीच कम्पित उत्तर भारतकी अवस्थाके जीवित चित्र इसमें दिखलाई पड़ते हैं।

दरियाए-इश्क़—अपनी मस्नवी दरियाए इश्क़को मीरने फ़ारसी गद्यमें भी लिखा है। यह पुस्तक अभी तक छपी नहीं है। कुछ समय पहिले 'नैरंग' पत्रके 'मीर' अंकमें इसके कुछ भाग निकले थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीरने गद्य, पद्य, गज़ल, रुबाई, क़सीदे, वासोख़्त, उर्दू फ़ारसी, मतलब अनेक रचनाएँ दोनों भाषाओंमें कीं। इससे उनकी व्यापक दिलचस्पी एवं प्रतिभाका ज्ञान होता है। उस कालके कदाचित् ही किसी दूसरे उर्दू कविकी साहित्य, समाज तथा उनकी स्वस्थ परम्पराओंके प्रति इतनी महती देन हो जितनी मीरकी है।

व्याख्या-भाग

कुछ शेर

●

'मीर'के शेरका अहवाल कहूँ क्या 'ग़ालिब',
जिसका दीवान कम अज़ गुलशने-कश्मीर नहीं ।

—ग़ालिब

[१]

अबके जुनूँमें फ़ासला शायद न कुछ रहे,
दामनके चाक और गरेबाँके चाक में।

गरेबाँ कुर्त्तेका वह भाग है जिसे गला कहते हैं। इसी भागमें लोग बटन या घुण्डी लगाते हैं। दामनका चाक कुर्त्तेके उस कटे हुए भागको कहेंगे जो नीचे कमरके पास, बगलमें, प्रायः जेबके नीचे होता है।

दीवाना या पागल होनेपर उर्दू-साहित्यके कथित पागल प्रायः गरेबाँ फाड़ा करते हैं—'गरेबाँ फाड़ता है तंग जब दीवाना आता है।' प्रायः सभी उर्दू कवियोंने दिल, गरेबाँ और जुनूँपर मज़मून बाँधे हैं पर मीरका शेर बहुत .खूब हुआ है।

मीर साहब कहते हैं कि मेरा पागलपन जिस तरह बढ़ रहा है यदि इसी प्रकार रहा तो इस बारके पागलपनके दौरेमें शायद गरेबाँ और दामनके चाकमें कुछ अन्तर न रह जाय—यानी नीचेसे ऊपर तक, दोनों मिल जायँ, मतलब पूरा वस्त्र फट जाय।

इस शेरकी मौलाना हालीने बड़ी प्रशंसा की है। लिखते हैं कि गरेबाँ या दामन या दोनोंका चाक करना एक पिटा-पिटाया मज़मून है जिसे अत्यन्त प्राचीन कालसे लोग बराबर बाँधते आये हैं। "ऐसे चिथेड़े हुए मज़मूनको मीरने बावजूद ग़ायत[1] दर्जेकी सादगीके एक ऐसे अछूते, निराले और दिलकश[2] असलूब[3]में बयान किया है कि उससे बेहतर असलूब तसव्वुर[4]में नहीं आ सकता। इस असलूबमें बड़ी ख़ूबी यही है कि सीधा-सादा है, नेचुरल है और बावजूद इसके बिलकुल अनोखा है।"

---

१. अत्यन्त, अन्तिम। २. चित्ताकर्षक। ३. अभिव्यक्ति-प्रणाली। ४. कल्पना, ध्यान।

इस सिलसिलेमें मौलानाने एक और घटनाका ज़िक्र किया है:—

"मौलाना आज़ुर्दाके मकानपर उनके चन्द अहबाब[१], जिनमें मोमिन और शेफ़्ता भी थे, एक रोज़ जमा थे। 'मीर'का यह शेर पढ़ा गया। शेरकी बेइन्तिहा तारीफ़ हुई और सबको यह ख़्याल हुआ कि इस क़ाफियेको हर शख़्स अपने-अपने सलीक़े और फ़िक्रके मुआफ़िक बाँधकर दिखाये। सब क़लम, दावात और काग़ज़ लेकर अलग-अलग बैठ गये और फ़िक्र करने लगे। इसी वक़्त एक और दोस्त वारिद[२] हुए। मौलानासे पूछा—हज़रत किस फ़िक्रमें बैठे हैं? मौलानाने कहा—'क़ुल-हो-अल्लाहो[३]' का जवाब लिख रहा हूँ।"

शेरका सचमुच जवाब नहीं।

[२]

सिरहाने मीरके आहिस्ता बोलो,
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।

मौलाना अब्दुलहक़ इस शेरकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं:—"यह शेर किस क़दर सादा है। इससे ज़्यादा आसान, आम और मामूली अल-फ़ाज़ और क्या होंगे? लेकिन अन्दाज़े-बयान दर्दसे लबरेज़[४] है और लफ़्ज़-लफ़्ज़से हसरत और यास[५] टपकती है। उर्दू क्या मुश्किलसे किसी ज़बानमें इस पायेका और ऐसा दर्दअंगेज़ शेर मिलेगा। एक दूसरी बात इस शेरमें क़ाबिल ग़ौर यह है कि जो शख़्स दूसरोंको गुल न करने और आहिस्ता बोलनेकी हिदायत कर रहा है वह भी बीमारके पास बैठा है और उस-पर भी लाज़िम है कि यह बात आहिस्तासे कहे। इसके लिए यह ज़रूर

१. मित्रगण। २. प्रविष्ट। ३. क़ुरानकी एक सूरत है 'क़ुल-हो-अल्लाहो-अहद' अर्थात् 'कह कि अल्लाह एक है।' मतलब यह कि यह अद्वितीय अतुलनीय शेर है। ४. ओत-प्रोत। ५. निराशा।

है कि लफ़्ज़ ऐसे छोटे, सलीस और धीमे हों कि धीमीसे-धीमी आवाज़-में भी अदा हो सकें। अब इस शेरको देखिए कि लफ़्ज़ तो क्या, एक हर्फ़ भी ऐसा नहीं जो करख़्त[1] हो या होठोंके ज़रासे इशारेसे भी अदा न हो सकता हो।"

[३]

मक़दूर भर तो ज़ब्त करूँ हूँ पै क्या करूँ,
मुँहसे निकल ही जाती है एक बात प्यारकी।

प्रेमीके हृदयकी अवस्थाको किस ख़ूबीसे कहा है। सीधे-सादे शब्दोंमें एक दुनिया भर दी है। "अपनी शक्तिभर तो मैं दिलको दबाता हूँ, पर क्या करूँ प्यारकी एकाध बात निकल ही जाती है।"

इसी बातको एक और जगह भी कहा है—

हरचन्द मैंने शौक़को पेनहाँ किया वले,
एक आध हरफ़ प्यारका मुँहसे निकल गया।

[४]

आजीवन मीर वियोगकी वेदनाके गीत गाते रहे। उनका काव्य ही एक प्रलम्ब आह है। इसीलिए आहके मज़मून उनकी कवितामें बार-बार आये हैं। अतिशयोक्ति ख़ूब है। कहते हैं :—

करूँ जो आह ज़मीं वो ज़माँ जल जाय,
सपहरे[2] नीलीका यह सायबाँ जल जाय।

अर्थात् "यदि मैं आह करूँ तो सम्पूर्ण पृथ्वी और उसपरके जीव-जन्तु सब जल जायँ, तथा यह आकाशका जो नील वितान है वह भी जल-कर ख़ाक हो जाय।"

१. कठोर, कर्णकटु। २. आकाश।

अच्छा ही हुआ, आपने इस आहकी आज़माइश नहीं की। दयालु-प्रकृतिके सरसहृदय आदमीसे यह काम होता भी कैसे ? चुनांचे ख़ुद ही फ़रमाते हैं :—

मैं गिरिय-ए-ख़ूनीको रोके ही रहा वर्ना,
एक दममें ज़मानेका याँ रंग बदल जाता।

"मैं इस ख़ूनी आहको रोके ही रहा अन्यथा एकबार भी निकल जाती तो ज़मानेका रंग क्षणभरमें बदल जाता।"

वियोगकी अग्नि और आह ऐसी ही प्रबल होती है। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी सभी भाषाओंके कवियोंने इसपर मज़मून बाँधे हैं। एक हिन्दी कविकी नायिका कहती है :—

विरहकी ज्वालनि सों बीजुरी जराइ डारौं,
स्वासनि उड़ाऊँ बैरी बेदरद बादरनि।

अर्थात् विरहकी ज्वालाओंसे बिजलीको जलाती हूँ और श्वाससे इन बैरी निष्ठुर मेघोंको उड़ा देती हूँ।

वियोगिनीकी वियोग-ज्वालासे ज़मानेका रंग बदलनेवाला एक दूसरा कवि ('शंकर', नाथूराम शर्मा) विनाश-क्रमका वर्णन करता है :—

'शंकर' नदी नद नदीसनके नीरनकी,
भाप बनि अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी।
दोनौं ध्रुव छोरन लौं पलमें पिघलकर,
घूम-घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जायगी।
झारैंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारैंगे खमण्डल मैं आग मढ़ जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनीकी आह कढ़ जायगी।

विरहाग्निकी असह्यता प्रमाणित करते हुए श्रीहर्षने नैषधमें एक स्थानपर लिखा है :—

दहनजा न पृथुर्दवथुर्व्यथा,
विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम् ।
दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः,
प्रियमपासुमुपासितमुद्धुराः ।।

अर्थात् साधारण आगमें जलनेकी व्यथा कुछ विशेष नहीं है, विरह-जन्य-व्यथा ही असह्य वेदना है । तभी तो विरहिणी स्त्रियाँ (मृत) पतिसे मिलनेके लिए आगमें कूद पड़ती हैं ।

'मीर'के आहों-सम्बन्धी शेर और भी हैं :—

आहोंके शोले जिस जा उठते थे मीरसे शब,
वाँ जाके सुबह देखा मुश्ते ग़ुबार पाया ।

अर्थात् "जिस स्थानपर कल रात मीरके मुँहसे आहोंके शोले निकलते थे वहाँ आज सुबह जाकर देखा तो कुछ न था, सब जल गया था, बस मुट्ठी भर धूल पड़ी हुई थी ।"

पैदा है कि पेनहाँ थी आतशनफ़सी मेरी,
मैं ज़ब्त न करता तो सब शहर यह जल जाता ।

अर्थात् "स्पष्ट है कि मेरी दाहकता प्रच्छन्न थी । मैं न रोकता तो यह सारा शहर ही जल जाता ।"

जौकने भी इसी ज़मीनपर कहा है :—

न करता ज़ब्त मैं नाला तो फिर ऐसा धुवाँ होता ।
कि नीचे आसमाँके एक नया और आसमाँ होता ।

बड़ी कृपा हुई जो दूसरे विश्वामित्र बननेकी इच्छाको आपने कार्यरूपमें परिणत होनेसे विरत रखा ।

मीर एक जगह और कहते हैं :—

तारे तो ये नहीं, मेरी आहोंसे रातकी,
सूराख़ पड़ गये हैं तमाम आसमानमें ।

अर्थात् "जिन्हें तुम तारे समझ रहे हो, ये वस्तुतः तारे नहीं हैं वह मेरी रातकी आहोंसे आसमानमें जो सूराख़ हो गये हैं वही चमक रहे हैं ।"

फिर कहते हैं :—

नीला नहीं सपहर, तुझे इश्तबाह[1] है,
दूदे जिगर[2] से मेरे यह छत सब सियाह है ।

अर्थात् "आकाशको जो तुम नीला कहते हो, यह तुम्हारा भ्रम है । वस्तुतः मेरे दिलके धुएँसे यह सारी छत काली पड़ गयी है ।"

[५]

धोका है तमाम बहरे-दुनिया[3],
देखेगा पै होंठ तर न होगा ।

"यह संसार-सागर केवल धोका ही धोका है, भ्रममात्र है । यह दिखाई तो पड़ता है पर इससे तेरा ओठ कभी तर न होगा ।"

[६]

सब्ज़ होती ही नहीं यह सरज़मीं,
तुख़्मे ख़्वाहिश दिलमें तू बोता है क्या ?

मीर कहते हैं कि यह ज़मीन कभी हरी तो होती नहीं फिर तू उसमें इच्छाओंके बीज क्या बोता है ? (व्यर्थ बो रहा है, उससे अंकुर तो फूटनेकी सम्भावना है नहीं ।)

---

१. भ्रम, सन्देह । २. हृदयका धूवाँ । ३. संसार-सागर ।

इस शेरके पहलूमें मीरका दर्द भरा है, उसकी बदनसीबी तड़प रही है। दूसरी ओर संसारकी असारताकी दिशामें भी संकेत है।

[७]

होगा किसी दीवारके सायेके तले 'मीर'
क्या काम मुहब्बतसे उस आरामतलबको।

कैसा गम्भीर एवं व्यथाजनक व्यंग्य है। मौलाना अब्दुलहक़ने इस शेरकी प्रशंसा करते हुए लिखा है:—"इस शेरका हुस्न शरह व बयानसे बाहर है। 'आरामतलब'का लफ़्ज़ इसकी जान है। इस लफ़्ज़को नज़रमें रखिए और फिर इस शेरको ग़ौरसे मुलाहिज़ा कीजिए तो शेरका असली लुत्फ़ समझमें आ जायगा। एक शख़्स जो मुहब्बतके कारण ऐशो-आरामपर लात मारके और घर-बार छोड़कर, बे-यारो ख़ानुमाँ, आवारा व सरगर्दां, महबूबकी दीवारके नीचे पड़ा है उसे ताना दिया जाता है कि आरामतलब है और ऐसे आरामतलबको मुहब्बतसे क्या काम? जब यह आरामतलबी है तो क़यास करना चाहिए कि मुहब्बतकी मुसीबत क्या होगी?"

[८]

जुज़्व[1] मर्तबए कुल[2]को हासिल[3] करे है आख़िर[4],
एक क़तरा[5] न देखा जो दरिया न हुआ होगा।

अर्थात् "अंश अन्ततोगत्वा पूर्णताकी श्रेणी अवश्य प्राप्त करता है। ऐसा एक भी क़तरा नहीं देखा जो दरिया न हुआ हो।"

दार्शनिक और आध्यात्मिक भाव सरल शब्दोंमें कह दिया गया है। जैसे जलबिन्दु सागरसे अभिन्न है, वैसे ही अंश पूर्णसे अलग होकर भी

१. अंश, खण्ड। २. पूर्णताका दर्जा। ३. प्राप्त। ४. अन्तमें। ५. बूँद।

अलग नहीं है। 'अपूर्ण' मुक्त होकर 'पूर्ण' हो जाता है। इस ज़मीनपर ग़ालिबका भी एक शेर है।

इशरते क़तरा है दरियामें फ़ना हो जाना।
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना॥

अर्थात् जलबिन्दुका गौरव नदीमें निमग्न हो जानेमें ही है (क्योंकि नष्ट होकर, निमग्न होकर वह अपनी सत्ताको विशाल बना देता है।) इसीसे प्रकट होता है कि वेदनाकी सीमाका अतिक्रमण होना ही, दवा हो जाना है (क्योंकि जो लाभ दवासे होगा उससे भी अधिक 'दर्दके हदसे गुज़रने' पर होगा।)

विभिन्न दृष्टियोंसे जीवन-मरणके ऐक्यका, विशेषत: प्रेमजगत्‌में, मज़मून बहुतेरे कवियोंने बाँधा है। किसीने कहा है:—

मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़ जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते हैं जिस काफ़िरपे दम निकले।

[९]

एक शख़्स मुझी-सा था कि था तुझपे वह आशिक़,
वह उसकी वफ़ापेशगी वह उसकी जवानी।
यह कहके मैं रोया तो लगा कहने न कह 'मीर',
सुनता नहीं मैं ज़ुल्मरसीदोंकी कहानी॥

कोई ख़ास बात नहीं है पर अपनी कामनाकी अभिव्यक्तिके लिए क्या सुन्दर ढंग निकाला है। कविने परदे-परदेमें बड़ी ख़ूबीसे अपनी बात कह दी है—अपनी हृदय-व्यथा व्यक्त कर दी है। मज़ा यह कि इसमें कहीं माशूक़के अन्याय या उत्पीड़नका वर्णन नहीं, सिर्फ़ प्रेमीके यौवन और उसकी बुरी हालतकी ओर इशारा किया गया है। और यह कहके रोने लगना उसकी गहरी हृदय-व्यथाको प्रकट कर देता है। परदा होकर भी

यहाँ परदा नहीं रह जाता; प्रच्छन्न होकर भी यहाँ अर्थ स्पष्ट है। 'माशूक़के उत्तरने दर्दमें हज़ारों टीसें पैदा कर दी हैं। यह मीर साहबका ख़ास कमाल है।'★

[१०]

गुल व बुलबुल बहारमें देखा।
एक तुझको हज़ारमें देखा॥

अर्थ स्पष्ट है। प्रियतमकी ही छवि फूल, बुलबुल और वसन्त सबमें दिखाई दे रही है। 'मीर दर्द' ने भी लिखा है :—

जगमें आकर इधर-उधर देखा,
तू ही आया नज़र जिधर देखा।

परमात्मा अथवा प्रियतमकी व्यापकताका अनुभव इसमें है। बिहारीका प्रसिद्ध सोरठा याद आता है :—

मैं समुझ्यो निरधार, यह जग काँचो काँच सम,
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ।

देखिए, बिहारीने वेदान्तके 'प्रतिबिम्बवाद'को काँचका उदाहरण देकर, कितनी सफलताके साथ समझाया है। कहते हैं, मैंने भली-भाँति देख लिया है कि यह संसार कच्चे काँचके समान है जिसमें एक ही रूप अपार रूपोंमें प्रतिबिम्बित हो रहा है।

मीरने एक स्थानपर और कहा है :—

यक जा अटकके रहता है दिल हमारा वर्ना,
सबमें वही हक़ीक़त दिखलाई दे रही है।

फिर कहते हैं :—

★मौलवी अब्दुलहक़ : इन्तख़ाब क़लामे मीर, पृष्ठ २७।

हर क़दमपर थी उसकी मंज़िल लेक,
सरसे सौदाए-जुस्तजू न गया।

उसकी मंज़िल तो क़दम-क़दमपर थी पर दिमाग़में जो खोजका पागलपन था, वह नहीं गया। उसीके कारण मैं जन्मभर उसे ढूँढ़ता ही रह गया।

[११]

छाती जला करे है सोज़े दरूँ बलासे,
एक आग-सी लगी है, क्या जानिए कि क्या है ?

मीरके कलेजेमें दर्द है। वह छटपटा रहा है। साथी और डाक्टर प्रश्न करते हैं—क्या बात है भाई ! कुछ बताओ, तब तो इलाज किया जाय। मीर बेचारेकी तो जान निकल रही है। वह खुद नहीं समझ पाता। झुँझलाकर कहता है—"भाई ! जान मत खाओ। मैं क्या बताऊँ। आन्तरिक अग्निसे रात-दिन छाती जलती रहती है। कलेजेमें एक आग-सी लगी हुई है। क्या मालूम यह क्या है ?"

शेरके प्रत्येक शब्दमें करुणा है। कलेजा मुँहको आ रहा है। प्रेमकी वह अवस्था है जब आदमी नहीं जानता कि यह बेचैनी, यह घबड़ाहट, यह जलन क्या है और क्यों है ?

लोगोंने कहा—हज़रत, कहीं दिल तो नहीं लगा बैठे। लक्षण तो कुछ ऐसे ही हैं।

मीर उत्तर देते हैं—

हम तौरे-इश्क़से तो वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन,
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है।

जिसके दिलमें कुछ भी रस है वह इसे पढ़कर झूम उठेगा। मीर कहते हैं कि भई, हम प्रेमके तौर-तरीक़ेसे तो परिचित नहीं है पर हाँ, ऐसा लगता है जैसे सीनेमें कोई दिलको मला करता हो।

'मला करे हैं' पद इस शेरकी जान है। वेदना शब्द-शब्दसे टपकी पड़ती है।

इसी ज़मीनपर 'शेफ़्ता' का भी शेर है:—

शायद इसीका नाम मुहब्बत है 'शेफ़्ता',
एक आग-सी है दिलमें हमारे लगी हुई।

'शायद' शब्दने इस शेरमें एक चमत्कार पैदा कर दिया है। कवि प्रेमकी उस अवस्थामें है जब कुछ-कुछ रोगके विषयमें उसे अनुमान हो रहा है।

[१२]

कहता था किसूसे कुछ तकता था किसूका मुँह,
कल 'मीर' खड़ा था याँ, सच है कि दिवाना था।

पागलपनका कैसा सफल चित्र इस शेरमें मिलता है। कल मीर यहाँ खड़ा था। किसीसे कुछ कहता, फिर किसीका मुँह ताकता। सच है, वह पागल हो गया है।

भाषा कितनी सरल और मँजी हुई है।

[१३]

परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत तुझे,
नज़रमें सबोंकी ख़ुदा कर चले।

शत-शत श्रुतियाँ चिल्लाकर कहती हैं कि शुद्ध ब्रह्म निराकार है किन्तु उस परम तत्त्वका सम्यक् रहस्य हृदयंगम होनेके पूर्व साधक क्या करे ? मानव सदैव सरल आलम्बनोंकी खोज करता है। अपनी खोजमें ही उसने मूर्त्ति-पूजाको प्राप्त किया। किसी रुचिकर रूपमें कल्पना करके उसकी उपासना ही मूर्त्तिपूजाका रहस्य है। साकार, दृश्य, इन्द्रियलब्ध वस्तुके प्रति सामान्यतः मनुष्यका आकर्षण जितना ठोस और स्वाभाविक होता है, उतना निराकारके प्रति सम्भव नहीं। इस प्रकार मूर्त्तिकी उपा-

सना करके हम धीरे-धीरे उसके अधिकाधिक निकट होते जाते हैं जिसकी वह मूर्त्ति है। धीरे-धीरे हमारे स्नेहका विकास होता है और अन्तमें जब प्रेम प्रौढ़ताको प्राप्त होता है तब मूर्त्तिकी सत्ता क्षीण होने लगती है और सान्निध्यजन्य प्रणयभूत ध्यानमें विलीन हो जाती है। इस प्रकार सच्चा मूर्त्तिपूजक मूर्त्ति और आराध्य दोनोंका ऐकात्म्य अनुभवकर आराध्य—भगवान्—के सगुण रूपका साक्षात्कार करता है। इस साक्षात्कारके पश्चात् उसे आराध्य सर्वत्र दिखाई देता है और निर्विकार, निराकार ब्रह्म की प्रतीति होती है। फिर वह अपने एवं आराध्यके अभेदत्वका अनुभव करता है। इस प्रकार मूर्त्तिपूजककी आनन्द-धारा वेदान्तके 'अहं ब्रह्मास्मि' में मिल जाती है।

मान लीजिए, मैं करुण वात्सल्य प्रकृतिका आदमी हूँ। अपनी भावनाओंके अनुकूल मैंने एक पाषाण-मूर्त्तिका निर्माण एवं उसमें प्राण-प्रतिष्ठा क़राई। मैं उसकी उपासनामें लीन हुआ। धीरे-धीरे मेरी भक्ति-सरितामें तरंगें उठने लगीं। आनन्दकी अधिकाधिक वृद्धि होते-होते मेरा प्रणय प्रगाढ़ होने लगा। ध्यान करते-करते मेरी अनुरक्ति उससे सघन होती गयी; तन्मयता आने लगी। थोड़ी देरके लिए संसारका लोप हुआ। जब ध्यानका आवेग कम हुआ, आँखें खुलीं तो देखता हूँ कि जिसका ध्यान अभी तक कर रहा था, वही तो सामने है (याद रहे भक्तिकी प्रबलतामें यह बात भूल जाती है कि पाषाण-मूर्त्तिके आगे बैठा हुआ हूँ)। फिर थोड़ी देर बाद शंका उठती है कि नहीं जी, यह कल्पित पाषाण-मूर्त्ति है जो मैंने बनवाई थी। कभी मूर्त्तिमें उपास्यकी प्रत्यक्ष प्रतीति होती है। (उस समय पाषाण-मूर्त्तिकी सत्ता विस्मृत हो जाती है) और कभी पाषाणरूप दृष्टिगोचर होता है। यह मूर्त्तिपूजावलम्बित भक्तिकी प्रथम श्रेणी है (जिसमें कभी प्रत्यक्ष प्रतीति होती है, कभी अप्रत्यक्ष और आरोपित)। इसके पश्चात् प्रेम और प्रौढ़ एवं घनीभूत होता है। धीरे-धीरे पाषाण-भाव सुप्त और लुप्त होने लगता है। इस विकासका अन्त उस समय होता है

जब मूर्त्ति में पाषाणत्वकी जरा भी अनुभूति शेष नहीं रहती। यह मूर्त्ति और उपास्यकी अभेदावस्था है। साधन साध्य हो जाता है। तब वह मूर्त्ति बोलती है, हँसती है।

इसी प्रकार किसी मनुष्यको प्रेम करके भी परमतत्त्वको प्राप्त किया जा सकता है। मूल वस्तु प्रेम है। सब कुछ उस प्रेमको ग्रहण करनेकी हमारी शक्तिपर निर्भर है। कुछ उस प्रेमको वासना एवं भोगमें परिवर्तित कर देते हैं, दूसरे हैं जो उसे जीवनका अमृत बना लेते हैं और उससे अपरिमित शक्ति एवं ओज प्राप्तकर साधना-पथमें बढ़ जाते हैं। मीरने इसी मानव-प्रेमके विराट् संवेदनका चित्रण उक्त शेरमें किया है। कहते हैं:—"ऐ बुत (प्रियतम) ! मैंने तेरी पूजा इस सीमा तक की है कि तुझे सब लोगोंकी दृष्टिमें ख़ुदा—परमात्मा—बना दिया है !"

[१४]

उसे ढूँढ़ते 'मीर' खोये गये,
कोई देखे इस जुस्तजूकी तरफ़।

मीर कहते हैं कि मैं ढूँढ़ने तो उसे चला था पर स्वयं ही खो गया। भला कोई मेरी इस खोजको तो देखे !

पता उसका लगाने चले थे पर अपनी ही सत्ता खो बैठे। वेदान्तका तत्त्व इस शेरमें आ गया है।

ब्रह्मकी अनन्त सत्तामें मिल जानेकी प्रायः चार श्रेणियाँ हैं। जब भक्तिकी प्रबलता होती है तो मनुष्य परमात्मा (श्रेय) और अपने सम्बन्धको जिन शब्दोंमें प्रकट करता है उसे संस्कृतके दार्शनिक साहित्यमें 'तस्यैवाहम्' कहते हैं। इसका अर्थ होता है—'मैं उसका हूँ' (अहं तस्यैव)। इसके बादका दर्जा 'तवैवाहम्' है अर्थात् 'मैं तुम्हारा ही।' इसमें सम्बन्ध अधिक प्रत्यक्ष और सघन होगया है। प्रथम पदमें वह अन्यपुरुष में है और दूसरेमें सामने है। इसके बाद तीसरी श्रेणी आती है 'त्वमेवाहम्' अर्थात् "मैं तू ही हूँ।" अर्थात् जो मैं हूँ वही तुम हो। यह साम्यानुभूतिको

अवस्था है । पर अभी मैं और तुम दोनों एक नहीं हैं, दोनोंमें भेद वर्तमान है । इसके बाद वह दर्जा आता है जिसमें साधक 'तुम' या 'मैं' मेंसे एकको भूल जाता है । यही सर्वोच्च अवस्था है । ग़ालिबने भी कहा है :—

बहुत ढूँढ़ा उसे फिर भी न पाया,
अगर पाया पता अपना न पाया ।

अर्थात् "ढूंढ़ते-ढूंढ़ते हैरान हो गया फिर भी उसे न पा सका और पाया तो अपना ही पता न रहा ।"

इसी ज़मीनपर, कुछ मिलता-जुलता मीरका एक और शेर है—

तेरी आह किससे ख़बर पाइए,
वही बेख़बर है जो आगाह है ।

मीर साहब फ़रमाते हैं कि आह ! तेरा समाचार और पता किससे पूछूँ । जो तुझसे आगाह है, परिचित है, तेरा पता जान चुका है, वही बेख़बर है ।

इसमें भी वही परमानुभूतिकी बात कही गयी है । उसको जान लेनेपर ज्ञाता बतायेगा क्या, जब वह स्वयं तल्लीन हो जायगा । जो उससे आगाह हो गया है, वह तो हमारे लिए बेख़बर है । एक बेहोशी, एक दीवानगी उसपर छा गयी है । वह क्या बतायेगा ?

इसमें उसी 'तत्त्वमसि' अवस्थाकी परछाईं है जिसकी अनुभूतिमें एक फ़ारसी सूफ़ीने कहा है :—

तनहास्तम तनहास्तम चे बुल अजब तनहास्तम ।
जुज़ मन न बाशद हेच शै तनहास्तम यकतास्तम ।।

अर्थात् "मैं अकेला हूँ । मैं ! क्या आश्चर्य है ! मैं एकदम अकेला हूँ । मेरे सिवा और कोई वस्तु है ही नहीं—मैं अकेला, बेजोड़, लासानी हूँ ।"

एक उर्दू कवि तो इससे भी आगे जाकर अपनेको परमात्माका उत्पत्तिकर्ता कहता है :—

मैंने माना देहरको हक़ने किया पैदा वले,
मैं वह ख़ालिक़ हूँ मेरे कुनसे ख़ुदा पैदा हुआ।

अर्थात् "मैं मान लेता हूँ कि सृष्टिकी रचना ईश्वरने की है। पर मैं तो वह हूँ कि मेरे 'हो' शब्दके उच्चारणमात्रसे ईश्वरकी उत्पत्ति हुई।"

मानवमें परमात्माके दर्शनके सम्बन्धमें 'मीर'का एक शेर याद आ गया। इसी सिलसिलेमें लिख देता हूँ :—

सरापामें उसके नज़र करके तुम,
जहाँ देखो अल्लाह अल्लाह है।

उसके नखशिखमें ध्यान देकर देखो तो सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर दिखाई देता है।

[१५]

रुदनकी व्यर्थता—निष्फलता—पर मीरका एक दर्दनाक शेर है :—

ऐ गिरिया उसके दिलमें असर ख़ूब ही किया,
रोता हूँ जब मैं सामने उसके तो दे है हँस।

बेबसीका कैसा चित्र है! ऐ रुदन! तूने उसके दिलपर ख़ूब प्रभाव डाला, मैं जब उसके सामने रोता हूँ तो वह हँस देता है।

[१६]

प्यार करनेका जो ख़ूबाँ हमपे रखते हैं गुनाह,
उनसे भी तो पूछिए तुम इतने क्यों प्यारे हुए?

अर्थ स्पष्ट है। 'प्यारे' शब्द इस शेरकी जान है। इसमें शेख़ सादीके निम्नलिखित शेरकी छाया है :—

दोस्तां मनअ कुनिन्दम कि चरा दिल बुतो दादम,
बायद अव्वल बुतो गुफ़्तनकी चुनीं ख़ूब चराई।

[१७]

शामसे कुछ बुझा-सा रहता है,
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिसका।

मीरका यह शेर बहुत प्रसिद्ध है। वियोगके चित्र बहुतोंने दिये हैं पर यह अप्रतिम है। कहते हैं :—ग़रीब आदमीके दीपकके समान हमारा दिल शामसे ही कुछ बुझा-बुझा-सा रहता है।

ग़रीबोंके घरमें जो दीप्रक जलते हैं उनकी शिखा इतनी कम और ज्योति इतनी धीमी होती है कि जलते हुए भी वे बेजले और बुझे-से होते हैं। हमारे दिलकी भी वही हालत है। कैसा रूपक है।

[१८]

क्यों कर तू मेरी आँखसे हो दिल तलक गया,
यह बहर[1] मौजख़ेज़[2] तो असरुल अबूर[3] था।

मतलब यह है—"समझमें नहीं आता कि तू मेरी आँखोंके रास्ते दिल तक कैसे गया? (निरन्तर अश्रुमयताकी ओर इशारा) यह तरंगित सागर तो पार करने योग्य न था।"

कौन जाने वह किधरसे पहुँच जाते हैं? पता भी नहीं चलता। 'ज़ौक़' का एक शेर है :—

खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा,
क्या जाने कि आ जाता है तू इसमें किधरसे।

अर्थात् 'हमारा दिल तो सदैव (ग़मसे) बन्द ही रहता है (कभी खुलता नहीं, प्रसन्न नहीं होता) फिर तू न जाने किधरसे उस बन्द दिलमें घुस आता है!'

ज़रा हिन्दीके महाकवि बिहारीकी करामात देखिए :—

१. सागर। २. तरंगित, तरंगमय। ३. पार करनेमें कठिन।

देख्यौ जागत वैसिये, साँकरि लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जात भजि, को जाने किहिं बाट॥

दोहेमें शेरसे कहीं अधिक चमत्कार है। चारों ओरसे किवाड़ बन्द करके नायिका सो रही है। स्वप्नमें उसके प्रिय आते हैं। इतनेमें वह जग जाती है। जगकर देखती है कि किवाड़ तो वैसे ही बन्द है; उसमें साँकल उसी प्रकार लगी हुई है। न जाने वह किधरसे आते हैं और किस रास्ते भाग जाते हैं।

[१९]

सौन्दर्यकी एक उपमा देखिए :—

खिलना कम कम कलीने सीखा है,
उसकी आँखोंकी नीमख़ाबी[1] से।

अर्थात् उनकी आँखोंकी नीमख़ाबी (अलसान, मस्ती) से कलीने धीरे-धीरे खिलना सीखा है।

कली धीरे-धीरे खिलती है। अलसाई, उनींदी आँख भी मस्तीसे धीरे-धीरे खुलती है। उसीकी ओर संकेत है।

[२०]

होश जाता नहीं रहा लेकिन,
जब वह आता है तब नहीं आता।

अभी मेरा होश एकदम गुम नहीं हुआ है। चेतना बनी है; मैं चेतना-रहित नहीं हुआ हूँ पर हाय, जब वह आते हैं तभी होश नहीं रहता। तभी बेहोशी आजाती है।

'प्रसाद'का पद है :—

१. उनींदापन, अर्धस्वप्नावस्था।

मादकता-से आये वे,
संज्ञा-से चले गये थे।

वही भाव है। उनके आगमनसे प्रेमीपर मादकता छा जाती है और जानेपर होश आता है।

[२१]

पूछा जो मैंने दर्दे मुहब्बतसे मीरको,
रख हाथ उसने दिलपै टुक अपने रो दिया।

वेदनाका कैसा चित्र है। जो मैंने सहानुभूतिपूर्वक मीरसे उसका हाल पूछा तो अपने कलेजेपर हाथ रखकर टपटप आँसू बहा दिये।

वेदना अकथ है। इसलिए मीर जवाब नहीं देता। चुपचाप द्रवित होकर रो पड़ता है और केवल संकेत करता है कि पीड़ा कहाँ है।

[२२]

उसको तर्जे निगाह मत पूछो,
जी ही जाने है, आह मत पूछो।

इसमें भी प्रियतमाकी आँखोंके जादूका वर्णन है। वह जादू जो अकथ है, कैसे कहा जा सकता है। मीरके कोई दोस्त हमदर्दी दिखाने उनके पास पहुँचे और पूछा कि 'आखिर उसकी आँखोंमें ऐसी क्या बात है, जो तुम यों पागल हो रहे हो।' मीर क्या जवाब देते? बार-बार पूछनेपर कलेजेका उच्छ्वास इस शेरके रूपमें निकल पड़ा—"भाई, मेहरबानी करके, उसकी तर्जेनिगाह, देखनेके ढंगके बारेमें कुछ न पूछिए! आह! उसे मेरा जी ही जानता है, बस पूछिए नहीं।" 'जी ही जाने है' और 'आह' शब्दने शेरको वेदनाकी गहरी अनुभूति प्रदान की है।

[२३]

तेरे बालोंके वस्फ़[1] में मेरे,
शेर सब पेचदार होते हैं।

उर्दू साहित्यमें प्रियतमके बालों, विशेषतः टेढ़ी-मेढ़ी ज़ुल्फ़ोंका ख़ूब वर्णन है। प्रायः सभी कवियोंने उसपर कुछ-न-कुछ कहा है। बालोंको उर्दू कवि जितना पेचदार, उलझा, कह सकें उतना ही अच्छा माना जाता है।

मीर कहते हैं कि तेरे बाल इतने पेचदार हैं कि उनकी प्रशंसामें मैं जो शेर कहता हूँ वही पेचदार हो जाता है।

मीरकी ही एक उक्ति और है :—

आवेगी एक बला तेरे सर सुन कि ऐ सबा,
ज़ुल्फ़े-सियह[2] का उसके अगर तार जायगा।

मीर साहब सबा (प्रभाती वायु) को सावधान कर रहे हैं कि होशयार होकर बहा कर, वर्ना यदि किसी रोज़ उसके ज़ुल्फ़े-सियह (काली ज़ुल्फ़ों) से पाला पड़ गया तो तेरे सिर एक बला आ जायगी।

बालों, अलकों, ज़ुल्फ़ोंका सभी भाषाओंके कवियोंने वर्णन किया है। मीरने ही किसी शेरमें कहा है—"तू कैसा उद्दण्ड शिकारी है कि अपनी ज़ुल्फ़ोंमें मेरा तायरे-दिल (हृदय-पक्षी) फँसाये लिये जा रहा है।"

किसी संस्कृत कविने कहा है:—

जानुभ्यामुपविश्य पार्ष्णि निहितश्रोणिभरा प्रोन्नमद्-
दोर्वल्ली नमदुन्नमत्कुचतटी दीव्यन्नखाङ्कावलिः।
पाणिभ्यामवधूय कङ्कणझणत्कारावतारोत्तरं
बाला नह्यति किं निजालकभरं किं वा मदीयं मनः॥

१. प्रशंसा। २. काली अलकें

बिहारी कहते हैं:—

कच समेटि कर भुज उलटि, खये सीस पट टारि।
काकौ मन बाँधै न यह, जूरौ बाँधनिहारि॥

'शृंगार-सप्तशती'कारने इस दोहेका संस्कृत दोहेमें यों अनुवाद किया है :—

उन्नमय्य बाहुद्वयं, कचपुञ्जं गृह्णाति।
प्रियाकेशबन्धे मनः, कस्य न सा बध्नाति॥

बिहारीका ही एक और दोहा है :—

छुटे छुटावैं जगत् तें, सटकारे सुकुमार।
मन बाँधत बेनी बँधे, नील छबीले बार॥

एक और संस्कृत कविका कथन है:—

कमलाक्षि! विलम्ब्यतां क्षणं कमनीये कचभारबन्धने।
दृढलग्नमिदं दृशोर्युगं शनकैरद्य समुद्धराम्यहम्॥

कमलाक्षि! ज़रा ठहरो। मेरी आँखें तुम्हारे केश-पाशमें जा फँसी हैं। धीरे-धीरे मैं उन्हें निकाल लूं तब जूड़ा बाँधो। थोड़ी देर मुझपर कृपा करो नहीं तो ये उसीमें बँधी रह जायँगी।

[२४]

जिस दिनसे उसके मुँहसे बुरक़ा उठेगा, सुनियो,
उस रोज़से जहाँमें ख़ुरशीद फिर न झाँका।

मीर साहब फ़रमाते हैं कि जिस दिन उसके मुँहसे बुरक़ा (मुँह और शरीर ढकनेका वह वस्त्रावरण जो प्रायः मुसलमान स्त्रियाँ पहनती हैं) उठेगा, तुम सुनोगे कि उस दिनसे सूर्य फिर नहीं निकला।

उसके मुँहको सूर्यको लज्जित करनेवाला बताया है पर बात अनूठे ढंगसे कही गयी है।

सूरज क्यों न झाँकेगा ?

सूरजके न झाँकनेके दो कारण मीरके शेरसे निकलते हैं। पहला यह कि उसके 'मुखकी अनन्त ज्योतिके आगे अपनी ज्योतिकी मलिनताका अनुभव करके सूर्यको इतनी लज्जा आयेगी कि वह अपना मुँह फिर न दिखायेगा' और दूसरा यह कि 'उसकी अपार ज्योतिके कारण सूर्यका प्रकाश इतना क्षीण हो जायगा कि फिर साधारणतः वह लोगोंको दिखायी ही न देगा, लोग समझेंगे कि अब वह निकलेगा ही नहीं।'

इस विषयपर हिन्दी और संस्कृतके कवियोंकी भी उक्तियाँ उपलब्ध हैं। 'रसनिधि' हिन्दीके एक प्रसिद्ध दोहाकार हुए हैं। कितने ही लोग उनके दोहोंकी बिहारीके दोहोंसे तुलना करते हैं। 'रतनहजारा' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

'रसनिधि' अपनी नायिकाकी मुख-ज्योतिको लेकर लिखते हैं:—

कुहूनिसा तिथिपत्र मैं, वाचन कौ रहि जाइ।
तुव मुख-ससि की चाँदनी, उदै करति है आइ॥

—भारतजीवन संस्करण, पृष्ठ २३, दोहा १९७

कवि कहता है—"पत्रेमें कुहू-निशा केवल बाँचने भरके लिए रह गयी है, वस्तुतः वह कभी आती नहीं, क्योंकि तेरे मुखरूपी चन्द्रकी चाँदनी उदित होकर उसपर अधिकार जमा लेती है।"

चलिए रातके समय रास्ता चलनेवालोंको आराम हो गया। पर 'रसनिधि' केवल एक दिनकी बात कर रहे हैं; उनकी चाँदनी केवल एक दिनकी है, जब उसी ज़मीनपर बिहारीने प्रति दिन चाँदनीकी व्यवस्था कर रखी है:—

पत्रा ही तिथि पाइयतु, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहै, आनन-ओप-उजास॥

—लालचन्द्रिका—आज़मशाही क्रम—४८६

—बिहारी-बिहार, पृष्ठ १४५

अर्थात् "उस घरके आस-पास अब तिथियाँ केवल पत्रेमें ही लिखी हुई दीख पड़ती हैं, क्योंकि नायिकाके मुखकी आभाके कारण वहाँ सदा ही पूर्णिमा बनी रहती है। (इसके कारण अन्य सब तिथियाँ केवल पत्रेमें रह गयी हैं।)

'शृंगारसप्तशती'कार ने इस दोहेका संस्कृत अनुवाद यों किया है :—

तव गृहमभि नाऽपुस्तकस्तिथिं कोऽपि जानाति।
यतः पूर्णचन्द्रानने पूर्णिमेव निशि भाति॥

एक संस्कृत कविका चमत्कार देखिए—

तानि प्राञ्चि दिनानि यत्र रजनी सेहे तमिस्रापदं,
सा सृष्टिर्विरराम यत्रभवति ज्योत्स्नामयो नातपः।
अद्यान्यः समयस्तथाहि तिथयोऽप्यस्या मुखस्योदये,
हस्ताहस्तिकया हरन्ति परितो राकावराकीयशः॥

अर्थात् "वे दिन बीत गये जब रजनी तमिस्रापदको प्राप्त थी—काली होती थी। वह सृष्टि समाप्त हो गयी जब कि आतप ज्योत्स्नामय न था, धूपमें चाँदनी नहीं आती थी। यह तो कुछ दूसरा ही समय है। देखो न, उसके मुखके उदय होनेसे बारी-बारी सब तिथियाँ 'राकावराकीयशः'—पूर्णिमाके यशको—सब प्रकार लूट लेती हैं।"

कैसा चमत्कार है। अब तो दिन-रात पूर्णिमा ही है। अभी तक जितने कवियोंने कहा केवल रातके लिए कहा पर 'सा सृष्टिर्विरराम यत्र भवति ज्योत्स्नामयो नातपः' कहकर कविने धूपको भी चाँदनीमें परिवर्तित

कर दिया है—सूर्यके आतपपर भी नायिकाकी 'मुख-दुति' का वार्निश पेण्ट कर दिया; सूर्यका भी मान-मर्दन हो गया।

अब तुलना कीजिए।

'रसनिधि'की नायिका बड़ी सुन्दरी है। 'कुहूनिसा' में चन्द्रमाकी अनुपस्थितिके कारण जब चारों ओर अन्धकार रहता है तब उसके 'मुख-ससि की चाँदनी' उदय होकर 'कुहूनिसा' की सत्ता ही मिटा देती है, उसे केवल पत्रामें बाँचनेके लिए रहने देती है।

वास्तविक चन्द्रकी अनुपस्थितिमें यदि नायिकाके 'मुख-ससि' ने सच्चे चन्द्रकी मर्यादा प्राप्तकर ज्योति फैला दी तो क्या हुआ ? और तिथियाँ तो पड़ी हुई हैं। यह तो केवल एक दिनकी बात हुई।

हाँ, बिहारीकी नायिका अलबत्ता ज़बर्दस्त है। उसके 'आनन-ओप-उजास' से 'वा घरके चहुँपास नितप्रति पून्योई रहै' और इस प्रकार 'पत्रा ही तिथि पाइयतु'—केवल पत्रेमें ही तिथियोंकी सत्ता रह गयी है; वहाँ सदा पूनो ही पूनो है।

रसनिधिकी नायिका सीधी है, साफ़ है, अच्छी है। पर बिहारीकी उससे कहीं रसीली और सुन्दर है। संस्कृत कविकी नायिका बिहारीसे भी आगे है। उसने अपने मुखोदय-द्वारा, दिन हो या रात सदा समग्र संसारको अखण्ड चाँदनीसे ढक रखा है—केवल उस घरके चतुर्दिक् नहीं, सर्वत्र उसका राज्य है। दिन-रातका भेद नष्ट हो गया; धूपमें भी चाँदनी घुस गयी है।

अब मीरकी ओर लौटिए। यह हज़रत दीन-हीन चन्द्रमापर हाथ न उठाकर सीधे 'खुरशीद'—सूर्यपर ही टूटे हैं। उनको विश्वास है कि प्रियतमा जिस दिन अपने मुखसे बुर्क़ा उठा देगी, उसके बाद सुनोगे कि सूरज फिर दुनियामें झाँकने नहीं आया।

संस्कृत कविकी रचनामें मामला बढ़ गया है। उसमें शक्तिके दुरु-पयोगकी भी किञ्चित् छाया है। फिर इतनी उड़ानके बाद भी ज्योत्स्ना

केवल आतपमें मिलकर रह गयी पर धूप और ज्योत्स्ना दोनोंका अस्तित्व बना रहा। मीरके कथनानुसार तो सूर्य बेचारा मुख-प्रकाशसे लज्जित होकर फिर झाँकनेका नाम ही न लेगा !

[२५]

मीर इन नीमख़ाब आँखोंमें ,
सारी मस्ती शराबकी-सी है ।

मीर साहब कहते हैं कि इन उनींदी आँखोंमें जो मस्ती है, वह ठीक शराबकी भाँति है। (शराबके प्रभावमें आँखें चढ़ जाती हैं, उनमें एक विशेष प्रकारका उनींदापन, मस्ती और लालिमा आ जाती है।)

मीर तो यहीं तक रह गये परन्तु एक और उर्दू कविने इससे आगे बढ़कर कहा है:—

मयमें वह बात कहाँ जो तेरे दीदारमें है ,
जो गिरा फिर न कभी उसको सँभलते देखा।

अर्थात् "शराबमें वह बात कहाँ जो तेरी आँखोंमें है। तेरी आँखोंके नशेमें जो एक बार गिरा कि वह फिर सँभलते—उठते—नहीं देखा गया।"

हिन्दीका प्रसिद्ध दोहा है:—

अमिय, हलाहल, मदभरे, स्वेत, श्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार ॥*

* क्रमालंकार देखिए:—

अमिय	हलाहल	मदभरे
स्वेत	श्याम	रतनार
जियत	मरत	झुकि झुकि परत।

तेरी इन श्वेत, श्याम, रतनारी आँखोंमें अमृत, विष और मद तीनों का ही विचित्र सम्मिश्रण हुआ है (क्योंकि) ये जिसको एक बार (प्यारसे) देख लेती हैं वह जीता, मरता और झुक-झुक पड़ता है !''

क्रमालंकारका इतना सरल पर उत्कृष्ट उदाहरण कदाचित् ही और कहीं देखनेको मिलेगा। शब्द-सौष्ठव, अर्थगांभीर्य, स्वभावोक्ति, अनुभव एवं अलंकारमयी योजना सबमें अनूठापन है।

[२६]

जब नाम तेरा लीजिए तब चश्म भर आवे,
इस ज़िन्दगी करनेको कहाँसे जिगर आवे।

अतलस्पर्शी वेदनाका एक चित्र है। जब तेरा नाम लेता हूँ, जब तुम्हारी चर्चा होती है, तब आँखें भर आती हैं। जीवन बितानेको कहाँसे दिल लाऊँ ?

[२७]

जीमें था उससे मिलिए तो क्या क्या न कहिए 'मीर',
पर जब मिले तो रह गये नाचार देखकर।

अनुभवकी वाणी है। मनमें तो बहुत-सी बातें थीं कि उनसे भेंट होगी तो न जाने क्या-क्या कहूँगा, कितनी बातें करूँगा पर जब वह मिले तो उन्हें लाचारीके साथ देखता ही रह गया, कुछ भी न कह सका।

इसी बातको दूसरी जगह कहा है—

कहते तो हो यूँ कहते यूँ कहते जो वह आता।
यह कहनेकी बातें हैं कुछ भी न कहा जाता॥

भावनाके आधिक्यमें वाणी मौन हो जाती है। इसी बातको यहाँ कहा गया है।

[२८]

हस्ती अपनी हुबाब[1] की-सी है,
यह नुमाइश सुराब[2] की-सी है।

मानव-जीवन ठीक वैसा है जैसे अपार सागरके तलपर बुलबुले होते हैं। बुलबुलेसे उपमा देनेमें कई खूबियाँ हैं। जो लोग प्रकृतिवादी हैं उनका कथन है कि विशेष प्रकारकी स्थितियोंके परस्पर संमिश्रणसे जगत्की भिन्न-भिन्न वस्तुएँ बनती हैं और उन्हींके संघर्षणसे नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार सृष्टिका कार्य अपने आप चला करता है। मनुष्यकी उत्पत्ति और विनाशका भी उनके मतसे यही उत्तर है। मानव-जीवनकी उपमा बुलबुलेसे देनेमें इन लोगोंके भी सिद्धान्तका खण्डन नहीं होता। जैसे पंचतत्त्वों तथा कुछ अन्य उपादानोंके विशेष स्थितिजन्य पारस्परिक सयोगसे मानव-जीवनका आविर्भाव तथा उनके अव्यवस्थाजन्य संघर्षणसे नाश होता है उसी प्रकार आकाश, वायु तथा जलके विशेष संयोगसे बुलबुलेकी भी उत्पत्ति होती है और उसमें ज़रा भी व्यतिक्रम होनेसे उसका अन्त हो जाता है।

दूसरी विशेषता, बुलबुलेके उदाहरणमें, यह दीख पड़ती है कि जैसे बुलबुला सागरका अखण्ड और अभेदभाव-सूचक एक अंश है, वैसे ही मनुष्य भी अनन्त सृष्टिका अभेदभाव-सूचक जीव है। बुलबुलेमें जैसे अपार सागरका आन्तरिक तत्त्व सूक्ष्मरूपसे सन्निहित रहता है; छोटेसे एक बुल-बुलेमें जैसे समस्त सागरका भाव हृदयंगम किया जा सकता है, मानव-जीवनमें भी उसी प्रकार अनन्त तत्त्वोंका अन्वेषण किया जा सकता है; सीमाबद्ध इस मानव-जीवनमें भी चिरन्तन, व्यापक शक्ति एवं असीम सत्स्वरूप विराट तथा उसके वैभवको प्रत्यक्ष कर सकते हैं। जैसे बुलबुला,

१. बुलबुला। २. मृगजल, जलाभास।

अलग होकर भी, वस्तुतः समुद्रसे अलग नहीं है वैसे ही मानव-सत्ता भी अनन्तसे भिन्न कुछ नहीं। "नेह नानास्ति किञ्चन", "अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च" इत्यादि श्रुतियोंमें इसी रहस्यकी ओर संकेत है।

दूसरे चरणमें मीर कहते हैं—'यह नुमाइश सुराबकी-सी है।' यह दृश्य–प्रपंच मृगजल-भ्रमके समान है अर्थात् माया है। सुराब रहती कुछ है और दिखाई देती कुछ और है। कड़कड़ाती धूपमें प्याससे व्याकुल शिथिलदृष्टि मृग जब चारों ओर देखता है तो दूरकी शुष्क बालुकाराशि लहराते हुए जलके सदृश दीख पड़ती है। यह संसार भी एक सुराब है। जिस रूपमें हम इसे देख रहे हैं, वह इसका वास्तविक रूप नहीं है।

इसे समझकर ही अन्यत्र मीरने कहा है:—

चश्मे-दिल खोल उस भी आलमपर,
याँकी औक़ात ख़ाबकी-सी है।

"ज़रा अपने हियेकी आँखें उस दुनियाकी ओर खोल। यहाँकी अवस्था (जिसमें तू भूला हुआ है) तो स्वप्नवत् है।

स्वप्नमें हम जो चीज़ें देखते हैं वे रहती तो असत् हैं किन्तु स्वप्नकी अवस्थामें वे सच्ची ही मालूम पड़ती हैं, वही स्थिति इस दुनियाकी भी है।

[२९]

बारीक वह कमर है ऐसी कि हाल क्या है।
जो अक़्लमें न आवे उसका ख़याल क्या है॥

कमरका पतला होना सौन्दर्यका लक्षण माना जाता है। उसकी बारीकीको लेकर उर्दू, हिन्दी, संस्कृतके कवियोंने बड़ी उड़ानें भरी हैं। मीर साहब कहते हैं कि वह कमर इतनी पतली है कि क्या कहा जाय? भला जो बुद्धिमें, कल्पनामें ही न आवे उसका विचार करनेसे क्या लाभ?

कमरकी सूक्ष्मताकी पराकाष्ठा है। 'जो अक़्लमें न आवे उसका ख़याल क्या है' कहकर मीरने उतना कह डाला है जिसके आगे कोई कुछ कह ही नहीं सकता। बुद्धि या कल्पनासे ही कवि कुछ कह सकता है पर वह इनके परे है। तब उसकी बात क्या ?

इस ज़मीनपर अन्य कवियोंकी करामात भी देखिए। संस्कृतके महाकवि पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं :—

जगन्मिथ्याभूतं मम निगदतां वेदवचसा-
मभिप्रायो नाद्यावधि हृदयमध्याविशदयम्।
इदानीं विश्वेषां जनकमुदरं ते विमृशतो
विसन्देहं चेतोऽजनि गरुडकेतोः प्रियतमे !

और भी—

अनल्पैवादीन्द्रैरगणितमहायुक्तिनिवहै-
र्निरस्ता विस्तारं क्वचिदकलयन्ती तनुमपि।
असत्ख्याति-व्याख्यादिकचतुरिमाख्यातमहिमा-
ऽवलग्ने लग्नेयं सुगतमतसिद्धान्त-सरणिः ॥

अर्थात् बौद्ध दार्शनिकोंके शून्यवादको जब बड़े-बड़े प्रतिद्वन्द्वी विद्वानों (शंकर एवं वाचस्पति इत्यादि इसका खण्डन ज़ोरोंसे कर गये हैं) की (अकाट्य युक्तियोंकी) मारसे दुनियामें कहीं जगह न मिली तो वह तुम्हारी (लक्ष्मीकी) कटिमें जाकर समा गया।

पण्डितराज अपने ढंगके अनोखे कवि थे; उनकी शब्द-योजना, उनकी शैली, उनकी मधुरिमा और उनकी धारा उन्हींकी चीज़ है। ये विशेषताएँ एकत्र, संस्कृतके कदाचित् ही दूसरे किसी कविको प्राप्त हुई हों। भाषाके प्रवाह और वर्णनकी निर्भीकतामें तो कोई उनके सामने ठहर नहीं सकता। यह उसी निर्भीकताका उदाहरण है—जगज्जननीकी कटिपर भी क़लम चलानेमें उन्हें हिचकिचाहट न हुई।

'बेङ्कटाध्वरि' संस्कृतके एक प्रतिभाशाली, पर अपेक्षाकृत अप्रसिद्ध, कवि हुए हैं। यह 'नीलकण्ठ' (संस्कृतके प्रसिद्ध कवि) के सहपाठी थे। इनका समय १६४० ई०के आस-पास है। 'लक्ष्मीसहस्र' इनकी सबसे उत्तम पर क्लिष्ट रचना है। लक्ष्मीके ऊपर संस्कृत साहित्यमें जितने स्तुतिकाव्य हैं, कहा जा सकता है कि, यह उनमें सर्वश्रेष्ठ है। इसमें भी लक्ष्मीकी कटिका वर्णन मिलता है :—

परमादिषु मातरादिमं यदिदं कोषकृताह मध्यमम्।
अमरः किल पामरस्ततो स बभूव स्वयमेव मध्यमः ॥

अत्यन्त क्लिष्ट पर चमत्कारपूर्ण रचना है। कवि कहता है :—"हे देवि ! तुम्हारी कटि संसारके आदिभूत परमाणुओंसे भी सूक्ष्म है। यह मध्यभाग (कमर) परमादि (उत्तमोंमें भी उत्तम) वस्तुओंमें भी आदिम (श्रेष्ठ, उत्तम) है किन्तु अमर (कोषकार) को यह समझ कहाँ ? उसने ऐसी उत्तम कटिको मध्यम (नीच एवं मध्यमें मकार युक्त) कह डाला। वह यही समझता है कि यह मध्यम, परमादि (अन्त्य 'म'कार संयुक्त) शब्दोंमें आदिम (आदि 'म'कार-संयुक्त) है (अर्थात् जैसे परम चरम इत्यादि शब्दोंके अन्तमें 'म' है वैसे ही 'मध्यम' में भी है) उनसे इसमें विशेषता यह है कि यह आदिम है (क्योंकि इसके आदिमें भी 'म'कार है।) देवि ! तुम्हारी ऐसी सर्वोत्तम कटिको मध्यम (नीच) कहनेका फल कोषकार अमरको ख़ूब भोगना पड़ा। उसने तुम्हारी कटिको 'मध्यम' कहा, इसका फल यह हुआ कि वह स्वयं ही मध्यम (मध्य 'मकार' संयुक्त) हो गया। कहाँ तो वह पहले 'अमर' (देवता) था—स्वर्गमे सुख भोगता था कहाँ इस निन्दाजन्य पापका फल पाकर मध्यम (मानव लोकमें आकर मनुष्य) बन गया। देवि ! तुम्हारी शक्तिसे अपरिचित मदमत्त चला तो था तुम्हें 'मध्यम' (मध्य मकार युक्त) कहने पर वह स्वयं 'मध्यम' (अमर शब्दके मध्यमें 'म' है) हो गया। (तुम्हारा)

मध्यम (कटिभाग) तो मध्यमें मकारवाला नहीं हुआ (क्योंकि उसके मध्यमें तो 'म' न होकर 'ध्य' है) परन्तु अमर स्वयं मध्यम हो गया। इतना ही नहीं वह 'पामर' बन गया (क्योंकि देवलोकमें था, अब मनुष्य-लोकमें आकर देवत्वसे च्युत हो गया।)

क्लिष्ट श्लेषकी बहार है। नैषधमें श्रीहर्षने भी कटिका अच्छा वर्णन किया है पर विस्तार-भयसे उसे छोड़ता हूँ। अब उर्दू-हिन्दी कवियोंकी करामात देखिए।

उर्दूके प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय 'अकबर' इलाहाबादी कहते हैं :—

कहीं देखा न हस्ती वो अदम का इश्तराक़ ऐसा,
जहाँ में मिस्ल रखती ही नहीं उनकी कमर अपना।

अर्थात् "कहीं भाव और अभावका ऐसा संयोग दिखाई न दिया। उनकी कमरकी दुनियामें कोई बराबरी नहीं।"

भूषण कहते हैं—

सोंधेको अधार किसमिस जिनको अहार,
चारको सो अंक लंक चंद सरमाती हैं।

—**शिवा बावनी**

कमर इतनी पतली है जैसे—४—के अंकका मध्य भाग जो पड़ी रेखाओं के बीचमें दिखाया गया है।

बिहारीने कहा है—

*बुधि अनुमान प्रमान स्रुति, किये नीठि ठहराइ।
सूछम कटि परब्रह्म लौं अलख लखी नहिं जाइ॥

---

*याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीको ब्रह्म-साक्षात्कारके उपाय बताते हुए जो चार श्रेणियाँ बताई थीं, बिहारीने 'बुधि, अनुमान, प्रमान, स्रुति' कहकर उसी-का प्रतिपादन किया है। मूल श्रुति यों है—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।'

"वह सूक्ष्म कटि परब्रह्मके समान 'अलख' है। श्रुति (कान और वेद वाक्य) द्वारा सुनते हैं कि कमर है (श्रुति यह भी बताती हैं कि परब्रह्म है)। सुननेके बाद अनुमान करते हैं कि ऐसा हो सकता है या नहीं ? इसके बाद प्रमाण सोचते हैं कि कटिके बिना धड़ ठहरेगा किसपर ! (दूसरी ओर यह सोचते हैं कि संसारका आधार कौन है ?) ऐसा सोचकर उस 'अलख' (कमर और परब्रह्म) दोनोंको बुद्धि द्वारा निरन्तर अभ्यास करके कल्पनाके बलपर स्थिर करते हैं। तब भी वह अलख ही है। परब्रह्म होते हुए भी जैसे दिखाई नहीं देता उसी प्रकार कमरका पता नहीं चलता।"

निश्चय ही बिहारीने पण्डितराजको भी पीछे छोड़ दिया है। कवि-श्रेष्ठ 'शंकर' ने कहा है:—

पासके गये पै एक बूँद हू न हाथ लगै,
दूर सों दिखात मृगतृष्णिकामें पानी है।
'शंकर' प्रमाण-सिद्ध रंगको न संगपर,
जानि परै अम्बरमें नीलिमा समानी है।
भावमें अभाव है अभावमें धौं भाव भर्यो,
कौन कहै ठीक बात काहूने न जानी है।
जैसे इन दोउनमें दुविधा न दूर होत,
तैसे तेरी कमरकी अकथ कहानी है॥

'शंकर' का यह कवित्त भी किसीकी उक्तिसे कम नहीं है। कहते हैं—दूरसे तो मृगतृष्णिकामें पानी दिखाई देता है। किन्तु पास जानेपर एक बूँद भी हाथ नहीं लगता। यह बात भी प्रमाण-सिद्ध है कि आकाशमें रंगका संयोग नहीं है परन्तु देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है मानो वह नीला है। जान नहीं पड़ता कि यह क्या बात है ? भावमें अभाव है या अभावमें भाव है ! जैसे आजतक ये दोनों बातें द्विविधामें पड़ी हुई हैं, वैसे ही तेरी

कमरका भी कोई निश्चय नहीं। उसकी कहानी 'अकथ' है। कोई क्या कहेगा ?"

'चन्द्रशेखर' कहते हैं—

जौ कहिये मनकी गति तो मन सों न रहै थिर एक घरी है।
लोक कहै जिमि ब्रह्म है सूछम त्यों अनुमानि कै मानि परी है।
देखि परै न कहूँ दरसै परसै परमानु लौं जानि परी है।
भावतीकी कटि मैं करतार करी केहि भाँति धौं कारीगरी है॥

सैयद गुलाम नबी (रसलीन) अपने 'अंग-दर्पण'में कहते हैं—

सुनियत कटि सुच्छम निपट, निकट न देखत नैन।
देह भये यों जानिए, ज्यों रसनामें बैन॥

अपूर्व दोहा है। कहते हैं—लोगोंसे सुनता हूँ कि कटि निपट सूक्ष्म है किन्तु आँखोंसे तो कुछ दिखाई नहीं देता। तब ! तब क्या मान लें कि कटि है ही नहीं ? नहीं ऐसा तो हो नहीं सकता क्योंकि यदि कटि है नहीं तो धड़ इत्यादि ठहरे किसके सहारे हैं ? जरूर कटि है। तब फिर दिखाई क्यों नहीं देती ? जैसे रसनामें बैन है पर उसे देख नहीं सकते, वैसे ही देह होनेसे जान पड़ता है कि कमर भी है।

पटका बँधा रहा तो गुमाँ था हमें कि हो,
खुलनेसे खुल गया कि निशाने-कमर नहीं।

—सईद

कहता है कोई बाल उसे कोई रगे-गुल,
कुछ मैं भी कहूँ, तेरी कमर जो नज़र आवे।

—हैफ़

मादूमको क्योंकर कोई साबित करे अल्ला,
मज़मून कमर यारका उनक़ासे नहीं कम।

—निज़ाम

तुम्हारे लोग कहते हैं कमर है,
कहाँ है किस तरहकी है किधर है ?

—अकबर

यह भी उस नाज़ुक बदनको बार हो,
गर कमर बाँधें नज़रके तारसे।

—ज़ौक

दीदे-कमरे-यारकी मुश्ताक़ हैं आँखें,
हस्तीमें तमाशाए-अदम मद्दे-नज़र है।

—आतिश

[३०]

हाय उसके शर्बती लबसे जुदा,
कुछ बताशा-सा घुला जाता है जी।

कैसी मधुर शब्द-योजना है। सीधे-सादे शब्द हैं पर विदग्धतासे ऊपर-से नीचे तक भरे हुए। 'लब' (ओठ) के लिए शर्बती विशेषण भी कितना अच्छा हुआ है। इससे मधुरता और लालिमा दोनोंका काम निकल जाता है। "कुछ बताशा-सा घुला जाता है जी"—इस पदने तो ग़ज़ब ही कर दिया है। 'बताशा-सा जी घुलना' ! कितना बढ़िया ! चमत्कार देखिए—शर्बती लबसे अलग रहनेपर जी बताशा-सा घुला जाता है। 'शर्बत'से मिलनेपर बताशेको घुलना चाहिए किन्तु यहाँ उलटी बात है। उस शर्बतसे दूर रहकर 'बताशा' घुला जा रहा है।

[३१]

यह छेड़ देख हँसके रुखे-ज़र्दपर मेरे,
कहता है मीर! रंग तो अब कुछ निखर चला।

यह छेड़ और शरारत देखिए। मेरे पीले चेहरेको देखकर यह कहना कि मीर! अब तो तेरा रंग कुछ निखर चला है।

वहाँ जान जा रही है, यहाँ हँसी सूझ रही है।

[३२]

आशिक हैं हम तो 'मीर'के भी ज़ब्ते इश्क़के,
दिल जल गया था और नफ़स लबपे सर्द था।

ठण्ढी आहपर क्या शेर कहा है! हम मीरके प्रेमपर नियन्त्रण रखनेकी शक्तिपर मुग्ध हैं कि दिल जल गया था पर ओठोंपर साँस ठण्डी थी। 'जले दिलसे ठण्डी साँस' का निकलना काव्यका चमत्कार है।

[३३]

बेख़ुदी ले गयी कहाँ हमको
देरसे इन्तज़ार है अपना।

बेख़ुदी हमें न जाने कहाँ ले गयी है कि देरसे हम अपनी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अनुभूत एवं गहरे भाव हैं।

[३४]

शरारत-भरे बाह्य सौन्दर्यके चित्र देखिए। वह रातको आये हैं पर—

थी सुबह जो मुँहको खोल देता,
हर चंद कि तब थी एक पहर रात।
फिर ज़ुल्फोंमें मुँह छिपाके बोला,
अब होवेगी 'मीर' किस क़दर रात।
ज़ुल्म है, क़हृ है, क़यामत है,
ग़ुस्सेमें उसके ज़ेरे-लबकी बात।

रातमें जब मुँह खोल देते हैं तब सुबह हो जाती है। फिर बालोंमें मुँह छिपा लेते हैं और अँधेरा हो जाता है। शरारतसे पूछते हैं—मीर, अब कितनी रात है ? क्रोधमें उनके ओठोंकी बात क्या कहें, क़यामत है।

[३५]

ओठोंके आमंत्रणशील सौन्दर्यपर कहते हैं:—

लाले ख़मोश अपने देखो हो आरसीमें
फिर पूछते हो हँसके मुझ बेनवाकी ख़ाहिश !

अपने मौन लाल (रक्त हीरक ओठ, अधर) को दर्पणमें देखते हो, फिर भी मुझ दीनकी इच्छा पूछते हो ? (चुम्बनकी इच्छाको किस तरह प्रकट किया है।)

[३६]

चालके सौन्दर्य एवं आकर्षणके बारेमें कहते हैं:—

क्या चाल यह निकाली होकर जवान तुमने,
अब जब चलो हो, दिलको ठोकर लगा करे है।

तरुणाई पाकर तुमने क्या चाल निकाली है कि जब चलते हो, दिलको ठोकर लगा करती है !

[३७]

वह दर्दे-दिल नहीं तो क्यों देखते ही मुझको,
पलकें झुकालियां हैं, आँखें चुरालियां हैं।

अगर उनमें दिलकी व्यथा नहीं है, उनमें भी प्यारकी किरण नहीं है तो मुझे देखते ही उनकी पलकें क्यों झुक जाती हैं और आँखें क्यों चुराई जाती हैं ?

[३८]

किया जो अर्ज़ कि दिल-सा शिकार लाया हूँ;
कहा कि ऐसे तो मैं मुफ़्त मार लाया हूँ।

बदक़िस्मत मीर बड़ी आशासे अपना दिल लेकर सरकारके दरबारमें नज़र करने गये थे। वहाँ जाकर बड़ी आरज़ू-मिन्नत एवं दीनतासे कहा कि "सरकार! मैं आफ़तका मारा, आपकी नज़रोंका घायल हूँ। आपके लिए दिल-जैसा (बढ़िया) शिकार लाया हूँ। वह आपकी नज़र है!"

हुज़ूरने फ़रमाया—क्या अदना चीज़ लेकर आया। ऐसे न जाने कितने शिकार तो मैं मुफ़्त, बिना परिश्रम, मार लाया हूँ। (तब तेरा दिल लेकर क्या करूँगा?)

शेरके दूसरे पदमें, जो कि राजकीय उत्तर है—कितनी शोख़ी, कितना चुलबुलापन है। सीधे-सादे शब्दोंमें अपने त्याग और अपने दिलकी चोटका उल्लेख कर दिया है। 'दिल-सा शिकार' कहकर यह भी जता दिया कि मेरा दिल किसीके (नयन) बाणोंसे घायल भी हो चुका है। फिर यह भी ध्वनि निकलती है कि मैं तुम्हें ही इसके ग्रहण करने योग्य समझता हूँ, तुम्हीं इसको लो। इसके बाद प्रियतमके मुँहसे 'ऐसे तो मैं मुफ़्त मार लाया हूँ' कहलाकर उनकी निष्ठुरता और परिहासभरी शोख़ीका चित्र भी खींच दिया है।

[३९]

पलकोंसे रफ़ू उनने किया चाके-दिल ऐ मीर,
किस ज़ख़्मको किस नाज़कीके साथ सिया है।

रफ़ू करना, किसी फटी हुई चीज़को तागे भरकर पूरा करनेको कहते हैं। बाक़ी अर्थ साफ़ है।

[४०]

कहता है दिल कि आँखने मुझको किया ख़राब,
कहती है आँख यह कि मुझे दिलने खो दिया ।
लगता नहीं पता कि सही कौन-सी है बात,
दोनोंने मिलके 'मीर' हमें तो डुबो दिया ॥

दिलका कहना है कि मुझे आँखने चौपट किया और आँख कहती है कि मुझे दिलने खो दिया । दोनोंका झगड़ा चल रहा है । ठीक पता नहीं लगता कि बात क्या है ? पर इन दोनों (दिल और आँख) के झगड़ेमें मैं तो डूब गया ।

[४१]

हर सुबह उठके तुझसे माँगू हूँ मैं तुझीको,
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है ।

एक प्रेमीके लिए इससे बड़ी कोई इच्छा नहीं हो सकती कि किसी भी अवस्थामें वह अपने प्रियतमको न भूले और सदा उसे ही पानेकी इच्छा करे । उसके लिए वही सब कुछ है । परमेश्वर है तो वही है, सृष्टिका लक्ष्य है तो वही है, माता-पिता, भाई-बहिन जो है वही है । वह उसे छोड़ परमात्माकी भी इच्छा नहीं करता । *और यदि वह परमात्माको मानता है तो उससे भी अपने प्रियतमको ही माँगता है । आग़ा हश्र कहते हैं :—

* मजनूँके सम्बन्धमें एक कथा कही जाती है । एक बार मजनूँने यह स्थिर करके कि मैं इन आँखोंसे लैलाके अतिरिक्त और कुछ न देखूँगा, आँखें मूँद लीं और बहुत दिन हो गये खोलीं नहीं । परीक्षार्थ परमात्मा स्वयं प्रकट हुए और कहा—'तू आँखें खोल और मेरी ओर देख ।' मजनूँने पूछा—'तू कौन है ?' आवाज़ आई,—'मैं परमात्मा हूँ ।' मजनूँने कहा—

सब कुछ ख़ुदासे माँग लिया तुझको माँगकर,
उठते नहीं हैं हाथ मेरे इस दुआके बाद।

मीर साहब भी फ़रमाते हैं कि "प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मैं तुझसे तुझीको माँगता हूँ। तेरे अतिरिक्त मेरा और कोई प्रयोजन नहीं है। तेरे सिवा दूसरा और कुछ नहीं चाहता।"

दूसरी जगह भी मीर कहते हैं :—

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें,
ख़ाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम।

[४२]

पासे-नामूसे-इश्क़ था वर्ना,
कितने आँसू पलक तक आये थे।

प्रेममें दिलपर कितना ज़ोर डालना पड़ता है, उसे कितना दबाना पड़ता है। अन्दर व्यथा और बेचैनीका समुद्र लहरें मारता है; ऊपर हँसना-मुसकराना पड़ता है। आँखें भर-भर जाती हैं पर आँसू रोक लेने पड़ते हैं।

मीर कहते हैं :—प्रेमकी बदनामीका ध्यान था अन्यथा न जाने कितने आँसू पलक तक आये हुए थे (जिन्हें मैंने रोक लिया।)

'मुझे परमात्मासे कुछ काम नहीं। मैं इन आँखोंसे लैलाको छोड़ किसीको नहीं देख सकता।' ख़ुदाने कहा—'मेरे लिए लोग न जाने कितना दुःख भोगते हैं, तब भी मैं मुश्किलसे मिलता हूँ और तू इन्कार कर रहा है ?' तरह-तरहके प्रलोभन दिये जानेपर मजनूँने यही कहा—"लैलाके अतिरिक्त मैं न तो किसीको चाहता हूँ, न जानता हूँ और न जानने या देखनेकी इच्छा ही रखता हूँ।"

[४३]

आँखोंसे पूछा हाल दिलका,
एक बूँद टपक पड़ी लहूकी ।

वेदनाका कैसा चित्र है । हर शब्द व्यथासे गीला है ।

[४४]

सुबह तक शमा सिरको धुनती रही,
क्या पतिंगेने इल्तमास किया ।

न जाने पतिंगेने क्या अर्ज़ किया कि शमा सुबह तक अपना सिर धुनती रह गयी !

रहस्यवादका स्पर्श है ।

[४५]

न कटती टुक न होती जो फ़क़ीरी साथ उलंफ़तके,
हमें जब उसने गाली दी है तब हमने दुआ दी है ।

मीर साहब कहते हैं कि "यदि प्रेमके साथ मुझमें थोड़ी फ़क़ीरी भी न होती तो दिन न बीतते । उसने जब-जब गालियाँ दी हैं, मैंने उसे आशीर्वाद दिया है ।"

प्रेमी किसी भी रूपमें प्रियतमसे सम्बद्ध रहना चाहता है इसीलिए उसे गालियाँ भी अच्छी लगती हैं । 'प्रसाद'ने कितना बढ़िया कहा है :—

तेरे स्मृति-सौरभमें मृग-मन मस्त रहे,
यही है हमारी अभिलाषा सुन लीजिए ।
शीतल हृदय सदा होता रहे आँसुओंसे,
छिपिए उसीमें, मत बाहर हो भीजिए ॥

हो जो अवकाश कभी ध्यान आवे तुम्हें मेरा,
ए हो प्राण-प्यारे ! तो कठोरता न कीजिए ।
क्रोधसे, विषाद से, दया या पूर्व प्रीति ही से ,
किसी भी बहानेसे तो याद किया कीजिए ।।

[४६]

कोई नाउमीदाना करते निगाह ,
सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले ।

कभी-कभी निराशापूर्ण आँखें तुमपर डाल दिया करते थे सो तुम अब हमसे मुँह छिपाकर जा रहे हो ?

कैसी हसरत है ! कैसा दर्द है !

[४७]

हसरत उसकी जगह थी ख़ाबीदा .
मीरका खोलकर कफ़न देखा ।

कैसा करुणापूर्ण चित्र है । मीरका कफ़न खोलकर देखा तो वह नहीं था, उसकी जगह उसकी हसरत निद्रामग्न थी ।

[४८]

मृत्युको वह क्षणिक विश्राम मानते हैं; वह जीवनका अन्त नहीं है:—

मर्ग एक माँदगीका वक़्फ़ा है ,
यानी आगे चलेंगे दम लेकर ।

एक जगह और कहते हैं :—

वक़्फ़ए-मर्ग अब ज़रूरी है ,
उम्र तय करते थक रहे हैं हम ।

कुछ इसी तरहका संकेत उम्रके बारेमें भी है :—

यह जो मोहलत जिसे कहे हैं उम्र ,
देखो तो इंतज़ार-सा है कुछ ।

[४९]

हुई है दिलकी महवियतसे यक्साँ याँ ग़मो-फरहत ,
न मातम मरनेका है 'मीर' नै जीनेकी शादी है ।

मनुष्यकी आन्तरिक शक्तियोंके विकासकी सीमा सुख-दुःखकी सम-अनुभूति ही है जब न आनन्दकी कामना हो, न शोककी ।

मीर साहब कहते हैं :—"चित्रकी असीम संलग्नतासे मेरे लिए दुःख-सुख समान हो गये हैं । अब मुझे न तो मरनेका शोक ही है और न तो जीनेका आनन्द ही है !"

[५०]

अत्यन्त दुःखमें, बहुत रोनेके बाद, वह अवस्था आती है जब रोना भी नहीं आता । आँखें सूख जाती हैं; आँसू नहीं निकलते । इसीका बयान मीर करते हैं :—

आगे दरिया थे दीदए-तर 'मीर',
अब जो देखो सुराब हैं दोनों ।

पहिले ये तर आँखें सरिता थीं, अब मरुभूमि हैं ।

विस्तार-भयसे थोड़े ही शेर दिये गये हैं ।

काव्य-भाग

ग़ज़लें

न हुआ पर न हुआ 'मीर' का अन्दाज़ नसीब ,
'ज़ौक़' यारोंने बहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा ।

—ज़ौक़ ।

था मुस्तआर[1] हुस्न से उसके जो नूर[2] था,
ख़ुरशीद[3] में भी उस ही का ज़र्रा ज़हूर था।
पहुँचा जो आपको तो मैं पहुँचा खुदाके तईं,
मालूम अब हुआ कि बहुत मैं भी दूर था।
आतिश[4] बुलन्द दिलकी न थी वर्ना ऐ कलीम[5],
यक शोला बर्क़ ख़िरमने सद कोहेतूर[6] था।
मजलिसमें रात एक तेरे परतो[7] ए बग़ैर,
क्या शमअ, क्या पतंग हर एक बे हुज़ूर था।
हम ख़ाकमें मिले तो मिले लेकिन ऐ सपहर,
उस शोख़को भी राह पै लाना ज़रूर था।
कल पाँव एक कासए[8] सरपर जो आ गया,
यकसर वह इस्तख़ान[9] शिकस्तोंसे चूर था।
कहने लगा कि देखके चल राह बेख़बर,
मैं भी कभू किसूका सरे पुर ग़रूर था।
था वह तो रश्के हूर बिहिश्ती[10] हमींसे 'मीर',
समझे न हम तो फ़हम[11] का अपने क़सूर था।

१. रिआयत, उधार माँगा हुआ। २. प्रकाश। ३. सूर्य। ४. अग्नि। ५. ईश्वरसे बातें करने वाला, हज़रत मूसा। ६. सौ कोहे तूर। कोहे तूर पर ही मूसाको ब्रह्मज्योतिके दर्शन हुए थे (ख़िरमनकी बिजलीका एक शोला शत-शत कोहेतूर जैसा था।) ७. ज्योति, आभा। ८. खोपड़ी। ९. हड्डी। १०. स्वर्गकी परियोंको लज्जित करनेवाली। ११. बुद्धि।

[२]

गुल व बुलबुल बहारमें देखा ,
एक तुझको हज़ारमें देखा ।
जल गया दिल सफ़ेद हैं आँखें ,
यह तो कुछ इन्तज़ारमें देखा ।
आबलेका भी होना दामनगीर ,
तेरे कूचेके ख़ारमें देखा ।
जिन बलाओंको 'मीर' सुनते थे ,
उनको इस रोज़गारमें देखा ।

[३]

इस ओहद[1] में इलाही मुहब्बतको क्या हुआ ?
छोड़ा वफ़ाको उनने मुरौवतको क्या हुआ ?
उम्मीदवार वादये दीदार[2] मर चले,
आते ही आते यारो क़यामत को क्या हुआ ?
बख़्शिशने मुझको अब्रे करम[3]की किया ख़िजल[4],
ऐ चश्म जोशे-अश्के नदामत[5]को क्या हुआ ?
जाता है यार तेग़बकफ़[6] ग़ैरकी तरफ़,
ऐ कुश्तए-सितम[7] तेरी ग़ैरतको क्या हुआ ?

१. युग । २. दर्शनके आश्वासनके प्रत्याशी । ३. कृपावर्षा । ४. लज्जित । ५. अनुतापजन्य अश्रु-प्रबाह । ६. तलवार हाथमें लिये । ७. अत्याचार-दग्ध, अनीतिसे कटा हुआ ।

[४]

कहा मैंने कितना है गुलका सबात[1],
कलीने यह सुनकर तबस्सुम[2] किया।
जिगर ही में एक क़तरा खूँ है सरश्क[3]*,
पलक तक गया तो तलातुम[4] किया।
किसू वक्त पाते नहीं घर उसे,
बहुत 'मीर' ने आपको गुम किया।

[५]

उलटी हो गई सब तदबीरें कुछ न दवाने काम किया,
देखा इस बीमारिए-दिलने आख़िर काम तमाम किया।
अहद जवानी रो रो काटा पीरी[5] में लीं आँखें मूँद,
यानी रात बहुत जागे थे, सुबह हुई आराम किया।
नाहक हम मजबूरोंपर यह तोहमत है मुख़्तारी[6] की,
चाहते हैं सो आप करे हैं, हमको अबस बदनाम किया।
किसका काबा, कैसा क़िबला, कौन हरम है क्या अहराम,
कूचेके उस बाशिंदोंने सबको यहींसे सलाम किया।

१. दृढ़ता, स्थिरता। २. मुसकराहट। ३. आँसू।

* इसी ज़मीनपर मिर्ज़ा गालिबने लिखा है :—

दिलमें फिर गिरियाने एक शोर उठाया 'ग़ालिब',
आह जो क़तरा न निकला था सो तूफ़ाँ निकला।

४. तूफ़ान, लहर पर लहर उठना। ५. वृद्धावस्था। ६. स्वतंत्रता

याँके सपेद व सियहमें हमको दख़्ल जो है सो इतना है,
रातको रो रो सुबह किया, या दिनको जूँ तूँ शाम किया।
'मीर'के दीनो मज़हबको अब पूछते क्या हो उनने तो,
क़शक़ा[1] खींचा, देर[2] में बैठा, कब का तर्क इस्लाम किया।

[६]

चमनमें गुलने जो कल दावए-जमाल किया,
जमाले-यारने मुँह उसका ख़ूब लाल किया।
मेरी अब आँखें नहीं खुलतीं ज़ोफ़[3] से हमदम[4],
न कह कि नींदमें है तू यह क्या ख़याल किया।
बहारे-रफ्ता फिर आई तेरे तमाशेको,
चमनको यमने क़दमने तेरे निहाल किया।
लगा न दिलको कहीं क्या सुना नहीं तूने,
जो कुछ कि 'मीर'का इस आशिक़ी ने हाल किया!

[७]

जिस सरको गुरूर आज है याँ ताजवरीका।
कल उसपे यहीं शोर है फिर नौहागरी[5] का।
[6]ज़िन्दाँमें भी सोरिश[7] न गई अपने जुनूँ[8] की,
अब संग[9] मुदावा[10] है इस आशुफ़्तासरी[11] का।

१. तिलक। २. मन्दिर। ३. दुर्बलता। ४. साथी, मित्र। ५. मृत्यू-परान्त रोदन। ६. कारागार। ७. हंगामा। ८. उन्माद। ९. पत्थर। १०. ओषधि। ११. पागलपन।

हर ज़ख़्मे-जिगर दावरे महशर[1] से हमारा,
इन्साफ़तलब है तेरी बेदादगरी[2] का।
ले साँस भी आहिस्ता कि नाज़ुक है बहुत काम,
आफ़ाक़[3] की इस कारे गहे शीशागरीका।
टुक 'मीर' जिगरसोख़्ता[4] की जल्द ख़बर ले,
क्या यार भरोसा है चिराग़े-सेहरी[5] का।

[८]

मुँह तका ही करे है जिस तिसका,
हैरती है यह आईना किसका।
शाम ही से कुछ बुझा-सा रहता है,
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिसका।
फ़ैज़ ऐ अब्र चश्मे-तरसे उठा,
आज दामन वसीअ[6] है उसका।
ता'ब ही किसको जो हाले 'मीर' सुने,
हाल ही और कुछ है मजलिसका।

[९]

वह एक रविशसे खोले हुए बाल आ गया,
संबुल[7] चमनका मुफ़्तमें पामाल[8] हो गया।

१. प्रलयके अधिकारी, खुदा। २. अन्याय। ३. संसारसे अभिप्राय। ४. दग्ध हृदय। ५. प्रातःकालीन दीपक। ६. विस्तृत। ७. एक सुगन्धित घास जिससे बालोंकी उपमा दी जाती है। ८. पद-मर्दित।

*दावा किया था गुलने तेरे रुख़से बाग़में,
सेली लगी सबाकी सो मुँह लाल हो गया।
क़ामत खमीदा[१] रंग शिकस्ता[२] बदन नज़ार[३],
तेरा तो 'मीर' ग़ममें अजब हाल हो गया।†

[१०]

हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया,
दिल सितमज़द:को हमने थाम थाम लिया।
मेरे सलीक़ेसे मेरी निभी मोहब्बतमें,
तमाम उम्र मैं नाकामियोंसे काम लिया।

* किसी शायरने कहा है :—

दवा किया था गुल ने कल उसके रंगो-बूका।
धौलें सबाने मारीं, शबनमने मुँहपे थूका॥

मीरने स्वयं अन्यत्र कहा है :—

चमनमें गुलने जो कल दावए जमाल किया।
सबाने मार तमाँचा मुँह उसका लाल किया॥

१. झुका हुआ। २. टूटा। ३. दुर्बल।

† हसरत मोहानीका शेर हैं :—

इश्के बुताँको जीका जंजाल कर लिया है।
'हसरत' यह तूने अपना क्या हाल कर लिया है॥

[११]

कुछ नहीं सूझता हमें उस बिन ,
शौक़ने हमको बेहवास किया ।
सुबह तक शमा सिरको धुनती रही ,
क्या पतिंगेने इल्तमास[1] किया ।
ऐसे वहशी कहाँ हैं ऐ खूबाँ ,
'मीर' को तुम अबस[2] उदास किया ।

[१२]

ऐ तू कि याँसे आक़बते-कार जायगा ,
ग़ाफ़िल न रह कि क़ाफ़ला एकबार जायगा ।
मौक़ूफ़[3] हश्र[4] पर है सो आती भी वह नहीं ,
कब दरमियाँसे वादए दीदार जायगा ।
आवेगी एक बला तेरे सिर सुन ले ऐ सबा ,
ज़ुल्फे सियहका उसके अगर तार जायगा ।

[१३]

गर्मीसे मैं तो आतिशे ग़म[5] की पिघल गया ,
रातोंको रोते-रोते ही जूँ शमा गल गया ।
हम ख़स्ता-दिल हैं तुझसे भी नाज़ुक मिज़ाजतर ,
त्योरी चढ़ाई तू ने कि याँ जी निकल गया ।
गर्मी-ए-इश्क़ मान'ए[6] नश्वो-नुमा[7] हुई ,
मैं वह निहाल[8] था कि उगा और जल गया ।

१. निवेदन । २. व्यर्थ । ३. स्थगित । ४. प्रलय । ५. दुःखाग्नि । ६. बाधक । ७. पालन-पोषण, विकास । ८. पौधा ।

[१४]

मिला है ख़ाकमें किस किस तरहका आलम याँ ,
निकलके शहरसे टुक सैर कर मज़ारोंका ।
तड़पके ख़िरमने गुलपर[1] कभी गिर ऐ बिजली ,
जलाना क्या है मेरे आशियाँ[2] के ख़ारोंका[3] ।

[१५]

दमे-सुब्ह बज़्मेखुशजहाँ शबेगमसे कम न थे मेहरबाँ ,
कि चिराग़ था सो तो दूद[4] था जो पतंग था सो गुबार था ।
दिले-मुज़तरब[5] से गुज़र गई शबेवस्ल[6] अपनी ही फ़िक्रमें ,
न दिमाग़ था, न फुराग़[7] था, न शकेब[8] था, न क़रार था ।
कभू जायगी जो उधर सबा तो य कहियो उससे कि बेवफ़ा ,
मगर एक 'मीर' शिकस्तपा तेरे बाग़ ताज़ामें ख़ार था ।

[१६]

फोड़ा सा सारी रात जो पकता रहेगा दिल ,
तो सुबह तक तो हाथ लगाया न जायगा ।
याद उसकी इतनी ख़ूब नहीं 'मीर' बाज़ आ ,
नादान फिर वह जीसे भुलाया न जायगा ।

१. पुष्प-समूह । २. घोंसला । ३. काँटों (तिनकों) । ४. धुवाँ । ५. बेचैन हृदय । ६. मिलन-रात्रि । ७. फुरसत । ८. धैर्य ।

[१७]

उनने तो मुझको झूठे भी पूछा न एकबार,
मैंने उसे हज़ार जताया तो क्या हुआ ?
क्या क्या दुआएँ माँगी हैं खिलवत[1] में शेख़, यों,
ज़ाहिर जहाँमें हाथ उठाया तो क्या हुआ ?
जीते तो 'मीर' उनने मुझे दाग़ ही रखा,
फिर गोर[2] पर चिराग़ जलाया तो क्या हुआ ?

[१८]

ऐ दोस्त कोई मुझ सा रुसवा न हुआ होगा,
दुश्मनके भी दुश्मनपर ऐसा न हुआ होगा।
जुज़्[3] मर्तबए कुल[4] को हासिल[5] करे है आख़िर,
एक क़तरा न देखा जो दरिया न हुआ होगा।

[१९]

वे दिन गये कि आँखें दरिया सी बहतियाँ थीं,
सूखा पड़ा है अब तो मुद्दतसे यह दोआबा।

[२०]

इब्तिदाए इश्क़[6] है रोता है क्या ?
आगे आगे देखिए होता है क्या।
सब्ज़ होती ही नहीं यह सरज़मीं,
तुख़्मे ख़्वाहिश[7] दिलमें तू बोता है क्या।

१. एकान्त। २. क़ब्र, समाधि। ३. अंश। ४. पूर्णताका पद। ५. प्राप्त। ६. प्रेमारम्भ। ७. इच्छाओंके बीज।

[२१]

रंग उड़ चला चमनमें गुलोंका तो क्या नसीम[1],
हमको तो रोज़गार[2] ने बे बालोपर किया।
है कौन आपमें जो मिले तुझसे मस्ते-नाज़ ?
ज़ौक़े ख़बर ही ने तो हमें बेख़बर किया।
बेशरम महज़ है वह गुनहगार जिनने 'मीर',
अब्रे करम[3] के सामने दामाने तर किया।

[२२]

अश्क आँखोंमें कब नहीं आता,
लहू आता है जब नहीं आता।
होश जाता नहीं रहा लेकिन,
जब वह आता है तब नहीं आता।
दूर बैठा गुबारे 'मीर' उससे,
इश्क़ बिन यह अदब नहीं आता।

[२३]

क़द्र रखती न थी मुताअे[4] दिल,
सारे आलमको मैं दिखा लाया।
दिल कि एक क़तरा ख़ूँ नहीं हैं बेश,
एक आलमके सर बला लाया।

१. मलयवायु। २. संसार। ३. दया-मेघ। ४. माल, जिंस।

सब पे जिस बारने गिरानीकी,
उसको यह नातवाँ[1] उठा लाया।*
दिल मुझे उस गलीमें ले जाकर,
और भी ख़ाकमें मिला लाया।
इब्तिदा[2] ही में मर गये सब यार,
इश्ककी कौन इन्तिहा[3] लाया।
अब तो जाते हैं बुतकदे[4] से 'मीर',
फिर मिलेंगे अगर ख़ुदा लाया।

[२४]

ग़म रहा जब तक कि दममें दम रहा।
दिलके जानेका निहायत ग़म रहा।
हुस्न था तेरा बहुत आलमफ़रेब[5],
ख़तके आनेपर भी एक आलम रहा।
दिल न पहुँचा गोशए-दामाँ[6] तलक,
क़तरए-ख़ूँ था मज़े[7] पर जम रहा।

१. दुर्बल।

*हाफ़िज़ कहते हैं:—

आसमाँ बारे अमानत न तवानस्त कशीद।
कुर्रए फ़ाल बनामे मने दीवाना ज़दंद।

२. आरम्भ। ३. अन्त, सीमा। ४. मूर्त्तिधाम, मन्दिर। ५. विश्व-प्रलब्धकारी। ६. आँचलके कोने तक। ७. पलक।

मेरे रोनेकी हक़ीक़त जिसमें थी,
एक मुद्दत तक वह काग़ज़ नम रहा।
सुबह पीरी शाम होने आई 'मीर',
तू न चेता याँ बहुत दिन कम रहा।

[२५]

आँखोंमें जी मेरा है इधर यार देखना,
आशिक़का अपने आख़री दीदार देखना।
कैसा चमन कि हमसे असीरों[1] को मना है,
चाके क़फ़स[2] से बाग़की दीवार देखना।

[२६]

जो इस शोरसे 'मीर' रोता रहेगा,
तो हमसाया काहेको सोता रहेगा।
मैं वह रोनेवाला जहाँसे चला हूँ,
मुझे अब्र[3] हर साल रोता रहेगा।
मुझे काम रोनेसे अक्सर है नासेह[4],
तू कब तक मेरे मुँहको धोता रहेगा।
बस ऐ मीर! मिज़गाँ[5] से पोंछ आँसुओंको,
तू कब तक यह मोती पिरोता रहेगा।

१. बन्दियों। २. बन्दीगृहके छिद्रसे। ३. मेघ। ४. उपदेशक। ५. पलकें।

[२७]

आहे सेहरने सोज़िशे दिलको मिटा दिया,
इस बादने हमें तो दिया-सा बुझा दिया।
पोशीदा[1] राज़े-इश्क़[2] चला जाय था सो आज,
बेताक़तीने दिलका वह परदा उठा दिया।
इस मौजख़ेज़[3] देहरमें हमको क़ज़ा[4] ने आह,
पानीके बुलबुलेकी तरहसे मिटा दिया।
आवारगाने-इश्क़का पूछा जो मैं निशां,
मुश्तेगुबार[5] लेके सबाने उड़ा दिया।

[२८]

बेखुदी ले गई कहाँ हमको,
देरसे इन्तज़ार है अपना।*
रोते फिरते हैं सारी-सारी रात,
अब यही रोज़गार है अपना।
जिसको तुम आसमान कहते हो,
सो दिलोंका ग़ुबार है अपना।

१. गुप्त। २. प्रेमका भेद। ३. तरंगित। ४. मृत्यु। ५. मुट्ठीभर धूल।

* 'मीर' अन्यत्र कहते हैं:—

हम आपसे गये सो इलाही कहाँ गये,
मुद्दत हुई कि अपना हमें इन्तज़ार है।

[२९]

इस मौजख़ेज़ देहरमें तू है हुबाब-सा,
आँखें खुलें तेरी तो यह आलम है ख्वाब-सा।
वह दिल कि तेरे होते रहे था भरा-भरा,
अब उसको देखिए तो है एक घर ख़राब-सा।
मुद्दत हुई कि दिलसे क़रारो सुकूँ गये,
रहता है अब तो आठ पहर इज़्तराब[1] सा।

[३०]

दिखलाते क्या हो दस्ते हिनाई[2] का मुझको रंग,
हाथोंसे मैं तुम्हारे बहुत हूँ जला हुआ।
यों फिर उठा न जायगा ऐ अब्र दश्त[3] से,
गर कोई रोने बैठ गया दिल भरा हुआ।
दामनसे मुँह छिपाये जुनूँ कब रहा छिपा,
सौ जा से सामने है गरेबां फटा हुआ।

[३१]

मेरे मुरदेसे भी वह चौंके हैं,
अब तलक मुझमें जान है गोया।
हैरते रूये गुलसे मुर्ग़े चमन,
चुप है यों बेज़बान है गोया।
मस्जिद ऐसी भरी भरी कब है,
मैकदा[4] एक जहान है गोया।

१. बेचैनी। २. मेंहदी लगे हाथ। ३. जंगल। ४. मद्यशाला।

[३२]

आँसू मेरी आँखोंमें हर दम जो न आ जाता,
तो काम मेरा अच्छा परदेमें चला जाता।
तिफ़्ली[1] की अदा तेरी जाती नहीं यह जी से,
हम देखते तुझको तो तू मुँहको छिपा जाता।
कहते तो हो यों कहते यों कहते जो वह आता,
यह कहनेकी बातें हैं कुछ भी न कहा जाता।

[३३]

मुँहपर उस आफ़ताब[2] के है यह नक़ाब क्या ?
परदा रहा है कौन सा हमसे हिजाब[3] क्या ?
ऐ अब्रेतर यह गिरिया हमारा है दीदनी,
बरसे है आज सुबहसे चश्मे पुरआब[4] क्या ?
सौ बार उसके कूचे तलक जाते हैं चले,
दिल है अगर बना तो है वह इज़्तराब क्या ?

[३४]

कब और ग़ज़ल कहता मैं इस ज़मींमें लेकिन,
परदेमें मुझे अपना अहवाल सुनाना था।
कहता था किसूसे कुछ तकता था किसूका मुँह,
कल 'मीर' खड़ा था याँ सच है कि दिवाना था।

१. लड़कपन। २. सूर्य। ३. लज्जा। ४. पानी (आँसू) भरी आँखें।

[३५]

दूरिए यारमें है हाले-दिल अबतर अपना,
हमको सौ कोससे आता है नज़र घर अपना।*
तुझसे बेमेह्रके लग लगने न देते हरगिज़,
ज़ोर चलता कुछ अगर चाहमें दिलपर अपना।

[३६]

ऐ काश मेरे सरपर एक बार वह आ जाता,
ठहराव सा हो जाता यूँ जी न चला जाता।
अब तो न रहा वह भी ताक़त गई सब दिलकी,
जो हाल कभी अपना मैं तुमको सुना जाता।
क्या शौक़की बातोंकी तहरीर हुई मुश्किल,
थे जमा क़लम क़ाग़ज़पर कुछ न लिखा जाता।
था 'मीर' भी दीवाना पर साथ ज़राफ़तके,
हम सिलसिलेवारोंकी ज़ंजीर हिला जाता।

[३७]

शायद जिगर हरारते-इश्क़ीसे जल गया।
कल दर्दे-दिल कहा सो मेरा मुँह उबल गया।
हरचन्द मैंने शौक़को पेनहां किया वले,
एक आध हर्फ़ प्यारका मुँहसे निकल गया।
सर अब लगे झुकाने बहुत ख़ाककी तरफ़,
शायद कि 'मीर' जी का दिमाग़ी ख़लल गया।

★ 'हाली' का शेर है:—

हो अज्मे देर शायद काबेसे फिर कर अपना।
आता है दूर ही से हमको नज़र घर अपना।

[३८]

अगर हँसता उसे सैर चमनमें अबकी पाऊँगा।
तो बुलबुल आशियाँ तेरा भी मैं फूलोंसे छाऊँगा।
बशारत[1] ऐ सबा दी जो असीराने क़फ़स[2] को भी,
तसल्लीको तुम्हारी सरपे रख दो फूल लाऊँगा।
दिमाग़े-नाज़बरदारी नहीं है कमदिमाग़ीसे,
कहाँ तक हर घड़ीके रूठेको पहरों मनाऊँगा।
अभी हूँ मुन्तज़िर[3] जाती है चश्मे शौक़ हर जानिब,
बुलन्द उस तेग़को होने तो दो सर भी झुकाऊँगा।

[३९]

सख़ुन मुश्ताक़[4] है आलम हमारा।
ग़नीमत है जहाँमें दम हमारा।
रहे है आलमे-मस्तीमें अक्सर,
रहा कुछ और ही आलम हमारा।
बिखर जाते हैं कुछ गेसू तुम्हारे,
हुआ है काम दिल बरहम[5] हमारा।
रखे रहते हैं दिलपर हाथ ऐ मीर!
यहीं शायद कि है सब ग़म हमारा।

१. शुभ समाचार, प्रसन्नता। २. पिंजड़ेके बन्दी। ३. प्रतीक्षारत। ४. काव्यप्रेमी। ५. बिखरा हुआ।

[४०]

बज़्म[1] की ऐशे शब[2] का याँ दिन होते ही यह रंग हुआ।
शमअकी जगह दूद[3] तनिक था खाक़स्तर परवाना था।*
तुर्फ़ा ख्याल किया करता था, इश्को जुनूँ में रोज़ोशब,।
रोते रोते हँसने लगा यह 'मीर' अजब दीवाना था।

[४१]

फ़लकने पीसकर सुर्मा बनाया।
नज़रमें उसको मैं तो भी न आया।
तमामी उम्र जिसकी जुस्तजू की,
उसे पास अपने एक दम भी न पाया।
न थी बेगानगी मालूम उसकी,
न समझे हम उसीसे दिल लगाया।

१. सभा। २. आनन्द रात्रि। ३. धुवाँ।

*ग़ालिब कहते हैं :—

या शबको देखते थे कि हर गोशए-बिसात,
दामाने बाग़बाँ व कफ़े-गुलफ़रोश है।
लुत्फ़ेख़राम साक़ी व ज़ौके सदाये चंग,
यह जन्नते निगाह वह फिरदौस गोश है।
या सुबहदम जो देखिए आकर तो बज़्म में,
नै वह सरूरो सोज़ न जोशो ख़रोश है।
दाग़े फ़ुराक़ सोहबते शबकी जली हुई,
एक शमा रह गयी है सो वह भी ख़मोश है।

रदीफ़ बे

[४२]

शबनमसे कुछ नहीं है गुलो यासमनमें आब।
देख उसको भर भर आवे है सबके देहनमें आब[1]।
सोज़िश[2] बहुत हो दिलमें तो आँसूको पी न जा,
करता है काम आगका ऐसी जलनमें आब।
देखो तो किस रवानीसे कहते हैं शेर 'मीर',
दुर[3] से हज़ार चंद है उसके सख़ुन में आब।

[४३]

क्या हमें हम तो हो चले ठंडे,
गर्म गो यारकी ख़बर है अब।
क्या कहें हाले-ख़ातिर आशुफ़्ता[4],
दिल ख़ुदा जानिए किधर है अब।

[४४]

जोश रोनेका मुझे आया है अब।
दीदए-तर[5] अब्र सा छाया है अब।
टेढ़े बाँके सीधे सब हो जायँगे,
उसके बालोंने भी बल खाया है अब।

१. मुँहमें पानी भर आता है। २. जलन। ३. मोती। ४. बेचैन दिलकी हालत। ५. अश्रुपूर्ण नयन (घनसे घिरे हैं)।

[४५]

दिलके गये बेकस कहलाये ऐसा कहाँ हमदम है अब ।
कौन ऐसे महरूम ग़मी[1] का हमराज़ो-महरम है अब ।
सुनके हाल किसूके दिलका रोना ही मुझको आता था,
यानी कभू जो कुढ़ता था मैं वह रोना हरदम है अब ।
देखें दिन कटते हैं क्योंकर रातें क्योंकर गुज़रती हैं,
बेताबी है ज़्यादा ज़्यादा सब्र बहुत कम कम है अब ।
इश्क हमारा आह न पूछो क्या क्या रंग बदलता है,
ख़ून हुआ दिल दाग़ हुआ फिर दर्द हुआ फिर ग़म है अब ।
मिलनेवालो फिर मिलिएगा है वह आलमे-दीगरमें,
'मीर' फ़क़ीर को सुक्र[2] है यानी मस्तीका आलम है अब ।

रदीफ़ ते

[४६]

पलकों पै थे पारए जिगर रात ।
हम आँखोंमें ले गये बसर रात ।
मुखड़ेसे उठाईं उनने जुल्फें,
जाना भी न हम गई किधर रात ।
खुलती है जब आँख शबको तुझ बिन,
कटती नहीं आती फिर नज़र रात ।
थी सुबह जो मुँहको खोल देता,
हरचंद कि तब थी एक पहर रात ।

---

१. वंचित दुखिया । २. नशा, बेहोशी ।

फिर ज़ुल्फ़ोंमें मुँह छिपाके पूछा ,
अब होवेगी 'मीर' किस क़दर रात ।

[४७]

कहते थे उससे मिलिये तो क्या क्या न कहिए लेक ,
वह आ गया तो सामने उसके न आई बात ।
अब तो हुए हैं हम भी तेरे ढबसे आशना ,
वाँ तूने कुछ कहा कि इधर हमने पाई बात ।
ख़त लिखते लिखते 'मीर' ने दफ़्तर किये रवाँ ,
इफ़राते इश्तियाक़[1] ने आख़िर बढ़ाई बात ।

[४८]

देरसे सूए हरम आया न टुक ,
हम मिज़ाज अपना इधर लाये बहुत ।
फूलो गुल शम्सो क़मर[2] सारे ही थे ,
पर हमें इनमें तुम्हीं भाये बहुत ।
'मीर'से पूछा जो मैं आशिक़ हो तुम ,
होके कुछ चुपकेसे शरमाये बहुत ।

[४९]

दिलकी तहकी कही नहीं जाती नाज़ुक हैं इसरार बहुत ,
अक्षर हैं तो इश्कके दो ही लेकिन है बिस्तार बहुत ।
हिज्रने[3] जी ही मारा हमारा क्या कहिए क्या मुश्किल है ,
उससे जुदा रहना होता है जिससे हमें है प्यार बहुत ।

१. उत्कण्ठाकी प्रबलता । २. सूर्य-चन्द्र । ३. वियोग ।

[५०]

खुश्की लबकी ज़र्दी रुख़की, नमनाकी दो आँखों की,
जो देखे है कहे है उनने खींचा है आज़ार बहुत।
ज़िस्मकी हालत जी की ताक़त नब्ज़से कर मालूम तबीब[1],
कहने लगा जाँबर क्या होगा यह तो है बीमार बहुत।
चार तरफ़ अबरू[2]के इशारे इस ज़ालिमके ज़मानेमें,
ठहरे क्या आशिक़ बेकस याँ चलती है तलवार बहुत।
जीके लगाव कियेसे हमने जी ही जाते देखे हैं,
इस पे न जाना आह बुरा है उल्फ़त[3]का आज़ार बहुत।

रदीफ़ जीम

[५१]

आये हैं मीर मुँहको बनाये जफ़ासे आज।
शायद बिगड़ गई है कुछ उस बेवफ़ासे आज।
जीनेमें इख़्तियार नहीं वर्ना हमनशीं,
हम चाहते हैं मौत तो अपनी ख़ुदासे आज।
साक़ी टुक एक मौसिमे गुलकी तरफ़ भी देख,
टपका पड़े है रंग चमनमें हवासे आज।
था जीमें उससे मिलिए तो क्या क्या न कहिए 'मीर',
पर कुछ कहा गया न ग़मे दिल हयासे आज।

१. चिकित्सक। २. भौं, भ्रू। ३. प्रेम।

[५२]

उसका बहरे हुस्न सरासर ओज व मौजो तलातुम है।
शौक़की अपने निगाह जहाँ तक जावे बोसो किनार है आज।
ख़ूब जो आँखें खोलके देखा शाख़े गुल पै नज़र आया,
इन रंगों फूलोंमें मिला कुछ महवे[1] जल्वये यार है आज।
ज़ज़्बे इश्क़ जिधर चाहे ले जाये महमिल लैलाका,
यानी हाथमें मजनूँके नाक़े[2] की उसके मेहार है आज।
रातको पहना हार जो अब तक दिनको उतारा उनने नहीं,
शायद 'मीर' जमाले गुल भी उसके गलेका हार है आज।

रदीफ़ चे

[५३]

चश्म हो तो आईनाख़ाना है देहर[3],
मुँह नज़र आता है दीवारोंके बीच।
हैं अनासिर[4] की यह सूरतबाज़ियाँ,
शोब्दे[5] क्या क्या हैं इन चारों के बीच।

[५४]

मैं बेदिमाग़ इश्क़ उठा सो चला गया,
बुलबुल पुकारती ही रही गुलसितांके बीच।
क्या जानूँ लोग कहते हैं किसको सुरूरेक़ल्ब[6],
आया नहीं यह लफ़्ज़ तो हिन्दी ज़बाँके बीच।

१. निमग्न, तल्लीन। २. ऊँटनी। ३. ज़माना। ४. तत्त्व।
५. चमत्कार, जादू। ६. हृदयका आनन्द।

इतनी जबीं रगड़ी कि संग आईना हुआ ,
आने लगा है मुँह नज़र उस आस्तांके बीच ।

[५५]

यह उलझाव सुलझता मुझको देहै दिखाई मुश्किल सा ,
यानी दिल अटका है जाकर इन बालोंकी शिकनके बीच ।
क्या शीरीं है हर्फ़ो हिकायत हसरत हमको आती है ,
हाय ज़ुबाँ अपनी भी होवे यकदम उसके देहन[1] के बीच ।

रदीफ़ हे

[५६]

क्या मैं हाँ छेड़ छेड़के खाता हूँ गालियाँ ,
अच्छी लगे है सबको मेरे बदज़बाँकी तरह ।
नक़्शा इलाही दिलके मेरे कौन ले गया ,
कहते हैं सारे अर्श[2] में है इस मकाँ की तरह ।

[५७]

दौरे गर्दूंसे हुई कुछ और मैख़ाने की तरह ।
भर न आवें क्योंकि आँखें मेरी पैमानेकी तरह ।
आ निकलता है कभू हँसता तो है बाग़ो बहार ,
उसकी आमदमें है सारी फ़स्ल गुल आनेकी तरह ।
किस तरह जीसे गुज़र जाते हैं आँखें मूँदकर ,
दीदनी है दर्दमन्दों की भी मर जानेकी तरह ।

---

१. जिह्वा । २. स्वर्ग ।

रदीफ़ दाल

[५८]

न पढ़ा ख़तको या पढ़ा क़ासिद[1] ।
आख़िरकार क्या कहा क़ासिद ।
गिर पड़ा ख़त तो तुझपे हर्फ़ नहीं ,
यह भी मेरा ही था लिखा क़ासिद ।
यह तो रोना हमेशा है मुझको ,
फिर कभू फिर कभू भला क़ासिद ।

[५९]

तुझ बिन ऐ नौबहारके मानिन्द ।
चाक है दिल अनार के मानिन्द ।
[2]बर्क़ तड़पी बहुत वले न हुई ,
इस दिले बेक़रारके मानिन्द ।

[६०]

तनको जिस जगहसे छेड़ूँ हूँ वहाँ है दर्द दर्द ।
हाथ लगते दिलके हो जाता हूँ कुछ मैं ज़र्दज़र्द ।
अब तो वह हसरतसे आहोनाला करना भी गया ,
दम होंठों तक आ जाता है गाहे सर्द सर्द ।

१. दूत, संदेश-वाहक । २. बिजली ।

रदीफ़ रे

[६१]

देखूँ मैं अपनी आँखोंसे आवे मुझे क़रार।
ऐ इंतज़ार तुझको किसीका हो इंतज़ार।
किस ढबसे राहे-इश्क़ चलूँ है यह डर मुझे,
फूटें कहीं न आबले टूटें कहीं न ख़ार।

[६२]

यह क्या जानूँ कि क्यों रोने लगा रोनेसे रहकर मैं,
मगर यह जानता हूँ मेंह घिर आता है फिर खुलकर।
मेरे पास उसकी खाकेपाय[1] बीमारीमें रक्खा था,
न आया सर मेरा बालीं पै ऊधर जो गया ढुलकर।
गुदाज़े आशक़ी[2] का 'मीर' के शब ज़िक्र आया था,
जो देखा शमअ मजलिसको तो पानी हो गयी घुलकर।

[६३]

गुस्सेसे उठ चले हो जो दामनको झाड़कर।
जाते रहेंगे हम भी गरेबान फाड़कर।
दिल वह नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके,
पछताओगे सुनो हो यह बस्ती उजाड़कर।

[६४]

सहल मत बूझ यह तिलिस्मे जहाँ[3],
हर जगह याँ ख़याल है कुछ और।

१. चरण-धूलि। २. प्रेमकी तपिश। ३. जगत्का इन्द्रजाल।

तू रगेजाँ[1] समझती होगी नसीम,
उसके गेसूका बाल है कुछ और।
न मिलें गोकि हिज्रमें[2] मर जायँ,
आशिक़ोंका विसाल[3] है कुछ और।
'मीर' तलवार चलती है तो चले,
ख़ुशख़रामोंकी चाल है कुछ और।

[६५]

उस रूए आतशीं[4] से बुर्क़ा सरक गया था,
गुल बह गया चमनमें ख़िजलत[5] से आब होकर।
एक क़तरा आब मैंने इस दौरमें पिया है,
निकला है चश्मे तरसे वह ख़ूने नाब[6] होकर।

[६६]

हम भी फिरते हैं एक हशम[7] लेकर।
दस्तए दाग़ व फ़ौजे ग़म लेकर।
दस्तकश नाला पेशरू गिरिया,
आह चलती है याँ अलम[8] लेकर।
मर्ग यक माँदगीका वक़्फ़ा है,
यानी आगे चलेंगे दम लेकर।

१. प्राण-नाड़ी। २. वियोग। ३. मिलन। ४. अग्निमुख, प्रकाशमान मुख। ५. लज्जा। ६. विशुद्ध। ७. वैभव। ८. झण्डा।

ज़ोफ़[1] याँ तक खिंचा कि सूरतगर[2],
रह गये हाथमें क़लम लेकर।
'मीर' साहब ही चूके ऐ बदअहद !
वर्ना देना था दिल क़सम लेकर।

[६७]

झूठे भी पूछते नहीं टुक हाल आनकर,
अनजान इतने क्यों हुए जाते हो जानकर।
वे लोग तुमने एक ही शोख़ीमें खो दिये,
पैदा किये थे चर्ख़[3] ने जो ख़ाक छानकर।

[६८]

मरते हैं हम तो आदमे ख़ाकीकी शान पर,
अल्लाह रे दिमाग़ कि है आसमान पर।
शोख़ी तो देखो आपही कहा आओ, बैठो मीर,
पूछा कहाँ तो बोले कि मेरी ज़बान पर।

[६९]

बज़्ममें मुँह उधर करें क्योंकर।
और नीची नज़र करें क्योंकर।
यूँ भी मुश्किल हैं वों भी मुश्किल है,
सर झुकाये गुज़र करें क्योंकर।

१. दुर्बलता। २. चित्रकार। ३. आकाश।

राज़पोशीए[1] इश्क़ है मंजूर,
आँखें रो रोके तर करें क्योंकर।
मस्त वो बेखुद हम उसके दर पे गये,
लोग उसको ख़बर करें क्योंकर।
सो रहा बाल मुँह पै खोलके वह,
हम शब अपनी सेहर[2] करें क्योंकर।
दिल नहीं दर्दमन्द अपना 'मीर',
आहो नाले असर करें क्योंकर।

[७०]

पुर नातवाँ हूँ मुझपर भारी है जी ही अपना,
मुझसे उठेंगे उसके नाज़ो अताब क्योंकर?
पानी के धोके प्यासे क्या-क्या अज़ीज़ मारे,
सर पर न ख़ाक डाले अपने सुराब क्योंकर?

[७१]

अब्रेसियह[3] क़िबलेसे उठकर आया है मैख़ाने पर।
बादाकशों[4] का झुरमुट है कुछ शीशेपर पैमाने[5] पर।
बेताबाना शमअपर आया गिर्द फिरा फिर जल ही गया,
अपना जी भी हदसे ज़ियादा रात जला परवाने पर।

१. प्रेमका गुप्त रखना। २. प्रभात। ३. काला बादल। ४. मद्यपों।
५. सुराही और प्याला।

रदीफ़ ज़े

[७२]

मुन्तज़िर कत्लके वादेका हूँ अपने यानी ,
जीता मरनेको रहा है यह गुनहगार हनोज़[१] ।
अभी एकदममें ज़बाँ जलनेसे रह जाती है ,
दर्दे दिल क्यों नहीं करता है तू इज़हार हनोज़ ।
आँखोंमें आन रही जी जो निकलता ही नहीं ,
दिलमें मेरे है गिरह हसरते दीदार[२] हनोज़ ।
भर नज़र देखने पाता नहीं में निज़अ[३] में भी ,
मुँहके तईं फेरे ही लेता है वह बेबाक हनोज़ ।
बाद मरनेके भी आराम नहीं 'मीर' मुझे ,
उसके कूचेमें है पामाल[४] मेरी ख़ाक हनोज़ ।

[७३]

आशिक़ के उसको गिरियए ख़ूनींका दर्द क्या ,
आँसू नहीं है आँखसे जिसकी गिरा हनोज़ ।
बरसोंमें नामाबर[५] से मेरा नाम जो सुना ,
कहने लगा कि ज़िंदा है वह नंग क्या हनोज़ ।

[७४]

हरचंद आसमां पै हमारी दुआ गई ,
उस मह[६] के दिलमें करती नहीं कुछ असर हनोज़ ।

१. अबतक । २. दर्शनेच्छा । ३. अन्तिम क्षण । ४. पददलित ।
५. पत्रवाहक । ६. चाँद ।

बरसोंसे लखनऊमें अक़ामत है मुझको लेक,
याँके चलनसे रखता हूँ अज़्मे सफ़र[1] हनोज़ ।
तेशासे कोहकन[2]के दिले कोह[3] जल गया,
निकले हैं संग-संगसे अक्सर शरर[4] हनोज़ ।

रदीफ़ सीन

[७५]

ऐ अब्रतर तू और किसी सिम्तको बरस ।
इस मुल्कमें हमारी ही यह चश्मे तर है बस ।
हमां तो देख फूल बिखेरे थी कल सबा,
एक बर्गे गुल गिरा न जहाँ था मेरा क़फ़स ।
मिज़गाँ भी बह गयीं मेरे रोनेसे चश्मकी,
सैलाब मौज मारे तो ठहरे है कोई ख़स ।
मजनूँका दिल हूँ, महमिले लैलासे हूँ जुदा,
तनहा फिरूँ हूँ, दश्तमें जूँ नालए-जरस[5] ।
ऐ गिरिया उसके दिलमें असर ख़ूब ही किया,
रोता हूँ जब मैं सामने उसके तो दे है हँस ।

[७६]

क्योंकि निकला जाय बहरे-ग़मसे मुझ बेदिलके पास
आके डूबी जाती है किश्ती मेरी साहिल[6]के पास ।
है परीशां दश्तमें किसका गुबारे-नातवां[7],
गर्द कुछ गुस्ताख़ आती है चली महमिलके पास ।

---

१. यात्रा करने, विदा होनेकी आकांक्षा । २. फ़रहाद । ३. पहाड़ का हृदय । ४. चिनगारी । ५. घण्टा घड़ियालका रुदन । ६. तट । ७. क्षीण धूलि ।

आह नाले मत किया कर इस तरह बेताब हो,
ऐ सितमकश 'मीर' ज़ालिम है जिगर भी दिलके पास ।

[७७]

[1]क़यामत है न ऐ सरमायए जान,[2]
न होवे वक्त मरनेके भी तू पास ।
यही गाली, यही झिड़की, यही छेड़,
न कुछ मेरा किया तूने कभू पास ।

रदीफ़ शीन

[७८]

लाले ख़मोश अपने देखे हो आरसीमें,
फिर पूछते हो हँसकर मुझ बेनवाकी ख़ाहिश ।
अक़्लीमे हुस्न[3] से हम दिल फेर ले चले हैं,
क्या करिये याँ नहीं है जिंसे-वफ़ाकी ख़ाहिश ।

[७९]

पाँव पड़ता है कहीं आँखें कहीं,
उसकी मस्ती देखकर जाता है होश ।
दोस्तोंका दर्दे-दिल टुक गोशकर[4],
गर नसीबे दुश्मनां है दर्दगोश ।

१. प्रलय । २. प्राणनिधि । प्राणधन । ३. सौन्दर्य-प्रदेश ।
४. सुनाकर ।

[८०]

किसकी आँखें फिरी हैं आँखोंमें,
दम बदम है मेरी नज़र दरपेश।
मस्ती भी अहले होश की है जिन्हें,
आवे है आलम दिगर दरपेश।

[८१]

कब तलक बेक़रार रहिएगा,
कुछ तो मिलनेका हो क़रार ऐ काश।
राह तकते तो फट गयीं आँखें,
उसका करते न इन्तज़ार ऐ काश!
उसकी पामाली सरफ़राज़ी है,
राहमें हो मेरी मज़ार ऐ काश!

रदीफ़ फ़े

[८२]

जो देखे मेरे शेरे तरकी तरफ़।
तो मायल[१] न हो फिर गुहर[२] की तरफ़।
मोहब्बतने शायद कि दी दिलमें आग,
धुवाँ-सा है कुछ उस नगरकी तरफ़।
नज़र क्या करूँ उसके घरकी तरफ़।
निगाहें हैं मेरी नज़रकी तरफ़।
बड़ी धूमसे अब्र आये गये।
न कोई हुआ चश्मेतरकी तरफ़।

१. आकर्षित। २. मोती।

[८३]

क्या नीची आँखें देखो हो तलवारकी तरफ़
देखो किन आँखियों ही से गुनहगारकी तरफ़।
आवारगीके महो[1] हैं हम ख़ानमाँ ख़राब,
मुतलक़ नहीं नज़र हमें घरबारकी तरफ़।

रदीफ़ क़ाफ़

[८४]

दर्द ही ख़ुद है ख़ुद दवा है इश्क़।
शेख़ क्या जाने तू कि क्या है इश्क़।
तू न होवे तो नज़्म[2] कुल उठ जाय,
सच्चे हैं शायरां ख़ुदा है इश्क़।
इश्क़ ही इश्क़ है जहाँ देखो,
सारे आलममें भर रहा है इश्क़।
इश्क़ माशूक़ इश्क़ आशिक़ है,
यानी अपना ही मुब्तला है इश्क़।
क्या हक़ीक़त कहूँ कि क्या है इश्क़।
हक़्क़शनासों[3] का हाँ ख़ुदा है इश्क़।
और तदबीरको नहीं कुछ दख़्ल,
इश्क़के दर्दकी दवा है इश्क़।
कौन मक़सद[4] को इश्क़ बिन पहुँचा,
आरज़ू इश्क़ मुद्दआ है इश्क़।

---

१. तल्लीन। २. व्यवस्था। ३. सत्य पहचाननेवालों। ४. उद्देश्य, लक्ष्य।

[८५]

अर्ज़ो सुमा[1] में इश्क है सारी चारों ओर फिरा है इश्क़ ।
हम हैं जनाबे इश्क़के बन्दे नज़दीक अपने ख़ुदा है इश्क़ ।
ज़ाहिर[2] व बातिन[3] अव्वलो आख़िर पाईं-बाला[4] इश्क़ है सब,
नूरो ज़ुल्मत[5] मानी व सूरत[6] सब कुछ आप ही हुआ है इश्क़ ।

[८६]

बस्लो जुदाईसे वह मुबर्रा[7] है कामे जाँ,
मालूम कुछ हुआ न हमें याँ सिवाय शौक़ ।
हर चार ओर उड़ती फिरे है हमारी ख़ाक,
सरसे गयी न जी भी गये पर हवाए-शौक़ ।
देरो-हरममें हमको फिराता है देर तक,
फिर भी हमारे साथ वही है अदाये-शौक़ ।

रदीफ़ काफ़

[८७]

जिसे शब आग-सा देखा दहकते,
उसे फिर ख़ाक है पाया सेहर तक ।
गली तक तेरी लाया था हमें शौक़,
कहाँ ताक़त कि अब फिर जायँ घरतक ।

१. विस्तार और ज़माना । २. प्रकट । ३. अन्तर । ४. नीचे-ऊपर ।
५. प्रकाश और अन्धकार । ६. अर्थ और रूप । ७. स्वतन्त्र ।

[८८]

काबा पहुँचा तो क्या हुआ ऐ शेख़,
सई[1] कर टुक पहुँच किसी दिल तक।
बुझ गये हम चिराग़-से बाहर,
कहियो ऐ बाद शमए-महफ़िल तक।*

[८९]

शायद कि देवे रुख़सते गुलशन हो बेक़रार,
मेरे क़फ़सको ले तो चलो बाग़बाँ तलक।
क़ैदे-क़फ़ससे छूटके देखा जला हुआ,
पहुँचे न होते काशके हम आशियाँ तलक।
इतना हूँ नातवाँ कि दरे दिलसे अब गिला,
आता है एक उम्रमें मेरी ज़बाँ तलक।

[९०]

यों न रोओ त्यों न रोओ वर्ना रोओ प्यारसे,
हर क़दम इस दश्तमें पैदा है चश्मे-गिरियानाक।
बे गुदाज़े दिल नहीं इमकान रोना इस क़दर,
तहको पहुँचो ख़ूब तो परदा है चश्मे-गिरियानाक।

रदीफ गाफ़

[९१]

बुत चीज़ क्या कि जिसको ख़ुदा मानते हैं सब,
ख़ुशएतक़ाद[2] कितने हैं हिन्दोस्तांके लोग।

---

१. श्रम। २. सुन्दर निष्ठावाले।

*यहाँ 'तक' से मतलब 'से' से है यानी महफिलकी शमासे कहना।

फ़िरदौस[1]को भी आँख उठा देखते नहीं,
किस दर्जे-सीरे-चश्मे[2] हैं कूए - बुतांके लोग।

[९२]

पावोंमें पड़ गये हैं फफोले मेरे तमाम,
हर गाम राहे इश्क़में गोया दबी है आग।
जल जलके सब इमारते दिल ख़ाक हो गयी,
कैसे नगरको आह मोहब्बतने दी है आग।
अब गर्मो सर्द देहरसे यकसां नहीं है हाल,
पानी है दिल हमारा कभू तो कभी है आग।
यारब हमेशा जलती ही रहती हैं छातियाँ,
यह कैसी आशिक़ोंके दिलोंमें रखी है आग।
अफसुर्दगीए सोख़्ता जानाँ है क़ह्र 'मीर',
दामनको टुक हिला कि दिलोंकी बुझी है आग।

[९३]

रहे-मर्गसे क्यों डराते हैं लोग।
बहुत उस तरफ़को तो जाते हैं लोग।
रहे हम तो खोये गयेसे सदा,
कभू आपमें हमको पाते हैं लोग।
उन आँखोंके बीमार हैं 'मीर' हम,
बजा देखने हमको आते हैं लोग।

१. स्वर्ग। २. सन्तुष्टनयन (सन्तोषी)।

[९४]

क्या जो अफ़सुर्दगीके साथ खिला,
दिल गुले बेबहारके - से रंग ।*
वर्क़े अब्रे बहारने भी लिये,
अब दिले बेक़रारके - से रंग ।
बर्गे गुलमें न दिलकशी होगी,
कफ़े पाये निगार[1] के - से रंग ।

रदीफ़ लाम

[९५]

अल्ला रे अन्दलीब[2] की आवाज़े - दिलख़राश,
जी ही निकल गया जो कहा उनने हाय गुल ।
गुलचीं समझके चुनियो कि गुलशनमें 'मीर'के
लख़्ते-जिगर पड़े हैं नहीं बर्गहाय गुल ।

[९६]

गुलकी जफ़ा भी देखी देखी वफ़ाए बुलबुल ।
यक मुश्तपर पड़े हैं गुलशनमें जाय बुलबुल ।
कर सैरे जज़्बे उलफ़त गुलचींने कल चमनमें,
तोड़ा था शाख़े गुलको निकली सदाय बुलबुल ।

---

* 'मीर' का एक और शेर है :—

मुद्दत तो वा हुआ ही नहीं गुश्चःवार दिल ।
अब जो खिला सो जैसे गुले बेबहार दिल ।

१. चित्रित चरणोंके तलवे । २. बुलबुल ।

यकरंगियोंकी राहें तय करके मर गया है,
गुलमें रगें नहीं यह हैं नक़्शे-पाये बुलबुल ।

[९७]

बुलबुलको नाज़ क्यों न ख़याबाने गुल पे हो,
क्या जाने जीने छातीपै भरकर न खाये गुल ।
कब तक हिनाई पाँव[1] बिन उसके यह बेकली,
लग जाय टुक चमनमें कहीं आँख पाये-गुल ।
बुलबुलको क्या सुने कोई उड़ जाते हैं हवास,
जब दर्दमन्द कहती है दम भरके* हाय गुल ।
था वस्फ़ उन लबोंका ज़बाने क़लममें 'मीर',
या मुँहमें अन्दलीब के थे बर्गहाय गुल ।

[९८]

खिंचता है उस तरफ़ हीको बेइख़्तियार दिल ।
दीवाना दिल बलाज़दा दिल बेक़रार दिल ।
समझा भी तू कि दिल किसे कहते हैं दिल है क्या,
आता है जो ज़बां पै तेरी बार-बार दिल ।

रदीफ़ मीम

[९९]

काम क्या आते होंगे मालूमात,
यह तो समझे ही न कि क्या हैं हम ।

१. मेंहदी लगे चरण ।
*'दम भरके' से अभिप्राय 'गहरी साँस लेकर' से है ।

ऐ बुताँ इस क़दर जफ़ा हमपर,
आक़बत[1] बन्दए ख़ुदा हैं हम।

[१००]

सूख ग़ममें हुए हैं काँटासे,
पर दिलोंमें खटक रहे हैं हम।
वक़फ़ए-मर्ग अब ज़रूरी है,
उम्र तय करते थक रहे हैं हम।

[१०१]

है तहे-दिल बुतोंको क्या मालूम,
निकले परदेसे क्या ख़ुदा मालूम।
यही जाना कि कुछ न जाना हाय,
सो भी यक उम्रमें हुआ मालूम।
गर्चे तू ही है सब जगह लेकिन,
हमको तेरी नहीं है जा मालूम।

[१०२]

सय्याद बहार अबकी सब लूटूँगा क्या मैं ही,
टुक बाग़ तलक ले चल मेरा भी क़फ़स जालिम।
जूँ अब्र मैं रोता था जूँ बर्क़ तू हँसता था,
सोहबत न रही यों ही एक आध बरस ज़ालिम।

---

१. परिणाम।

[१०३]

कौन कहता है मुँहको खोलो तुम,
काश के परदे ही में बोलो तुम।
जाना आया है अब जहाँसे हमें,
थोड़ी तो दूर साथ हो लो तुम।
रात गुज़री है सब तड़पते 'मीर',
आँख लग जाय टुक तो सो लो तुम।

[१०४]

याँ आप ही आप आकर गुम आपमें हुए हो।
पैदा नहीं कि किसकी करते हो जुस्तजू तुम।
चाहें तो तुमको चाहें देखें तो तुमको देखें,
ख़ाहिश दिलोंकी तुम हो आँखोंकी आरज़ू तुम।

[१०५]

क्या दिन थे वे देखते तुमको नीची नज़र मैं कर लेता,
शर्मा-शर्मा लोगोंसे जब आँखें मुझको दिखाते तुम।
बिस्तरपर मैं मुर्दा-सा था जान-सी मुझमें आ जाती,
क्या होता जो रंजःक़दम कर मेरे सिरहाने आते तुम।

[१०६]

यह हुस्ने ख़ल्क[1] तुममें इश्क़से पैदा हुआ वर्ना,
घड़ीके रूठेको दो-दो पहर तक कब मनाते तुम।
नज़र दुज़दीदा[2] रखते हो झुकी रखते हो पलकोंको,
लगी होतीं न आँखें तो न आँखोंको छिपाते तुम।

१. संसारका सौन्दर्य (शिष्टाचार)। २. छिपी हुई, चुराई हुई।

यह सारी ख़ूबियाँ दिल लगनेकी हैं मत बुरा मानो,
किसूका बारे मिन्नत बे-इलाक़ा कब उठाते तुम।
फिरा करते थे जब मग़रूर अपने हुस्नपर आगे,
किसूसे दिल लगा जो पूछते हो आते-जाते तुम।

रदीफ़ नून

[१०७]

बेकली बेख़ुदी कुछ आज नहीं।
एक मुद्दतसे वह मिज़ाज नहीं।
दर्द अगर यह है तो मुझे बस है,
अब दवा को भी एहतियाज[1] नहीं।
हमने अपनी-सी की बहुत लेकिन,
मर्ज़े इश्क़का इलाज नहीं।
शहरे ख़ूबीको ख़ूब देखा 'मीर',
जिंसे दिलका कहीं रिवाज नहीं।

[१०८]

सोज़िशे-दिलसे मुफ़्त गलते हैं।
दाग़ जैसे चिराग़ जलते हैं।
इस तरह दिल गया कि अब तक हम,
बैठे रोते हैं हाथ मलते हैं।

१. आवश्यकता।

भरी आती हैं आज यों आँखें,
जैसे दरिया कहीं उबलते हैं।
तेरे बेख़ुद जो हैं सो क्या चेतें,
ऐसे डूबे कहीं उछलते हैं।

[१०९]

दें उम्र ख़िज्र मौसिमे-पीरी[1] में तो न ले,
मरना ही उससे ख़ूब है अहदे-शबाब[2] में।
आ निकले थे जो हज़रते 'मीर' इस तरफ़ कहीं,
मैंने किया सवाल यह उनकी जनाबमें।
हज़रत सुनो तो मैं भी तअल्लुक़ करूँ कहीं,
फरमाने लगे रोके यह उसके जवाबमें।
तू जान ले कि तुझसे भी आये जो कल थे याँ,
हैं आज सिर्फ़ ख़ाक जहाने-ख़राबमें।

[११०]

मुत्तसिल[3] रोते ही रहिए तो बुझे आतिशे-दिल,[4]
एक दो आँसू तो और आग लगा जाते हैं।
वक्त ख़ुश उनका जो हमबज़्म हैं तेरे, हम तो,
दरो दीवारको अहवाल सुना जाते हैं।
एक बीमारे जुदाई हूँ मैं आपी तिसपर,
पूछनेवाले जुदा जानको खा जाते हैं।

१. बुढ़ापेका ज़माना। २. यौवन-काल। ३. लगातार। ४. हृदय-की आग।

[१११]

कहियो क़ासिद जो वह पूछे हमें क्या करते हैं ।
जानो ईमानो मुहब्बतको दुआ करते हैं ।
रुख़सते जुंबिशेलब[1] इश्क़की हैरतसे नहीं,
मुद्दतें गुज़रीं कि हम चुप ही रहा करते हैं ।
फुर्सते ख़ाब नहीं ज़िक्रे-बुतांमें हमको,
रात-दिन राम कहानी सी कहा करते हैं ।
यह ज़माना नहीं ऐसा कि कोई ज़ीस्त करे,[2]
चाहते हैं जो बुरा अपना भला करते हैं ।

[११२]

हमचश्म[3] है हर आबलए पा का मेरा अश्क,
अज़ बस कि तेरी राहमें आँखोंसे चला हूँ ।
इतना ही मुझे इल्म है कुछ मैं भी बहर चीज़,
मालूम नहीं ख़ूब मुझे भी कि मैं क्या हूँ ।

[११३]

आँखें जो खुल रही हैं मरनेके बाद मेरी,
हसरत यह थी कि उसको मैं यक निगाह देखूँ ।
यह दिल वह जा है जिसमें देखा था तुझको बसते
किन आँखोंसे अब उजड़ा इस घरको आह देखूँ ।
आँखें तो तूने दी हैं ऐ जुर्मे बख़्शे आलम[4],
क्या तेरी रहमत[5] आगे अपने गुनाह देखूँ ।

१. ओठका हिलना जो बन्द है। २. जिये । ३. सहदर्शक । ४. संसारके अपराधोंको क्षमा करनेवाले । ५. कृपा, दया ।

[११४]

निकले हैं जिंसे-हुस्न किसी कारवानमें ।
यह वह नहीं मुताअ कि हो हर दुकानमें ।
यारब कोई तो वास्ता सरगश्तगीका है,
एक इश्क़ भर रहा है ज़मीन आसमानमें ।
फाड़ा हज़ार जासे गरेबाने सब्र 'मीर',
क्या कह गयी नसीमे सेहर[1] गुलके कानमें ।

[११५]

न खोल ऐ यार मेरा गोरमें मुँह,
कि हसरत है मेरी जागह कफ़नमें ।
रखाकर हाथ दिलपर आह करते,
नहीं रहता चिराग़ ऐसे पवनमें ।
जले दिलकी मुसीबत अपनी सुनकर,
लगी है आग सारे तन बदनमें ।

[११६]

जिनके लिए अपने तो यों जान निकलते हैं,
इस राहमें वे जैसे अनजान निकलते हैं ।
क्या तीरे सितम उसके सीनेमें भी टूटे थे,
जिस ज़ख़्मको चीरूँ हूँ पैकान[2] निकलते हैं ।

१. सुरभित प्रभाती । २. तीरकी नोक ।

[११७]

हम आप हीको अपना मक़सूद[1] जानते हैं,
अपने सिवाय किसको मौजूद जानते हैं।
इज्ज़ो नियाज़[2] अपना अपनी तरफ़ है सारा,
इस मुश्तेख़ाकको हम मसजूद[3] जानते हैं।

[११८]

किया जो अर्ज़ कि दिलसा शिकार लाया हूँ।
कहा कि ऐसे तो मैं मुफ़्त मार लाया हूँ।
चला न उठके वहीं चुपके चुपके फिर तू 'मीर',
अभी तो उसकी गलीसे पुकार लाया हूँ।

[११९]

इन लबोंका जवाब है वह लाल,
हम तुझीसे सवाल रखते हैं।
ख़ाके आदम ही है तमाम ज़मीन,
पाँवको हम सँभाल रखते हैं।
यह जो सर खींचे तो क़यामत है,
दिलको हम पायमाल रखते हैं।

[१२०]

दफ़्तर बनी कहानी बनी मस्नवी बनी,
क्या शरहे सोज़े इश्क़[4] करूँ मैं ज़बाँ नहीं।

१. लक्ष्य। २. दीनता। ३. उपास्य। ४. प्रेमाग्निकी व्याख्या, टीका।

अपना ही हाथ सर पे रहा अपने हाँ सदा,
मुशफ़िक़[1] कोई नहीं है कोई मेह्रबाँ नहीं।
इस अह्द[2] को न जानिए अगला-सा अह्द 'मीर',
वह दौर अब नहीं वह ज़मीं आसमाँ नहीं।

[१२१]

जोशिशे-अश्कमें शब दिल भी गया सीनेसे,
कुछ न मालूम हुआ हाय असर पानीमें।
मह्‌ हो कर आपको यूँ हस्तीमें उसकी जैसे,
बूँद पानीकी नहीं आती नज़र पानी में।

[१२२]

बेकली दिल ही की तमाशा थी,
बर्क़में ऐसे इज़्तिराब[3] कहाँ ?
हस्ती अपनी है बीचमें परदा,
हम न होवें तो फिर हिजाब[4] कहाँ ?

[१२३]

यारो मुझे मुआफ़ करो, मैं नशेमें हूँ।
अब दो तो जाम ख़ाली ही दो मैं नशेमें हूँ।
एक-एक क़ुर्ते-दौरमें यूँ ही मुझे भी दो,
जामे-शराब पुर न करो मैं नशेमें हूँ।
मस्तीसे दरहमी[5] है मेरी गुफ़्तगूके बीच,
जो चाहो तुम भी मुझको कहो, मैं नशेमें हूँ।

१. मित्र। २. युग। ३. घबराहट, बेक़रारी। ४. परदा; आड़, लज्जा। ५. बिखराव, अस्तव्यस्तता।

या हाथों हाथ लो मुझे मानिन्द जामे-मय[1],
या थोड़ी दूर साथ चलो मैं नशेमें हूँ।
माज़ूर[2] हूँ जो पाँव मेरा बे-तरह पड़े,
तुम सरगराँ[3] तो मुझसे न हो मैं नशेमें हूँ।
भागी नमाज़े जुमा तो जाती नहीं है कुछ,
चलता हूँ मैं भी टुक तो रहो मैं नशेमें हूँ।
नाज़ुकमिज़ाज आप क़यामत हैं 'मीर' जी,
जूँ शीशा मेरा मुँह न लगो मैं नशेमें हूँ।

[१२४]

काश के दिल दो तो होते इश्क़में।
एक रहता एक खोते इश्क़में।
ख़ाबमें देखा उसीको एक रात,
बरसों काटे हमने सोते इश्क़में।

[१२५]

इस ढंगसे हिला कि बजा दिल नहीं रहे,
इस गोशके गुहरसे[4] दम आये हैं नाकमें।
अबकी जुनूँमें फ़ासला शायद न कुछ रहे,
दामनके चाक और गरेबाँके चाकमें।

[१२६]

क्या क्या लक़ब[5] हैं शौक़के आलममें यारके,
काबा लिखूँ कि क़िबला उसे या ख़ुदा लिखूँ।

१. मधुपात्रकी भाँति। २. निषेध किया हुआ। ३. अप्रसन्न। ४. कानके मोतीसे। ५. उपाधियाँ।

हैराँ हो मेरे हालमें कहने लगा तबीब[1],
इस दर्दमन्दे-इश्क़की मैं क्या दवा लिखूँ।

[१२७]

ऐ काश हमको सुक्र[2]की हालत रहे मुदाम,
ता हालकी ख़राबीसे हम बेख़बर रहें।*
रहते हैं यूँ हवास परीशाँ कि जूँ कहीं,
दो तीन आके लूटे मुसाफ़िर उतर रहें।

[१२८]

सदा हम तो खोये गयेसे रहे,
कभू आपमें तुमने पाया हमें।
शब आँखोंसे दरिया सा बहता रहा,
उन्हींने किनारे लगाया हमें।

[१२९]

ज़ुल्मो सितम क्या जौरो जफ़ा क्या जो कुछ कहिए उठाता हूँ।
ख़िफ़्फ़त खींच के[3] जाता हूँ रहता नहीं दिल फिर आता हूँ।

१. चिकित्सक। २. बेहोशी। *इस बेखुदीकी हालतपर कुछ शेर हैं:—

मयसे ग़रज़ निशात है किस रू-सियाहको।
इक गूना बेखुदी मुझे दिन रात चाहिए। —ग़ालिब।
ली होशमें आनेकी जो साक़ीसे इजाज़त,
फरमाया ख़बरदार कि नाज़ुक है ज़माना। —हाली।
ख्वाहम कि यह बेखुदी बरआरम नफ़्सी,
मी खुर्दन व मस्तबूदनम जीं सबबे अस्त।—उमर ख़ैयाम।

३. ज़िल्लत उठाकर।

घरसे उठकर कोनेमें बैठा बेत पढ़े दो बातें कीं,
किस किस तौरसे अपने दिलको उस बिन मैं बहलाता हूँ।

[१३०]

जब लग गये झमकने रुख़सारे-यार दोनों,
तब मेहो-महने अपनी आँखें झुकालियाँ हैं।
सुबहे-चमनका जलवा हिन्दी बुतोंमें देखा'
सन्दल भरी जबीं हैं होंठोंकी लालियाँ हैं।
उन गुलरुख़ोंकी क़ामत लहके है यूँ हवामें,
जिस रंगसे लचकती फूलोंकी डालियाँ हैं।
वह दुज़्दे दिल[1] नहीं तो क्यों देखते ही मुझको,
पलकें झुकालियाँ हैं आँखें चुरालियाँ हैं।

[१३१]

कहा मैं दर्दे-दिल या आग उगली,
फफोले पड़ गये मेरी ज़बाँमें।
तेरी शोरिश भी बेकल है मगर 'मीर',
मिला दी पीसकर बिजली फ़ुग़ाँमें[2]।

[१३२]

उससे घबराके जो कुछ कहनेको आ जाता हूँ।
दिलकी फिर दिलमें लिये चुपके चला जाता हूँ।
मजलिसे-यारमें तो बार नहीं पाता हूँ।
दरो-दीवारको अहवाल सुना जाता हूँ।

१. हृदयको चुरानेवाला। २. रोदनमें।

[१३३]

तुफ़ां[1] ख़ुशरू दमे ख़ूँरेज़ अदा करते हैं।
वार जब करते हैं मुँह फेर लिया करते हैं।
दिलको जाना था गया रह गया है अफ़साना,
रोज़ो-शब हम भी कहानी सी कहा करते हैं।

[१३४]

वह संग-दिल न आया बहुत देखी उसकी राह,
पथरा चली हैं आँख मेरी इन्तज़ारमें।
किस किस अदासे रेखते मैंने कहे वले,
समझा न कोई मेरी ज़बाँ इस दयारमें।

रदीफ़ वाव

[१३५]

हुए थे जैसे* मर जाते, पर अब तो सख़्त हसरत है,
किया दुश्वार[2] नादानीसे हमने कारे आसाँको।
तुझे गर चश्मे-इबरत है तो आँधी औ बगोलेसे,
तमाशा कर ग़ुबार अफशानिए-ख़ाके-अज़ीज़ाँको।
कोई काँटा सरे रहका हमारी ख़ाकपर बस है,
गुले-गुलज़ार क्या दरकार है गोरे ग़रीबाँको।
सदाये-आह जैसे तीर, जीके पार होती है,
किसू बेदर्दने खींचा किसूके दिलसे पैकाँ[3] को।

१. विचित्र। * तात्पर्य यह है कि पैदा होते ही मर गये।
२. कठिन। ३. तीरकी नोक।

[१३६]

गर्चे कब देखते हो पर देखो।
आरज़ू है कि तुम इधर देखो।
इश्क़ क्या-क्या हमें दिखाता है,
आह, तुम भी तो एक नज़र देखो।

[१३७]

उसकी तर्ज़े-निगाह मत पूछो।
जी ही जाने है आह मत पूछो।
कहीं पहुँचोगे बेरहीमें भी,
गुम रहा यों यह राह मत पूछो।

[१३८]

तेवरमें जबसे देखे है साक़ी खुमारके,
पीता हूँ रखके आँखों पै जामेशराबको।
अब तो नक़ाब मुँह पै ले ज़ालिम कि शब हुई,
शर्मिन्दा सारे दिन तो किया आफ़ताबको।
कहनेसे 'मीर' और भी रोता है मुज़तरब,
समझाऊँ कब तक इस दिले-ख़ानाख़राबको।

[१३९]

बरसोंमें कभू ईधर तुम नाज़से आते हो।
फिर बरसों तईं प्यारे जीसे नहीं जाते हो।
रहते हो तुम आँखोंमें फिरते हो तुम्हीं दिलमें,
मुद्दतसे अगर्चे याँ आते हो न जाते हो।

ख़ुश करनेसे टुक ऐसे नाख़ुश ही रखा करिए,
हँसते हो घड़ी भर तो पहरों ही रुलाते हो।
दिल खोलके मिल चलिए जो 'मीर'से मिलना है,
आँखें भी दिखाते हो फिर मुँह भी छिपाते हो।

[१४०]

करते हो तुम नीची नज़रें यह भी कोई मुरौवत है,
बरसोंसे फिरते हैं जुदा हम आँखसे आँख मिलाने दो।
क्या जाता है इसमें हमारा चुपके हम तो बैठे हैं,
दिल जो समझना था सो समझा नासेह[1] को समझाने दो।

[१४१]

सर पे आशिक़के न यह रोज़े-सियह[2] लाया करो।
जी उलझता है बहुत मत बाल सुलझाया करो।
शौक़से दीदारके भी आँखोंमें खिंच आया जी,
इस समयमें देखने हमको बहुत आया करो।

[१४२]

रहने से मेरे पासके बदनाम हुए तुम,
अब जाके रहो वाँ कहीं रुसवा[3] न जहाँ हो।
कुछ हाल कहें अपना नहीं बेख़ुदी तुजको,
ग़श आता है लोगोंको यह अफ़साना जहाँ हो।
इन उजड़ी हुई बस्तियोंमें दिल नहीं लगता,
है जीमें वहीं जा बसें वीराना जहाँ हो।

१. उपदेशक (नसीहत करनेवाला)। २. काला दिन। ३. बदनाम।

रदीफ़ हे

[१४३]

आग थे इब्तिदाए-इश्क़[1] में हम,
अब जो हैं ख़ाक इन्तिहा[2] है यह।
बूदे-आदम[3] नमूदे-शबनम[4] है,
एक दो दममें फिर हवा है यह।
शुक्र उसकी जफ़ा[5] का हो न सका,
दिलसे अपने हमें गिला[6] है यह।
शोरसे अपने हश्र[7] है परदा,
यों नहीं जानता कि क्या है यह।

[१४४]

क्या कहूँ तुझसे कि क्या देखा है तुझमें मैंने,
इश्वः[8] वो ग़मज़ः[9] वो अन्दाज़ो अदा क्या-क्या कुछ।
दिल गया, होश गया, सब्र गया, जी भी गया,
शग़्लमें ग़मके तेरे हमसे गया क्या-क्या कुछ।
हसरते-वस्ल[10] वो ग़मेहिज्र[11] वो ख़याले-रुख़े-दोस्त[12],
मर गया मैं पै मेरे जीमें रहा क्या-क्या कुछ।
दर्दे दिल, ज़ख़्मे जिगर, कुलफ़ते ग़म, दाग़े फ़िराक़,
आह आलमसे मेरे साथ चला क्या-क्या कुछ।

१. प्रेमारम्भ। २. अन्त। ३. मानवका अस्तित्व। ४. ओस-कणकी भाँति। ५. जुल्म, अन्याय। ६. शिकायत। ७. प्रलय। ८. नाज़-नख़रा। ९. आँख मारना, नख़रा, अदा। १०. मिलनकी लालसा। ११. वियोग-दुःख। १२. प्रियतमके मुखका ध्यान।

[१४५]

बूद नक़्शो निगार[1] सा है कुछ।
सूरत एक एतबार सा है कुछ।
यह जो मोहलत जिसे कहे हैं उम्र,
देखा तो इन्तज़ार सा है कुछ।
क्या है देखो हो जो उधर हरदम,
और चितवनमें प्यार सा है कुछ।

[१४६]

आँखें जो हों तो ऐन है मक़सूद हर जगह।
बिलज़ात है जहाँमें वह मौजूद हर जगह।
वाक़िफ़ हो शाने बन्दगी[2] से क़ैदे क़िब्ला[3] क्या,
सर हर कहीं झुका कि है मसजूद[4] हर जगह।

[१४७]

न बातें करो सरगरानीके साथ।
मेरी ज़ीस्त है मेहबानीके साथ।
न उठकर दरे-यारसे जा सके,
यह कम लुत्फ़ है नातवानीके साथ।

रदीफ़ इये

[१४८]

मुद्दत हुई न ख़त है न पैग़ाम है मगर,
एक रस्म वफ़ाकी बर उफ़्ताद[5] हो गयी।

१. तस्वीरकी भाँति। २. उपासनाकी रीति। ३. काबेकी उपास्य भूमिकी ही कैद क्या है? ४. उपास्य। ५. परम्पराकी समाप्ति।

दिल किस क़दर शिकस्ता हुआ था कि रात 'मीर',
आई जो बात लब पे सो फ़रयाद हो गयी।

[१४९]

उसके ईफ़ाए अह्द[1] तक न जिये,
उम्रने हमसे बेवफ़ाई की।
वस्लके दिनकी आरज़ू ही रही,
शब न आख़िर हुई जुदाईकी।
कासए चश्म[2] लेके जूँ नरगिस,
हमने दीदारकी गदाई की।[3]

[१५०]

काबा सौ बार वह गया तो क्या,
जिसने याँ एक दिलमें राह न की।
जिससे थी चश्म हमको क्या क्या 'मीर',
उस तरफ़ उनने एक निगाह न की।

[१५१]

कहाँका गुबार आह दिलमें यह था,
मेरी ख़ाक बदली सी सब छा गयी।
हुई सामने यूँ तो एक-एक के,
हमींसे वह कुछ आँख शर्मा गयी।

१. वादेकी पूर्ति। २. नयन-पात्र। ३. हमने दर्शनकी भीख माँगी।

[१५२]

क्या करूँ शरह[1] ख़िस्ताजानीकी।
मैंने मर मरके ज़िन्दगानीकी।
तिश्नालब[2] मर गये तेरे आशिक़,
न मिली एक बूँद पानीकी।
जिससे खोई थी नींद 'मीर'ने कल,
इब्तिदा फिर वही कहानी की।

[१५३]

गोर[3] किस दिल जलेकी है यह फ़लक,
शोला एक सुबह याँसे उठता है।
ख़ानए-दिल[5]से ज़ीनहार[6] न जा,
कोई ऐसे मकाँ से उठता है।
यों उठे आह उस गलीसे हम,
जैसे कोई जहाँ[7] से उठता है।

[१५४]

कली कहते हैं उसका सा देहन[8] है।
सुना करिए कि यह भी एक सख़ुन है।
टपकते दर्द हैं आँसूकी जागह,
इलाही चश्म या ज़ख़्मे कुहन[9] है।

१. टीका, भाष्य। २. प्यासे ओठवाले। ३. समाधि, कब्र। ५. हृदय-मन्दिर। ६. हरगिज़। ७. संसार। ८. मुख। ९. पुराना।

[१५५]

सरापा आरज़ू[1] होनेने बंदा कर दिया हमको,
वगर्ना हम ख़ुदा थे गर दिले बेमुद्दआ[2] होते।*
[3]फ़लक ऐ काश हमको ख़ाक ही रखता कि इसमें हम,
ग़ुबारे-राह[4] होते या किसूकी ख़ाके-पा[5] होते।
इलाही कैसे होते हैं जिन्हें है बंदगी ख़ाहिश,
हमें तो शर्म दामनगीर होती है ख़ुदा होते।
कहें जो कुछ मलामतगर[6] बजा है, 'मीर' क्या जाने,
उन्हें मालूम तब होता कि वैसेसे जुदा होते।

[१५६]

चमन यार तेरा हुआ ख़ाह है।
गुल एक दिल है जिसमें तेरी चाह है।
सरापा[7] में उसके नज़र करके तुम,
जहाँ देखो अल्लाह अल्लाह है।
तेरी आह किससे ख़बर पाइए,
वही बेख़बर है जो आगाह है।

१. सशरीर कामना। २. कामना-रहित हृदयवाले। * किसी और कविने भी कहा है :—

हम ख़ुदा थे गर न होता दिलमें कोई मुद्दआ,
आरज़ूओंने हमारी हमको बंदा कर दिया।

३. आकाश। ४. राहकी धूल। ५. चरण-धूलि। ६. मलामत करनेवाले। ७. नखशिख।

कभी वादिए-इश्क़[1] दिखलाइए,
बहुत खिज्र[2] भी दिलमें गुमराह है।
जहाँसे तो रख़्ते-अक़ामत[3] को बाँध,
यह मंज़िल नहीं बेख़बर राह है।
न शर्मिन्दा कर अपने मुँहसे मुझे,
कहा मैंने कब यह कि तू माह[4] है।

[१५७]

जाए रोग़न दिया करे है इश्क़,
ख़ूने-बुलबुल चिराग़में गुलके।
दिल तसल्ली नहीं सबा वर्ना,
जलबे सब हैंगे दाग़में गुलके।

[१५८]

हस्ती अपनी हुबाबकी-सी है।
यह नुमाइश सुराबकी-सी है।
नाज़की उसके लबकी क्या कहिए,
पंखड़ी एक गुलाबकी-सी है।
चश्मे दिल खोल उस भी आलमपर,
याँकी औक़ात ख़्वाबकी-सी है।

१. प्रेमकी घाटी। २. एक प्रसिद्ध पैग़म्बर जिनके बारेमें प्रसिद्धि है कि उन्होंने अमृत-पान किया है और लोगोंको राह बताया करते हैं। ३. अस्तित्वके सामान। ४. चाँद।

बार-बार उसके दर पे जाता हूँ,
हालत अब इज़तिराबकी-सी है।
'मीर' उन नीमबाज़ आँखोंमें,
सारी मस्ती शराबकी-सी है।

[१५९]

ताकि वह टुक आनके पूछे कभू,
इसलिए बीमार हुआ चाहिए।
मुस्तबए बेख़ुदी[1] है यह जहाँ,
जल्द ख़बरदार हुआ चाहिए।

[१६०]

पासे नामूसे इश्क़[2] था वर्ना,
कितने आँसू पलक तक आये थे।
'मीर' साहब रुला गये सबको,
कल वे तशरीफ़ याँ भी लाये थे।

[१६१]

ख़ूब ही ऐ अब्र यक शब आओ बाहम रोइए।
पर न इतना भी कि डूबे शहर कम-कम रोइए।
वक्त ख़ुश देखा न इकदमसे ज़ियादा देह्रमें,
ख़न्दए सुबहे चमन[3] पर मिस्ले शबनम रोइए।
शादी वो ग़ममें जहाँकी एकसे दसका फ़र्क़,
ईदके दिन हँसिये तो दस दिन मोहर्रम रोइए।

१. बेखुदीका सौदा बेचनेका चबूतरा। २. प्रेमकी बदनामीका खयाल।
३. उद्यानके हँसते हुए प्रभात।

[१६२]

बुर्क़ेको उठा चेहरेसे वह बुत अगर आवे।
अल्लाहकी क़ुदरतका तमाशा नज़र आवे।
खुलनेमें तेरे मुँहके कली फाड़े गरेबाँ,
हिलनेमें तेरे होठोंके गुल बर्ग तर आवे।

[१६३]

कहाँ ऐ रश्के-आबे-ज़िन्दगी[1] है तू कि याँ तुझ बिन,
हर एक पाकीज़ा गौहर जीसे अपने हाथ धोता है।
लगा मुर्देको मेरे देखकर वह नासमझ कहने,
जवानीकी है नींद इसको कि इस ग़फ़लतसे सोता है।
न रक्खो कान नज़्मे शायराने हालपर इतने,
चलो टुक 'मीर' को सुनने कि मोतीसे पिरोता है।

[१६४]

करे क्या कि दिल भी तो मजबूर है।
ज़मीं सख़्त है आसमाँ दूर है।
तमन्नाए दिलके लिए जान दी,
सलीक़ा हमारा तो मशहूर है।

[१६५]

सिजदा करनेमें सर कटे हैं जहाँ,
सो तेरा आस्तान है प्यारे।

१. जीवनामृत-विनिन्दक।

गुफ़्तगू रेखतेमें हमसे न कर,
यह हमारी ज़बान है प्यारे।
छोड़े जाते हैं दिलको तेरे पास,
यह हमारा निशान है प्यारे।

[१६६]

ग़ालिब कि यह दिलख़स्ता शबे हिज्रमें मर जाय।
यह रात नहीं वह जो कहानीमें गुज़र जाय।
नै बुतकदा है मंज़िले मक़सूद न काबा,
जो कोई तलाशी* हो तेरा आह किधर जाय।
याक़ूत कोई इनको कहै है कोई गुलबर्ग,
टुक होंठ हिला तू भी कि एक बात ठहर जाय।

[१६७]

हँसते हो रोते देखकर ग़मसे।
छेड़ रक्खी है तुमने क्या हमसे।
सबने जाना कहीं यह आशिक़ है,
बह गये अश्क दीदए-नम से।
मुफ़्त यों हाथसे न खो हमको,
कहीं पैदा भी होते हैं हमसे।
कोई बेगाना गर नहीं मौजूद,
मुँह छिपाना यह क्या फिर हमसे।

* 'तलाशी' यहाँ तुर्की भाषाके शब्द-रूपमें आया है जिसका अर्थ होता है तलाश करनेवाला। फ़ारसी और उर्दूमें इसके स्थानपर मतलाशी शब्द प्रयुक्त होता है।

[१६८]

मेरी ख़ल्क़े महवे कलाम[1] सब मुझे छोड़ते हैं ख़मोश कब,
मेरा हर्फ़[2] रश्के किताब है मेरी बात लिखनेका बाब है।
जो वह लिखता कुछ भी तो नामाबर कोई रहती मुँहमें तेरी जुबाँ,
तेरी ख़ामुशीसे यह निकले है कि जवाब ख़तका जवाब है।
नहीं खुलतीं आँखें तुम्हारी टुक कि मआलपर नज़र भी करो,
यह जो वहमकी सी नमूद है इसे ख़ूब देखो तो ख़ाब है।
मेरा शोर सुनके जो लोगोंने किया पूछना तो कहे है क्या,
जिसे 'मीर' कहते हो साहबो यह वही तो ख़ानाख़राब है।

[१६९]

नज़र मुतलक़ नहीं हिजराँमें उसको हालपर मेरे,
मेरा दिल उसके ग़ममें गोया उसका दिल है क्या जाने।
तड़पना नक़्शे-पाये नाक़ापर[3] जाने है इक मजनूँ,
बयाबाँमें वह लैलाका किधर महमिल[4] है क्या जाने।
तरफ़ होना मेरा मुश्किल है 'मीर' इस शेरके फ़नमें,
यूँ ही सौदा कभी होता है सो जाहिल है क्या जाने।

[१७०]

याँ तो आई नहीं शतरंजे-ज़मानेकी चाल,
और वहाँ बाज़ी हुई मात चली जाती है।

१. मेरी वाणी (कविता) पर मुग्ध दुनिया। २. दाग़, दोष, अपराध। ३. ऊँटनीका पद-चिह्न। ४. परदेदार पालकी गाड़ी।

रोज़ आने पै नहीं निस्बते इश्क़ी मौक़ूफ़,
उम्र भर एक मुलाक़ात चली जाती है ।

[१७१]

मेरे तग़य्युरे हालपर मत जा
इत्तिफ़ाक़ात हैं ज़मानेके ।
दमे आख़िर ही क्या न आना था,
और भी वक़्त थे बहानेके ।

[१७२]

फ़क़ीराना आये सदा[1] कर चले ।
मियाँ ख़ुश रहो हम दुआ कर चले ।
वह क्या चीज़ है आह जिसके लिए,
हर एक चीज़से दिल उठाकर चले ।
कोई नाउमीदाना करते निगाह,
सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले ।
दिखाई दिये यों कि बेख़ुद किया,
हमें आपसे भी जुदा कर चले ।
परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत तुझे,
नज़रमें सभोंकी ख़ुदा कर चले ।

[१७३]

करो तवक्कुल[2] कि आशक़ीमें न यों करोगे तो क्या करोगे
अलम[3] जो यह है तो दर्दमन्दो कहाँ तलक तुम दवा करोगे

१. आवाज़ । २. सब्र, ईश्वर-निर्भरता । ३. दुःख, वेदना ।

[१७४]

इधरसे अब्र उठकर जो गया है।
हमारी ख़ाकपर भी रो गया है।
मसायब[1] और थे पर दिलका जाना,
अजब एक सानहा सा हो गया है।
सिरहाने 'मीर'के कोई न बोलो,*
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।

[१७५]

सरगुज़श्त अपनी किस अन्दोह[2] से शब कहता था,
सो गये तुम न सुनी आह कहानी उसकी।
आबलेकी - सी तरह टीस लगी फूट बही,
दर्दमन्दीमें गई सारी जवानी उसकी।

[१७६]

दुज़दीदा निगह करना फिर आँख मिलाना भी।
इस लोटते दामनको पास आके उठाना भी।
पामालिए आशिक़[3]को मंजूर रखे जाना,
फिर चालकी ढब चलना ठोकर न लगाना भी।
बुर्क़ेको उठा देना पर आधे ही चेहरेसे,
क्या मुँहको छिपाना भी कुछ झमकी[4] दिखाना भी।
देख आँखें मेरी नीची एक मारना पत्थर भी,
ज़ाहिरमें सताना भी परदेमें जताना भी।

१. कष्ट। *' सिरहाने मीरके आहिस्ता बोलो' पाठ भी प्रचलित है।
२. दर्द। ३. प्रेमीका पद-दलन। ४. झलक।

[१७७]

देखा तो मिस्ले अश्क नज़रसे गिरा दिया,
अब मेरी उसकी आँखमें इज्ज़त नहीं रही।
दीवानगीसे अपनी है अब सारी बात खब्त,
इफ़राते इश्तियाक़[1]से वह मत नहीं रही।

[१७८]

यों तो मुरदेसे पड़े रहते हैं हम,
पर वह आता है तो आ जाता है जी।
हाय उसके शर्बती लबसे जुदा,
कुछ बताशा-सा घुला जाता है जी।
क्या कहें तुमसे कि उस शोले बग़ैर,
जी हमारा कुछ जला जाता है जी।
उठ चले पर उसके ग़श करते हैं हम,
यानी साथ उसके चला जाता है जी।

[१७९]

इलाही कहाँ मुँह छिपाया है तूने।
हमें खो दिया है तेरी जुस्तजूने।
जो ख़ाहिश न होती तो काहिश[2] न होती,
हमें जीसे मारा तेरी आरज़ूने।

१. उत्कण्ठाका प्राबल्य। २. उदासी, दुःख, पतन।

[१८०]

काबे गये क्या कोई मक़सद[1] को पहुँचता है,
क्या सई[2] से होता है जब तक न ख़ुदा चाहे।
हम इज्ज़[3] से पहुँचे हैं मक़सूदकी मंजिलको,
वह ख़ाकमें मिल जावे जो उससे मिला चाहे।

[१८१]

छाती जला करे है सोज़े दरूँ बलासे[4],
एक आग सी लगी है क्या जानिए कि क्या है!
मैं और तू हैं दोनों मजबूर तौर अपने,
पेशा तेरा जफ़ा[5] है, शेवा[6] मेरा वफ़ा[7] है।
फिरते हो 'मीर' साहब सबसे जुदा जुदा तुम,
शायद कहीं तुम्हारा दिल इन दिनों लगा है।

[१८२]

हमारा तो है अस्ले मुद्दआ तू,
ख़ुदा जाने तेरा क्या मुद्दआ है।
[8]हरमसे देर[9] उठ जाना नहीं ऐब
अगर याँ है ख़ुदा वाँ भी ख़ुदा है।
न आलममें है नै आलमसे बाहर,
यह सब आलमसे आलम ही जुदा है।

१. लक्ष्य। २. परिश्रम,यत्न। ३. दैन्य।४. प्रबल आन्तरिक ज्वाला।
५. अन्याय। ६. परम्परा, ढंग। ७. निष्ठा। ८. मस्जिद। ९. मन्दिर।

[१८३]

लुत्फ़ उसके बदनका कुछ न पूछो ,
क्या जानिए जान है कि तन है ।
गह देरमें हैं गहे हरममें ,
अपना तो यही दिवानापन है ।
हम कुश्तए - इश्क़ हैं हमारा ,
मैदानकी ख़ाक ही कफ़न है ।

[१८४]

हर सुबह उठके तुझसे माँगूँ हूँ मैं तुझीको ,
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है ।
मैं रोऊँ तुम हँसो हो क्या जानो 'मीर' साहब ,
दिल आपका किसूसे शायद लगा नहीं है ।

[१८५]

ऐसा न हुआ होगा कोई वाक़आ आगे ,
एक ख़ाहिशे दिल साथ मेरे जीती गड़ी है ।
क्या नक़्शमें मजनूँ हीके थी रफ़्तगीए-इश्क़[1] ,
लैलाकी भी तस्वीर तो हैरान खड़ी है ।

[१८६]

हम तौरे इश्क़से तो वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन,
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है ।

१. प्रेमकी बेचैनी या बेहोशी ।

क्या चाल यह निकाली होकर जवान तुमने,
अब जब चलो हो दिलको ठोकर लगा करे है।
समझा है यह कि मुझको ख़ाहिश है ज़िंदगीकी,
किस नाज़से मुआलिज[1] मेरी दवा करे है।
एक आफ़ते ज़माँ है यह 'मीर' इश्क़पेशा,
परदेमें सारे मतलब अपने अदा करे है।

[१८७]

किसको कहते हैं नहीं मैं जानता इस्लामो कुफ़्,
देर हो या काबा मतलब मुझको तेरे दरसे है।*
अश्क पै दर पै चले आते थे चश्मे ज़ारसे,
हर निगहका तार माना रिश्तए-गौहरसे है।

[१८८]

शेर मेरे हैं सब खवास-पसन्द[2],
पर मुझे गुफ़्तगू अवाम[3]से है।†
सर झुकाऊँ तो और टेढ़े हो,
क्या तुम्हें चिढ़ मेरे सलामसे है।

१. चिकित्सक। २. विशिष्ट जन-प्रिय। ३. सामान्यजन।

* उर्फी कहता है:—

आशिक़ हम अज़् इस्लाम खराबात हम अज़् कुफ्र,
परवाना चिराग़े हरम व देर न दानद।

† फ़ैज़ी कहता है:—

हदीस मतलबे मा मुद्दआए ज़ेर लबी अस्त।
कि अहले बज़्म अवाम अन्दो गुफ़्तगू अरबी अस्त।

सहल है 'मीर' का समझना क्या,
हर सख़ुन उसका एक मुक़ामसे है ।

[१८९]

सोज़े दरूँने आख़िर जी ही खपा दिया है,
ठंडा दिल अब है ऐसा जैसे बुझा दिया है ।
आँखोंकी कुछ हया थी सो मूँद लीं इधरसे,
परदा जो रह गया था वह भी उठा दिया है ।

[१९०]

सर किसूसे फ़रो[1] नहीं आता,
हैफ़ बन्दे हुए ख़ुदा न हुए ।
कैसा कैसा क़फससे सर मारा,
मौसिमे गुलमें हम रिहा न हुए ।

[१९१]

बहार आई निकालो मत मुझे अबके गुलिस्तांसे ।
मेरा दामन बने तो बाँध दो गुलके गरेबांसे ।
ख़ुदा जाने कि दिल किस खाना आबादाँको दे बैठे,
खड़े थे मीर साहब घरके दरवाज़े पै हैरां-से ।

[१९२]

मौसिम है निकले शाखोंसे पत्ते हरे हरे ।
पौधे चमनमें फूलोंसे देखे भरे भरे ।

---

१. झुकना ।

आगे किसूके क्या करें दस्ते तमअ[1] दराज़[2],
वह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे।

[१९३]

इतने लोगोंमें चश्म किसूकी क़द्द क़यामत आफ़त है,
तुमने देखी नहीं है साहब आँख कोई शर्माई हुई।
हम क़ैदी भी मौसिमे गुलकी कबसे तवक़्क़ा[3] रखते थे,
देर बहार आई अबकी पै असीरोंकी[4] न रिहाई हुई।

[१९४]

आलम आलम इश्क़ोजुनूँ है दुनिया दुनिया तोहमत है।
दरिया दरिया रोता हूँ मैं सेहरा सेहरा वहशत है।
ख़ाकको आदम करके उठाया जिसके दस्ते क़ुदरतने,
क़दर नहीं कुछ उस बन्देकी यह भी ख़ुदाकी क़ुदरत है।
क्या दिलकश है बज़्म जहाँकी जाते यहाँ जिसके देखो,
वह ग़मदीदा रंजकशीदा आह सरापा हसरत है।

१. लोभका हाथ। २. फैलाऊँ। ३. आशा। ४. बन्दियों।

विविध काव्य

स्फुट

रखाकर हाथ दिलपर आह करते,
नहीं रहता चिराग़ ऐसी पवनमें।

× ×

तेरी ज़ुल्फ़े सियहकी यादमें आँसू झमकते हैं।
अँधेरी रात है, बरसात है, जुगनूँ चमकते हैं।

× ×

आनेके वक्त़ तुम तो कहींके कहीं रहे।
अब आये तुम तो फ़ायदा हम ही नहीं रहे।

× ×

उनने देखा जो उठके सोते से।
उड़ गये आइनेके तोतेसे।

× ×

रहे तलबमें गिरे होते सरके बल हम भी,
शिकस्तापाईने अपनी हमें सँभाल लिया।

× ×

ख़ूब किया जो अहले करमके जूदका कुछ न ख़याल किया।
हम जो फ़क़ीर हुए तो हमने पहले तर्के सवाल किया।

× ×

वस्लमें रंग उड़ गया मेरा,
क्या जुदाईको मुँह दिखाऊँगा।

× ×

कोई हो महरमे शोखी तेरा तो मैं पूछूँ,
कि बज़्मे-ऐशे-जहाँ[1] क्या समझके बरहम[2] की।

× ×

बस न लग, चल नसीम मुझसे कि मैं,
रह गया हूँ चिराग़ सा बुझकर।

रुबाइयाँ

दामन अज़लतका[3] अब लिया है मैंने,
दिल मर्गसे[4] आशना किया है मैंने।
था चश्मए आबे ज़िन्दगानी[5] नज़दीक,
पर ख़ाकसे उसको भर दिया है मैंने।

× ×

बुतख़ानेसे दिल अपने उठाये न गये।
काबेकी तरफ़ मिज़ाज लाये न गये।
तौरे मस्जिदको बरहमन क्या जाने,
याँ मुद्दते उम्रमें हम आये न गये।

× ×

दिल ख़ून हुआ ज़ब्त ही करते करते।
हम हो ही चुके दुखोंके भरते भरते।
ऐ मायए ज़िन्दगी[6] सितम है यह अगर,
भर आँख तुझे देखें न मरते मरते।

× ×

---

१. संसार की सुख-सभा। २. बिखेरना। ३. एकान्त। ४. मृत्यु। ५. अमृतका स्रोत। ६. जीवन-धन।

चुपके रहना न मीर दिलमें ठानो।
बोलो चालो कहा हमारा मानो।
एक हर्फ़ न कह सकोगे वक़्ते रफ़्तन[1],
चलनेके जबानके ग़नीमत जानो।

मुस्तज़ाद

ता चंद ग़मे दिलसे हिकायत करिये, हो होकर तंग।
किस किससे शबो रोज़ शिकायत करिये, आता है नंग[2]।
सख़्ती कोई ऐ सनम कहाँ तक खींचे, है जीमें कि अब,
हो नाला तेरे दिलमें सरायत[3] करिये, पर तू है संग[4]।

मुसल्लस (त्रिपदी)

ऐ वफ़ाए गुलके आशिक़ सबमें है यह राज़ फाश[5]।
जूँ सबा बेहूदा सरगरदाने ईं गुलशन मुबाश[6]।
मन चे गुल चीदम कि उम्रे बाग़बानी कर्दा अम।

× × ×

आई थी मुलाक़ातकी राह उसके वले[7] सूद[8]।
ताचश्म कुनम बाज़ शबेवस्ल सेहर सूद।
उम्रे गुज़राँ बरसरे इन्साफ़ नयामद।

मुख़म्मस (पंचपदी)

तेरा हूँ ख़्वार तेरी शान की मुझे सौगंद।
मरूँ हूँ तुझपे तेरी जानकी मुझे सौगंद।

१. चलते समय (मृत्युकालमें)। २. लज्जा। ३. प्रभाव। ४. पत्थर।
५. रहस्य-भेद। ६. ख़ुश। ७. किन्तु। ८. लाभ।

तुझीको जपता हूँ ईमानकी मुझे सौगंद।
यही वज़ीफ़ा है कुरआनकी मुझे सौगंद।
तुझीसे बंदगी रखता हूँ मैं ख़ुदाकी क़सम।

× × ×

रहे है मद्दे नज़र तेरी ज़ुल्फ़ काकुल व ख़ाल[1]।
फिरा करे है मेरी आँखोंमें तेरी ही चाल।
शबोंको तेरा तसव्वुर दिनोंको तेरा ख़याल।
मरीज़े दिल हूँ मेरा आबिदाँ[2] है शाहिदे[3] हाल।
इसी सितमज़दह बीमारो बेदवाकी क़सम।

तरकीबबंद

[गज़लकी ही तरह है। मक़ता (अन्तिम पद) भिन्न क़ाफ़िये और रदीफ़में होता है और उसी अन्तिम क़ाफ़िया और रदीफ़का बाद वाले खण्ड में अनुसरण करते हैं]

गरमी तू कर ऐ सनम कि आख़िर,
पत्थरके जिगरमें भी शरर[4] है।
आनेसे डर न दिलमें मेरे,
खूबाँ[5] यह तो तुम्हारा घर है।
चुप हूँ गोया हूँ बेज़बाँ मैं।
रखता हूँ अजब लब वो देहाँ मैं।

१. कपोलका तिल। २. परहेज़गार, उपासक। ३. गवाह। ४. चिनगारी। ५. सुन्दर, प्रिय।

हूँ मैं तो चिराग़ अख़ीर शबका,
कोई दमका हूँ मेहमाँ मैं।
दिलसोज़ी मेरी कर ऐ सबा टुक,
होने तईं सुबहके कहाँ मैं।
बारे मैं यह तैयार देखा।
हर कूचेको बार-बार देखा।

× ×

आँखें गईं रोते-रोते लेकिन,
तूने न इधरको यार देखा।
पूछा हमारे बाद हमको,
यारो यह जहाँका प्यार देखा।
देखा तो मिला न कोई हमफ़न!
देखे यहाँ शेख और बरहमन।

× ×

आँखोंमें ठहर रहे हैं आँसू,
होठों पै धरा रहे है शेवन[1]!
तुम बिन नहीं साँस और कुछ है,
चुभता है जिगरमें होके सोज़न।
(इसी प्रकार)।

---

१. फ़रियाद।

वासोख़्त और मुसद्दस (षट्पदी)

तर्के-इख़लास[1] किया सबसे, तुझे प्यार किया।
रहम दिलपर न किया जानको आज़ार किया।
चाहसे अपनी अबस तुझको ख़बरदार किया।
क्या किया हमने कि इस मानीका इज़हार[2] किया।
जो कि अलफ़ाज़ न शायाँ[3] थे सो तू कहने लगा।
वजह बेवजह तू रूपोश[4] ही अब रहने लगा।

× × ×

अब तो जो कुछ हो दिल उस साथ लगा बैठूँगा।
उसके दरवाज़े पै दरवेश हो जा बैठूँगा।
हाथ वासोख़्ता हो तुझसे लगा बैठूँगा।
आऊँगा भी तो तेरे पास न आ बैठूँगा।
दूरसे एक नज़र करके चला आऊँगा।
सो भी कितने दिनों फिर काहेको मैं आऊँगा।

× × ×

सच कहो शहरमें सेहरामें कहाँ रहते हो।
याँ बहुत रहते हो ख़ुशबाश कि वाँ रहते हो।
इन दिनों यारोंकी आँखोंसे निहाँ रहते हो।
ख़ुश रहो 'मीर' मेरी जान जहाँ रहते हो।
एक तरफ़ बैठे हुए हम भी लहू पीते हैं।
इश्क़की जान को देते हैं दुआ जीते हैं।

१. दोस्ती छोड़ी। २. अभिव्यक्त। ३. उचित। ४. मुँह छिपानेवाला।

मस्नवी शोलए शौक़

[संक्षिप्त]

मोहब्बतने ज़ुलमत[१] से काढ़ा है नूर[२] ।
न होती मोहब्बत न होता ज़हूर[३] ।
मोहब्बत मुसब्बब[४] मोहब्बत सबब[५] ।
मोहब्बतसे आते हैं कारे अजब ।
मोहब्बत ही इस कारख़ानेमें है ।
मोहब्बतसे सब कुछ ज़मानेमें है ।
मोहब्बतसे है इन्तिज़ामे-जहाँ ।
मोहब्बतसे गर्दिश[६] में है आसमाँ ।
मोहब्बतसे परवाना आतिश बजाँ[७] ।
मोहब्बतसे बुलबुल है गर्मे-फुग़ाँ[८] ।
इसी आगमें शमअको है गुदाज़[९] ।
इसीके लिए गुल है सरगर्मे नाज़ ।

[कथारंभ]

अजब काम पटनेमें इससे हुआ ।
अजब अहले आलमको जिससे हुआ ।
कि वाँ एक जवाँ था परसराम नाम ।
खुशअन्दामो[१०] खुशक़ामतो[११] खुशख़राम[१२] ।

१. अन्धकार । २. प्रकाश । ३. सृष्टि । ४. परिणाम, सृष्टिकर्ता । ५. कारण । ६. चक्कर । ७. जीवित अग्नि । ८. रुदनशील । ९. जलन । १०. सुन्दर शरीर । ११. सुडौल । १२. सुन्दर चालवाला (या वाली) ।

जिधरको वह टुक गर्म रफ्तार हो।
क़यामत उधरसे नमूदार हो।
वे क़ाफ़िर भवें होवें मायल[1] जहाँ।
करें सिजदा उस जा पै इस्लामियाँ।
निगह तेग़ मजरूह जिसके पड़े।
पलक सेल जूँ दिलमें जाकर गड़े।
सियह चश्म उसके दो बदमस्त थे।
निगाहोंसे शमशीर दरदस्त थे।
सरापामें उसके जहाँ देखिए।
वहीं रूए-मक़सूदे जाँ[2] देखिए।
खरामां निकलता वह जिस राहसे।
क़यामत थी वाँ नाला वो आहसे।

[उसे एक स्त्री हृदय-दान करती है। परशुराम उसके प्रेम एवं निष्ठाकी कहानी मित्रोंसे कहता है। उसका कहना है कि वह एक क्षण मुझे छोड़ नहीं जी सकती। इसपर लोग उपहास करते हैं और उसकी प्रियतमाकी परीक्षा लेनेकी बात तय होती है। लोग जाकर कहते हैं कि परशुराम नदीमें डूब गया।]

सुना उसकी हमसरने[3] जब यह सख़ुन।
हुआ मौजज़न बहरे-रंजो-मोहिन[4]।
निगह एक तरफ़ दरके मायूस[5] की।
दमे सर्द खींचा गया डूब जी।

१. आकर्षित होना। २. प्राणके अभिप्रेत (प्रियतम) के समान। ३. संगिनी। ४. वेदना-व्यथाका सागर तरंगित हो गया। ५. निराश।

वही बेख़ुदी रुख़सते-जान थी।
वह एक दम की गोया कि मेहमान थी।
गिरी होके बेजान वह दर्दमन्द।
हुआ शोर नौहेका घरसे बुलन्द।
मुई ग़ममें इस जुमलातन नाज़के।
गई जान हमरह सख़ुनसाज़के।
वह आया जो था दिल परीशां गया।
कि इस वाक़एसे पशेमां[1] गया।

[वह जाकर परशुरामसे कहता है। तब परशुराम पागल हो उठता है]

गया होश सुनकर परसरामका।
दिवाना हुआ इश्क़के कामका।
उठा बेखुदो बेख़रो बेहवास।
गिरा आके उस पैकरे मुर्दा पास।
लगा कहने ऐ मायए-ज़िन्दगी[2]।
मुझे मुँहसे तेरे है शर्मिन्दगी।
न मेरी सुनी कुछ न अपनी कही।
मेरे तेरे दोनोंके जीमें रही।
ज़मीं परसे आख़िर उठाया उसे।
लबे-आब[3] जाकर जलाया उसे।
जब आग उसके पैकर[4] पै सब छा गयी।
मोहब्बत अजब दाग़ दिखला गयी।

१. लज्जित। २. जीवन-सम्पत्ति। ३. पानीके किनारे (नदी-तट)। ४. शरीरयष्टि।

यह सरगर्म फ़रियादो ज़ारी हुआ।
लहू उसकी आँखोंसे जारी हुआ।
जिगर ग़ममें यक लख़्त ख़ूँ हो गया।
रुका दिल कि आख़िर जुनूँ[1] हो गया।
गये होशो-सब्र उसके एकबारगी।
तबीयतमें आई एक आवारगी।
कभू याद कर उसके नाला रहे।
कभू टुक जो भूले तो हैरां रहे।
हुई रफ़्ता रफ़्ता जो वहशत ज़ियाद।
लगा भागने सबसे वह नामुराद।
कुछ अपने बदो-नेककी सुध नहीं।
निकल जाय तनहा कहींका कहीं।
कभू जाके सेहरासे लावें उसे।
कभू रोते दरियापै पावें उसे।
कभू ख़ाक मलता है मुँहपर खड़ा।
कहीं है ख़राबीमें बेसुध पड़ा।
सरेशाम एक रोज़ दरिया गया।
हुई रात वाँसे न आया गया।
किनारे पे रहता था एक दामवार[2]।
रहा रात उसके यह क़ुर्बो जवार[3]।
कहा उसकी औरतने उस रातको।
नहीं तुझसे जी चाहता बातको।

१. उन्माद। २. जालवाला (मल्लाह)। ३. आस-पास।

तुझे फ़िक्र कुछ अब हमारी नहीं ।
तू जाता नहीं शामसे अब कहीं ।
तेरा शबको दरियामें पड़ता था दाम ।
तो चलता था बारे मआशियत[1]का काम ।
नहीं ताक़ते-सब्र हमको तनक ।
बहुत देर मिलता है नानो[2] नमक ।
वह बोला कि मैं भी परीशान हूँ ।
बहुत तंगदस्तीसे हैरान हूँ ।
कहूँ क्या कई रोज़से शामको ।
उठाता न हूँ इस सबब दामको ।
कि इक शोलए तुन्द पुर[3] पेचोताब ।
फ़लकसे[4] उतरता है नज़दीके आब ।
कोई दम तो रहता है सरगर्मे गश्त[5] ।
कभी सूए दरिया[6] कभी सूए दश्त[7] ।
ठहरता जो है फिर किनारेपै वाँ ।
कहे है परसराम तू है कहाँ ।
यह आतिश मेरे दिलकी क्योंकर बुझे ।
अदम[8] में भी मैंने न पाया तुझे ।
गया वह यह कहकर सुए आसमाँ ।
रहे है मुझे रात दिन ख़ौफ़े-जाँ ।

१. जीविका । २. रोटी । ३. तीव्र ज्वाला । ४. आकाश । ५. दौड़ता रहता है । ६. नदीकी ओर । ७. जंगलकी तरफ़ । ८. परलोक ।

सुना हाल शोलाका सय्यादसे ।
धुआँ एक उठा जाने नाशादसे ।

[इसके बाद वह घर लौटता है और हँसकर सबसे कहता है । इनमें वह दोस्त भी था जिसने परीक्षा लेनेकी बात कहकर प्रियतमाकी जान ली थी]

तबस्सुमकुनां[1] वाँ यह उनने कहा ।
कि कुलफ़तमें ग़मकी बहुत मैं रहा ।
चलो सैरे-गश्तीको हंगाम शब ।
लबे-आब ख़ाली करें दिलको सब ।
हुआ सो हुआ यों ही तक़दीर थी ।
जहाँसोज़ उल्फ़तकी तासीर थी ।
हुए आक़बत सूए-दरिया रवाँ ।
न पैदा किसूपर यह राज़े-निहाँ[2] ।
हुए नावपर शाम गह जब सवार ।
कहा उनने याँ एक है दामदार ।
उसे साथ लो तो बड़ी बात है ।
कि दरियामें फिरना है और रात है ।

[लोगोंने उसे साथ ले लिया । कुछ देर परसराम ख़ामोश रहा । फिर उस मल्लाहसे गतरात्रिकी बातका इशारा करके पूछा]

कहाँ शोलए-सरकश आता है याँ ।
किधर पेचोताब आके खाता है याँ ।

१. मुसकराकर । २. प्रच्छन्न रहस्य ।

ठहरता है किस जा वह आतिशफ़गन ।
तरफ़ कौनसे हो है गर्मे-सख़ुन ।
यह सय्यादसे था ही महवे सुराग़[1] ।
जिगर आतिशे-शौक़ रखती थी दाग़ ।
कि होकर फ़रोग़[2] एक सुए आसमाँ ।
तड़पने लगा जैसे आतिश बजाँ ।
कोई दममें दरियापै आया फरूद[3] ।
हुआ नेज़ाबाला सभीका नमूद ।
लबे-आब दो शोलए जाँ गुदाज़ ।
तड़पकर बहुत बाज़बाने दराज़[3] ।
पुकारा कहाँ है परसराम तू ।
मोहब्बतका टुक देख अंजाम तू ।
कि मैं जुमलातन[4] आतिशे-तेज़ हूँ ।
दिले गर्मसे शोला अंगेज़ हूँ ।
भड़कती है जब आग दिलकी मेरे ।
लबे आब उतरूँ हूँ ग़ममें तेरे ।
सो यह आब रखता है रोग़न[5]का काम ।
किया इश्क़ने आह दुश्मनका काम ।
यह बेताब सुनकर हुआ बेकरार ।
सफ़ीने[6]से उतरा बसद इज़्तरार[7] ।

१. पता लगानेमें लीन । २. उतरकर । ३. तीव्र वाणी । ४. सशरीर ।
५ घी । ६ नौका । ७ बेचैन ।

हुआ हमदम उस आतिश अंगेज़से ।
कहा उस बलाए-दिल आवेज़[1] से ।
कि मैं हूँ परसराम ख़ानाख़राब ।
मेरा दिल भी उस आगसे है कबाब ।
मेरे भी जिगरमें यही सोज़ है ।
यही मुझको जलना शबो रोज़ है ।
सख़ुन मुख़्तसर कुछ वह शोला चला ।
कुछ एक अपनी जागहसे यह दिलजला ।
बहम गर्मजोशी[2] से यकजा हुए ।
कि गुज़री थी मुद्दत भी तनहा हुए ।
वह शोला रहा एकजा मुश्तइल ।
कहे तो तसल्ली हुए जानो दिल ।
यकायक भड़ककर वह जलने लगा ।
फिर ईधर उधर फिरने चलने लगा ।
किया पास पानीके आकर सऊद ।
रही रोशनी-सी कोई दम नमूद ।
फिर आगे किसीपै न पैदा हुआ* ।
न जाना कि वह शोला फिर क्या हुआ ।
ख़बरदार हो अहले-किश्ती तमाम ।
लगे कहने बाहम नहीं परसराम ।
उठे ढूँढ़ने होके सब नासबूर ।
किनारेपै दरियाके नज़दीको दूर ।

१. प्राणमोहक । २. तीव्र भावना । * किसीको यह न ज्ञात हुआ ।

वह सय्याद बोला कि दूँ मैं निशाँ।
गया था सुए-शोला यह नौजवाँ।
यह और आग दोनों हुए हम सख़ुन।
वह शोला हुआ उस पे आतिश फ़गन।
यह जोशिश तो याँ से थी मद्दे नज़र।
फिर आगे नहीं उसकी मुझको ख़बर।
यक़ीनी हुआ यह कि वह तेज़ आग।
उसी नीम-कुश्तासे रखती थी लाग।
लिपट उसको शोला ही वह ले गया।
अजब तौरका दाग़ यह दे गया।

उपसंहार-भाग

उर्दू पिंगलकी कुछ बातें

●

१. बहर और रुकुन—उर्दू और फ़ारसीकी कवितामें हिन्दी और संस्कृत की भाँति भिन्न-भिन्न छन्दोंका प्रयोग होता है। उन्हें बहर कहते हैं। 'गण'की भाँति बहरमें भी वज़न होता है। बहरें अरकानसे बनती हैं। अरकान आठ हैं। दो पंचाक्षरीय; छः सप्ताक्षरीय। आठ अरकानसे १९ बहरें बनती हैं किन्तु प्रसिद्ध १५ हैं। इनमें सात एक ही रुकुनकी पुनरुक्ति (तकरार) से बनती हैं और आठ दो रुकुनोंकी पुनरुक्ति (तकरार) से। एक ही रुकुनके तकरारसे बननेवाली हैं :—१. हजज, २. रमल, ३. रज्ज़, ४. कामिल, ५. वाफ़र, ६. मिनक़ारिब, ७. मुतदारिक। दो दो या कई रुकुनोंके तकरारसे बननेवाली आठ बहरें हैं—१. मुज़ारअ, २. सरीअ, ३. मुनसर्ज, ४. मुक्तज़िब, ५. ख़फ़ीफ़, ६. मुहब्बतस, ७. तवील, ८. वसीत। इनके बननेका प्रकार निम्नलिखित है :—

१. हज़ज़	: मफाईलन २ बार।
२. रमल	: फाइलातन ४ बार।
३. रज्ज़	: मुस्तफ़ेलन ४ बार।
४. कामिल	: मफाइलन ४ बार।
५. वाफ़र	: मफाअलतन ४ बार।
६. मिनक़ारिब (या मुतक़ारिब)	: फऊलन ४ बार।
७. मुतदारिक	: फाइलन ४ बार।
८. मुज़ारअ	: मफाईलन फाइलातन।
९. सरीअ	: मुस्तफेलन मफ़ऊहत २ बार।

१०. मुनसर्ज : मुस्तफ़ेलन मफऊहृत २ बार ।
११. मुक्तज़िब : मफ़ऊहृत मुस्तफ़ेलन २ बार ।
१२. ख़फ़ीफ़ : फाइलातन मुस्तफेलन २ बार ।
१३. मुहब्बतस : मुस्तफ़ेलन फाइलातन २ बार ।
१४. तवील : फ़ऊलन मफ़ाअलीन २ बार ।
१५. बसीत : मुस्तफ़ेलन फाइलन ।

अधिकांश बहरोंमें छः या आठ अरकान होते हैं ।

१. **मिसरा** : एक सुसंस्कृत एवं सुसंगठित पद; चरण ।

२. **शेर** : दो हमवज़न (सममात्रिक) मिसरोंका संयोग ।

३. **बेत** : शेरका एक प्रकार ।

४. **क़ाफ़िया** : बेत या शेरका आखिरी शब्द जो बदला करता है ।

५. **रदीफ़** : तुक ।

६. **रुबाई (चतुष्पदी)** : चार मिसरों या दो बेतकी होती है । इसके पहिले, दूसरे और चौथे मिसरे ज़रूर हम-क़ाफ़िया होते हैं । यदि चारों हों तो और अच्छा है । इसका एक विशेष वज़न होता है । रुबाईमें २४ वज़न होते हैं । उदाहरणः—

गर लाख बरस जिये तो फिर मरना है,
पैमानए-उम्र एक दिन भरना है ।
हाँ तो शये आख़िरत मुहय्या करले,
ग़ाफ़िल तुझे दुनियासे सफ़र करना है ।

फ़ारसीमें उमर ख़य्याम अपनी रुबाइयोंके लिए मशहूर हैं । आजकल हिन्दीके तरुण कवि भी रुबाई लिखने लगे हैं ।

७. **मतलअ़** : ग़ज़लका प्रथम शेर जिसके दोनों मिसरे हम-क़ाफ़िया होते हैं ।

८. **ग़ज़ल** : शाब्दिक अर्थ है 'माशूकके साथ खेलना', 'औरतोंसे बातचीत' (देखिए फरहंग आसफ़िया)। आकारके विचारसे चन्द बेतोंका योग है जो वज़न और क़ाफियेमें यकसां हों। प्रथम शेरके दोनों मिसरे (चरण) हम-क़ाफ़िया (समतुकान्त) होते हैं, और इसीको मतलअ —मतला—कहते हैं, और शेषके अन्तिम। एक ग़ज़लमें चन्द मतले हों तो अच्छा है। प्राचीन आचार्योंके मतसे ग़जलके बेतों—शेरों—की संख्या सातसे बारह तक होनी चाहिए किन्तु आधुनिक मर्मज्ञोंने उसे बढ़ाकर बीस-पचीस तक कर दिया है। अर्थके विचारसे प्रत्येक शेर मुक्तककी भाँति भिन्न-भिन्न आशयका होता है किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सम्पूर्ण ग़ज़ल एक ही मज़मूनपर कही गयी हो; प्राचीन आचार्योंने इसके लिए कोई बन्धन नहीं रखा है। जैसा कि इसके शब्दार्थसे विदित होता है, ग़ज़ल निकाली तो इसलिए गयी थी कि इसमें केवल श्रृंगार विषयका वर्णन रहे किन्तु पीछे लोग इसमें गूढ़ दार्शनिक बिचारों, उपदेश, विनोद एवं अन्याय विषयोंका भी वर्णन करने लगे।

९. **मक़तअ** : ग़ज़लका अन्तिम शेर 'मक़तअ' (मक़ता) कहा जाता है। एक रिवाज-सा हो गया है कि इसमें शायर अपना 'तख़ल्लुस' (उपनाम) देता है किन्तु फ़ारस—ईरान—के प्राचीन आचार्यों और अरबके कवियोंका मत ऐसा नहीं है।

१०. **क़सीदा** : आकार प्रकारमें ग़ज़लकी भाँति होता है किन्तु इसमें शेरोंकी संख्या नियत नहीं है। प्रायः सौ डेढ़ सौ शेरों तक होता है। अर्थके विचारसे क़सीदेमें एक ही विषय होता है। निन्दा, प्रशंसा या उपदेश (विशेषतः प्रशंसा) इसके मुख्य अंग हैं। उर्दूमें 'सौदा' के क़सीदे मशहूर हैं।

११. **क़िता** : सूरतमें क़सीदेकी तरह होता है। अन्तर इतना ही है कि इसमें मतला नहीं होता।

१२. **मस्नवी** : अर्थ है दो-दो । एक छन्द है । दो-दो चरण होते हैं, दोनों मिसरे हम-क़ाफ़िया होते हैं । सात वज़नोंपर मस्नवी कही जा सकती है । विषय एक ही हो तो अच्छा है । यह हिन्दीकी चौपाईसे मिलता-जुलता है और प्रबन्ध-काव्य या कथा-काव्यके लिए उपयुक्त है । फ़ारसीमें इसके बड़े-बड़े आचार्य हुए हैं । जैसे—फ़िरदौसी, निज़ामी, मौलाना रूम, मौ० जामी, ख़ुसरो । उर्दूमें मीर हसन और दयाशंकर 'नसीम' की मसनवियाँ मशहूर हैं ।

१३. **मुसल्लस** : त्रिपदी जिसका हरबन्द तीसरे मिसरेका हो और तीसरा प्रत्येक स्थानपर समान क़ाफ़िया रखता हो ।

१४. **मुख़म्मस** : पंचपदी । मुसल्लसके ही ढंगपर पाँच मिसरोंका होता है। पाँचवाँ हर जगह यकसाँ क़ाफ़िया रखता है ।

१५. **मुसद्दस** : षट्पदी । चार मिसरे हमक़ाफ़िया और एक मतला । 'हाली' के मुसद्दस मशहूर हैं ।

१६. **मर्सिया** : मृत्यु या शोक-काव्य । उर्दूमें नासिख़के मर्सिये मशहूर हैं ।

१७. **तारीख़ कहना** : किसी प्रकारका पद जिसके शब्दोंका सांख्यिक मूल्य जोड़कर मृत्यु या किसी घटनाका समय निकालते हैं ।

उर्दू काव्यमें आनेवाले व्यक्ति

●

१. लैला मजनूँ :

अरबी, फ़ारसी एवं उर्दूके काव्यमें इन दोनों प्रेमियोंका जिक्र बार-बार आता है। अरबके दो प्रेमी। मजनूँका वास्तविक नाम क़ैस था। मजनूँका अर्थ है जो जुनून (उन्माद) में है। चूँकि क़ैस लैलाके प्रेममें पागल था इसलिए इसको यह उपाधि दी गयी जो उसके नामसे भी ज़्यादा प्रसिद्ध हो गयी है। उत्कट प्रेमके प्रतीक।

२. शीरीं फरहाद :

ईरानकी प्रसिद्ध प्रेमी आत्माएँ। फ़रहाद (कोहकन) एक ग़रीब पत्थर तोड़नेवाला था पर शीरींके प्रेममें निमग्न। शीरीं भी उसे चाहती थी। पर उसकी शादी ईरानके सम्राट् खुसरो परवेज़से हो गयी। तब भी शीरींको फ़रहादके प्रेमका विश्वास था। परवेज़ने फरहादसे कहलाया—तुम अमुक पहाड़ तोड़कर एक नहर निकालो तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण की जा सकती है। उसने स्वीकार किया। बरसों पहाड़ तोड़नेमें लगा रहा और नहर जब लगभग पूरी हो चुकी थी, परवेज़ने षड़यन्त्र किया। एक नकली जनाज़ा निकाला जो उधरसे ही गुज़ारा जहाँ फ़रहाद अपने काममें व्यस्त था। उससे कहा गया, शीरीं तो मर गयी, अब नहर किसके लिए खोद रहे हो। सुनते ही उसने उसी कुदालको अपने कलेजेमें मार लिया और मर गया। शीरींने यह सुना तो पागल हो गयी। दौड़ी उसकी लाश पर गयी और देर तक रोती रही। फिर ज़हर खाकर उसी लाशपर गिर पड़ी। प्रेमके लिए उत्सर्गके प्रतीक।

३. यूसुफ़ :

अरबी, फारसी एवं उर्दू काव्यमें सौन्दर्यके आदर्श। हज़रत याकूबके पुत्र थे जिन्हें उनके चचेरे भाइयोंने, शिकार खेलते समय, बहकाकर एक कुएँमें झोंक दिया। फिर बड़ी मुसीबतोंके बाद कुएँसे सौदागरोंके एक गिरोह द्वारा निकाले जाकर, गुलामोंकी भाँति, मिस्रके बाज़ारमें बेचे गये। सौन्दर्यमें अद्वितीय थे। अज़ीज़े मिस्रकी पत्नी ज़ुलेखा इनपर मोहित हुई थी और उसीके अनुरोधसे वहाँके बादशाह ग़ाज़नने इन्हें खरीदा था। सौन्दर्य और मुसीबतोंके सम्बन्धमें काव्यमें इनका वर्णन होता है।

४. फ़रऊन :

मिश्रके एक अन्यायी बादशाहकी उपाधि जिसने हज़रत मूसाके ज़माने में खुदाईका दावा किया था। अभिमानी एवं अत्याचारीके अर्थमें भी इसका प्रयोग होता है।

५. ज़ुलेख़ा :

यूसुफ़पर आसक्त महिला। ऐसी सुन्दरी जिसे देख मनमें रागका संचार हो।

६. ख़िज्र :

प्रसिद्ध पैग़म्बर। 'लोमस' की भाँति अनन्त आयुवाले। भूले-भटकों को राह दिखाया करते हैं। मशहूर है कि अमृतपान किया है।

काव्यके महत्त्वपूर्ण शब्द-प्रतीक

●

साक़ी : शराब पिलानेवाला, माशूक़, ईश्वर।

मय : शराब, प्रेम, सौन्दर्य। माशूक़का आकर्षण।

मयकदा : मदिरालय, प्रेमागार, प्रियतम।

शीशा : काँचकी सुराही; मद्यभाण्ड।

पैमाना : प्याला, मधुपात्र। माशूक़की आँखोंसे उपमा दी जाती है। जाम भी कहते हैं।

सुबूही : प्रातःकालिक मद्यपेय।

संबुल : एक प्रकारकी सुगंधपूर्ण घास जिसकी माशूक़के बालोंसे उपमा देते हैं।

सरो : एक सुडौल वृक्ष जिसकी प्रेमिकाकी शरीर यष्टिसे उपमा दी जाती है।

आसमाँ : सम्पूर्ण कष्टोंका कारण।

अर्श : स्वर्गकी आठवीं या नवीं श्रेणी जहाँ, इस्लामी पौराणिकताके अनुसार, खुदा रहता है। आकाश।

तूर : अरबके उत्तर-पश्चिमकी एक पहाड़ी जहाँ हज़रत मूसाको ईश्वरीय ज्योतिके दर्शन हुए थे और उनकी आँखें झपक गयी थीं। माशूक़की सौन्दर्य-ज्योतिके सन्दर्भमें भी इसका प्रयोग होता है।

लाल : रत्न विशेष जिससे ओठोंकी उपमा दी जाती है।

गुल : पुष्प; माशूक़, प्रेमिका।

बुलबुल : प्रेमी, आहोज़ारी करनेवाला, पीड़ित।

क़फस : पिंजड़ा, जहाँ बुलबुलको गुलसे अलग करके बन्द किया जाता है। घर और माशूक़ासे जुदा करनेवाली चीज़।

आशियाँ : घोंसला । (जिससे प्रेमी या बुलबुलको प्रायः निर्वासित कर दिया जाता है ।)

सय्याद : माशूक़, या प्रेमी (बुलबुल) से माशूक़ (गुल)को जुदा करनेवाला; ज़ालिम ।

ख़िज़ाँ : व्यथा और वियोगका प्रतीक ।

रक़ीब : प्रतिद्वन्द्वी (प्रेम का) ।

वस्ल : मिलन ।

हिज्र : वियोग ।

सबा : पूर्वी हवा । प्रभाती ।

नसीम : शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर ।

नरगिस : पुष्प विशेष जिससे (प्रियतमाकी) आँखोंकी उपमा दी जाती है ।

गरेबाँ : गला, पागलपनमें प्रेमी गरेबाँ फाड़ता है । और जंगल तथा मरु-भूमि (दश्तो सहरा) की ओर, एकान्तकी ओर भागता है ।

मीर-काव्यके कुछ विशिष्ट शब्द

●

आजकल बताना : झूठे वादे करना, हीला-हवाला करना, चकमा देना।

आदमीगरी : मनुष्य बनाना, तमीज़ सिखाना।

आफ़ताबा : एक विशेष प्रकारका लोटा, जिससे मुँह-हाथ धोते हैं।

आफ़ताबी : हवेलियोंमें धूपमें बैठनेकी छायादार जगह।

आला : हरा, ताज़ा।

इजारा : ठीका, केराया।

इस्तहाला : रूपान्तर।

इस्तखाँशिकनी : श्रम उठाना।

इस्लामी : मुसलमान।

इग़माज़ : आँख छिपाना।

इकराह : ज़बर्दस्ती।

इन्तिहा लेना : थाह लेना।

उनने : उसने।

उलझाव : झगड़ा-बखेड़ा।

बाब : सम्बन्धमें (दरवाज़ा)।

बाब होना : किसी बातके योग्य होना।

बाव बहना : हवा चलना।

बफरना : झल्लाना।

बिचलना : डगमगाना, बिगड़ना।

बर उफ़्ताद होना : दूर होना, निमग्न होना।

बज़नगाह : क़त्लगाह।

बज़ा : एक जलपक्षी।

भेचक : भौंचक, हैरान ।

बेतिही : बातकी तहको न पहुँचना ।

पानी टूट जाना : पानी कम होना ।

पानी करना : नर्म करना ।

पाईज़ : पतझड़, खिज़ाँ ।

परतवा : परतौ, परछाईं ।

तपक : फोड़ेके दर्दकी टीस ।

तद : तब ।

तरदामन : गुनहगार, व्यसनी ।

जागह : जगह ।

छपाका : फुर्ती, तेज़ी ।

झमक्का : चमक-दमक, तीव्रज्योति, तीव्र वर्षा ।

चारो दांग : चारों ओर ।

चाव : अरमान, लालसा ।

चखंज़न : चकित ।

चश्मकज़नी : आँखका इशारा करना, सैन मारना ।

चौरंग होना : तलवारके विशेष प्रकारके वारसे मरना ।

हाल : बेहोशी ।

ख़ाकदान : संसार ।

ख़राबा : वीरान, उजड़ा स्थान ।

खराज : फोड़ा, ज़ख़्म ।

खस्मी : दुश्मनी ।

ख़ोर : सूर्य

खुश ज़ाहिर : दुनियादार आदमी ।

दरवाज़ेकी मिट्टी ले जाना : बार-बार फेरे करना ।

दस्तो पा गुम करना : घबरा जाना ।

दिलज़दा : मरे हुए दिलवाला।
दिलशब : अर्धरात्रि।
दिलगुज़ीद : दिलपसन्द।
डोर होना : मोहित होना।
राता माता : रातका जागा हुआ।
रेगे-रवाँ : स्थान विशेष जहाँ रेत सदा चलती रहती है। वहाँसे चश्मा निकलता है जिसमें पानी और पारा मिला होता है।
ज़ग़न : चील।
ज़ुल्फा, ज़ुल्फेन : दरवाज़ेका कुण्डा जिसमें कुण्डी अटकाते हैं।
ज़ंजीर करना : ज़ंजीरमें बाँधना।
सब्ज़क : नीलकण्ठ।
सब्ज़ा : हरियल, हारिल।
सुकरोही : बेतकल्लुफ़ी, प्रफुल्लता।
सरसे गुज़र जाय : सरकी परवाह न करे।
सरनशीं : क़ाफ़िलेमें सबके आगे चलनेवाला (या वाली)
सफ़री : सफ़र करनेवाला (अब मुसाफ़िर बोलते हैं।)
सुनगुन : उड़ती ख़बर।
शीशए जाँ : नाज़ुक मिज़ाज।
सर्फ़ा : फ़ायदा।
सोब : कठिन।
तर्फ़ : तुलना।
इर्ज़ : इज़्ज़त, आबरू।
ऊर : नंगा।
ग़ुंचाख़ातिर : दुःखी हृदय।
क़ाक़ : पतला दुबला सूखा आदमी।
कद : कब।

लागा : लगा।

लाले ख़मोश : नीरव अधर।

मबीयत : रात ठहरनेकी जगह।

मिरज़ाई : अहंकार।

नाजी : नजात पानेवाला।

नोक करना : बढ़-बढ़कर बातें करना।

वाशिद : खिलना।

मीरके काव्यमें निम्नलिखित हिन्दी तथा ठेठ शब्द प्रायः मिलते हैं:— अफरना, उतारा, अटना, उगास, उलझाव, उलीचना, पाख (पक्ष), अंगदान, अनमना, अनूठा, ओर, बास, बिसाहना, बिस्तार, बिश्राम, बिलोना, भस्म, भस्मन्त, पैंठ, पवन, तनिक, ठौर, जतन, जोग, चाव, रिझवार, रोम-रोम, सालना, साँझ, सुभाव, सराहना, सखी, सन्मुख, सूर (शूरके अर्थमें), काका, कपी (बन्दरके अर्थमें), गाँती, गठबंधन, गढ़ी, लोथ, निपट, निबल (निर्बल), निदान, निरास, नगर इत्यादि।

मीरने कभी, सभी की जगह कभू, सभू तथा चलता है की जगह चले हैं इत्यादि रूपोंका प्रयोग किया है जो उस समय प्रचलित थे। आज-कलके अनेक पुल्लिग शब्दोंको स्त्रीलिंग तथा स्त्रीलिंगको पुल्लिगरूपमें लिखा है पर ऐसा तत्कालीन अन्य कवियोंमें भी मिलता है।